सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-18

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१८, १९, २० भाग]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, ट्रस्टी-सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[अष्टादश भाग]

(प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी)

प्रमाणके विषयकी जिज्ञासा—परीक्षामुखसूत्र ग्रन्थके गत तीन अध्यायोंमें प्रमाणके लक्षणकी विवरण किया गया। प्रमाणका लक्षण किया है जो स्व और पदार्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान है उसको प्रमाण कहते हैं उस प्रमाणकी उत्पत्ति, प्रमाणके भेद भेदका स्वरूप, उनके गुण उनके दोष इन सबके वर्णनमें प्रमाणके लक्षण का स्पष्ट रूपसे विवरण हुआ है। अब इस परिच्छेदमें यह पूछा जा रहा है कि इस स्व अपूर्व अर्थके व्यवस्थात्मक ज्ञानका प्रमाणका कुछ विषय है या उस प्रमाणका विषय नही है यहाँ यह पूछ रहे हैं कि ज्ञान निर्विषय होता है या विषय सहित होता है अर्थात् ज्ञानमें किसी चीजका प्रतिभास होता है या कोई चीज ज्ञानमें नही आती और ज्ञान बन जाया करता है? निर्विषय तो कह नही सकते कि ज्ञानमें विषय कुछ नही आता, चीज कुछ नही आती और वह प्रमाण होता है। यह बात यों नही कह सकते कि फिर तो सारे भ्रान्त ज्ञान मिथ्या ज्ञान सभी प्रमाण हो जायेंगे। जैसे कि कभी आकाश में बालोंका गुच्छा सा दिखता है अथवा छोटे पतिगेसे नजर आते हैं तो फिर वे भी प्रमाण बन बैठेंगे। जब निर्विषय प्रमाण मान लिया। जब प्रमाणका विषयभूत कोई पदार्थ ही नही है तब कुछ भी विकल्प चल रहा हो वह भी प्रमाण बन बैठेगा। यदि कहो कि प्रमाण सविषय है। प्रमाणका है विषय कुछ तो वह विषय क्या है ऐसी एक आशंका होती है, तो प्रमाणके विषयका विवाद निपटानेके लिए सूत्र कहते हैं।

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ ४-१ ॥

सामान्यविशेषात्मक पदार्थकी सामान्यविशेषरूपता—सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है अर्थात् सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ज्ञानमें आता है। न केवल सामान्य ज्ञानमें आता, न केवल विशेष ज्ञानमें आता, किन्तु पदार्थ ही सामान्य विशेषात्मक है और वही ज्ञानमें आ पाता है। जैसे एक मनुष्य जो व्यक्तिरूप है, जो काम करने वाला है, जिसमें अर्थक्रिया होती है वह तो है विशेष और सब मनुष्योंमें रहने वाला जो मनुष्यत्व है वह है सामान्य। तो किसी आदमीको देखकर क्या केवल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामान्य समझमें आ रहा या विशेष समझमें आ रहा ? भले ही कोई सामान्यकी व्याख्या न जाने सामान्यका अर्थ न जाने और उसके ज्ञानमें केवल वहां पुरुष विशेष विषयमें आ रहा है, किन्तु पदार्थ तो सामान्यरहित न बन जायगा। जितने भी पदार्थ हैं वे सब सामान्य विशेषात्मक है। मनुष्य है तो उसमें सदृश परिणामवाला मनुष्य सामान्य है। जो अर्थक्रियापरिणत व्यक्ति है वह मनुष्य विशेष है। तो ज्ञानमें जो विषय आया हुआ जाना गया वह पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। कैसे जाना कि वह ज्ञानका विशेषात्मक है, उसे अब कहते हैं।

पूर्वोत्तराकार परिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ।४-१२

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके ही प्रमाणविषयत्व होनेका कारण—प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है क्योंकि उसमें अर्थक्रिया हो रही है। उसमें काम होता है। परिणति हो रही है। इससे मालूम होता है कि वह सामान्य विशेषात्मक है। अर्थक्रिया परिणति उसमें ही हुआ करती है, जहां परिणाम होता हो अर्थात् पहिली पर्यायका ग्रहण करे और पूर्व एवं नवीन पर्यायोंमें रहे उसे कहते हैं परिणाम। और, ऐसा परिणाम होनेसे ही पदार्थमें अर्थक्रिया बनती है। जैसे सामने के किसी मनुष्यको देखा तो उस मनुष्यमें ये तीन बातें हैं कि नही कि नवीन पर्याय उसमें उत्पन्न होती है और पूर्व पर्याय विलीन होती है और दोनों पर्यायोंमें वह एक रह रहा है। सो अपने अनुभवसे सोचलो— मैं एक मनुष्य जन्मसे लेकर मरण तक वही का वही रहता हूं। लेकिन मेरी हालत रोज रोज बदलती है। और, मोटे रूपसे बचपन गुजरा जवानी आयी। जवानी गुजरी बुढ़ापा आया। पर मनुष्य तो मैं वही का वही हूं वही बचपनमें, वही जवानीमें और वही बुढ़ापामें। तो देखो मनुष्यमें ये तीनों ही काम हुए। पहिली पर्याय छूटी, नवीन पर्याय हुई और उन सब पर्यायोंमें स्थिति एककी रही। इससे सिद्ध होता है कि समस्त पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं। और, पदार्थोंमें दो प्रकारकी बुद्धियां जग हो रही हैं—अनुवृत्त ज्ञान और व्यावृत्त ज्ञान। मनुष्यको देखते ही यह ज्ञान बना है ना कि गाय, बैल, भैंस, घोड़ा आदिक से विलक्षण जातिका है यह मनुष्य और मनुष्य मनुष्य जितने हैं वे सब एक सदृश हैं। ये दो बातें सिखानेकी नहीं, किन्तु प्रत्येकके ज्ञानमें यह बात होती है तभी वे व्यवहार कर सकते हैं। अगर ज्ञानमें यह न बसा हो कि यह मनुष्य गाय, बैल, भैंस, बकरी, घोड़ा आदिकसे बिल्कुल जुदा है तो इसका मतलब क्या कि ये गाय, बैल भैंस आदिक रूपसे बात भी हुआ करती है क्या। तो यह बात बसी भई है कि यह व्यक्ति अन्य विलक्षण पदार्थोंसे व्यावृत्त है तभी उससे बात की जाती है। तो यह तो ध्वनित हो ही गया कि यह विशिष्ट है उनसे न्यारा है और इसके साथ यह भी बात आयी है कि जैसे और मनुष्य होते हैं तैसे ये भी हैं, यह सामान्य है अब एक ही मनुष्यमें देखो तो बचपनमें था वह अब नहीं है यह तो व्यावृत्तरूप है इसका। अन्यथा यह तो वही देखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जा रहा कि छोटे बच्चे जैसे जमीनपर उल्टे औंधे सीधे खेलते रहते हैं इस तरह तो कोई बूढ़ा नहीं करता तो मालूम होता है कि वह परिणमन अन्य है यह परिणमन अन्य है पर व्यक्ति तो वही है जो बचपनमें था और अब है। इससे यह सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके प्रमाणविषयत्व जाननेका स्वयंके लिये स्वयंपर प्रभावित परिणाम अब अपनेको भी सामान्य विशेषात्मक समझलो, इस भवको नहीं, इस शरीरको नहीं, किन्तु जो चैतन्यस्वरूप आत्मा है उस आत्माको समझिये सामान्य विशेषात्मक विशेष अवस्था तो उसका विकल्प करनेकी विकल्प न करनेकी हुआ करती है और सामान्यस्वरूप उन सब पर्यायोंमें रहने वाला जो एक चैतन्यमात्र तत्त्व है वह है उसका सामान्यस्वरूप। ऐसी श्रद्धा करनेसे इसको क्या बल मिलता है उस विशेषमें आज संसारी हूं भव भ्रमणमें रहने वाला हूं, विकल्पोंमें रहने वाला हूं, किन्तु यह विशेष है, परिणतियाँ क्षणिक हैं मिट जायेंगी, इनसे निपटकर मैं निर्विकल्प भी बन सकता हूं। मुक्त भी हो सकता हूं। यह विकृत विशेष मिटकर अविकृत विशेष हो सकता है। यह विशेष निर्मलताकी अवस्था इस सामान्य तत्त्वके अवलम्बनसे प्राप्त होगी, जिस सामान्यस्वरूपमेंसे यह विशेष पर्याय प्रकट होती है उस सामान्य स्वरूपका ज्ञान करनेसे इस विशेष पर्यायमें परिवर्तन हो जाता है। बहुत विकाररूप परिणमन चलते-चलते अब निर्विकार परिणमन चलने लगा। तो सामान्य विशेषात्मक मैं हूं ऐसी श्रद्धा इसके भीतर हो यह बहुत ही उपयोगी अमृत तत्त्व है। तो ये समस्त पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं क्योंकि इनमें अनुवृत्त व्यावृत्त ज्ञान चल रहा है। ये अनुवृत्त व्यावृत्त ज्ञानके विषयभूत हैं। जो जिस आकारको प्रतिभासित करने वाले ज्ञानका विषय है वह तदात्मक देखा गया है। जैसे कि नीलाकारका प्रतिभास करने वाले ज्ञानका विषय क्या ? नील स्वभावी पदार्थ। जितने ये बाह्य पदार्थों के आकार ज्ञानमें प्रतिभासित हो रहे हैं वे यह सिद्ध करते हैं कि बाह्यमें इस प्रकारके पदार्थ हैं। तो जब सामान्य विशेषाकार रूपसे प्रतिभास होने वाले अनुवृत्त व्यावृत्त प्रत्ययके विषयभूत हैं ये सारे पदार्थ सो बाह्य प्रमेय और आध्यात्मिक प्रमेय, ये सब सामान्य विशेषात्मक होते हैं और केवल इस ही हेतुसे पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हो सो नहीं किन्तु पूर्व आकारका वह परित्याग करता है अर्थात् परिहार करता है और उत्तर आकारको वह ग्रहण करता है और दोनों प्रकारोंमें वस्तु बनी रहती है इससे इसमें अर्थक्रिया बनती है। यदि कोई पदार्थ नित्य ही है अपरिणामी है, जरा भी नहीं बदलता है तो उस पदार्थमें अर्थक्रिया नहीं बन सकती। यदि कोई पदार्थ क्षण-क्षणमें नष्ट होने वाला माना जाय तो उसमें भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती। तो इन सब पदार्थोंमें जो अर्थक्रिया चल रही है वह यह सिद्ध करती है कि ये समस्त पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं। यों समस्त पदार्थोंकी सामान्य विशेषात्मकतासे संक्षेप रूपमें बताकर उसीके विवरणके लिए इस समय सामान्यके सम्बन्धमें कहा जा रहा है कि वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामान्य कितने प्रकारका होता है।

सामान्यं द्वेधा ॥ ४-३ ॥

तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ॥ ४-४ ॥

सामान्यके प्रकार सामान्य दो प्रकारका होता है तिर्यक् सामान्य और ऊर्द्धता सामान्य तिर्यक् सामान्य तो उसका नाम है जो एक ही समयमें अनेक जगह सामान्य पाया जाय और ऊर्द्धता सामान्य उसे कहते हैं कि एक पदार्थमें एक ही व्यक्तिमें कालभेदसे उनकी जितनी पर्यायें हैं उन सबमें सामान्यरूपसे पाया जाय जैसे १०० मनुष्य बैठे हैं और वहाँ कहा कि मनुष्य। तो सबमें जो मनुष्यत्व सामान्य है वह मनुष्य सामान्य तिर्यक् सामान्य है। और एक ही मनुष्यमें यह बचपनमें भी मनुष्य था, अब भी मनुष्य है और बुढ़ापेमें भी मनुष्य है। ऐसी उसकी सब पर्यायोंमें मनुष्यत्व निरखना यह कौन सा सामान्य है ? बस ऊर्द्धता सामान्य है। पदार्थोंका स्वरूप बतानेके लिए दो प्रकारके सामान्योंकी बात जाननी होती है—लेकिन ऊर्द्धता विशेष ऊर्द्धता सामान्यसे वस्तुका स्वरूप व्यवस्थित होता है। प्रत्येक पदार्थ नित्य है और अनित्य है; प्रत्येक पदार्थ सदा रहता है और उसमें बनता बिगड़ता भी रहता है। यहाँ पर जो सदा रहने वाला सामान्य कहा है यह ऊर्द्धता सामान्यरूप है और एक साथ रहने वाले समस्त पदार्थोंमें जातिकी व्यवस्था करना यह तिर्यक् सामान्य है। जैसे कहा—द्रव्य छह है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो ये जीव तो अनन्तानन्त हैं। उन अनन्तानन्त जीवोंको जीव द्रव्य कह देना यह हुआ तिर्यक् सामान्य। और, जब यह कहा जायगा कि जीव नित्यानित्यात्मक है, सदा रहने वाला है और क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पर्यायें करने वाला है, तो इसमें जो सदा रहने वाला है, यह जो अंश है, यह है ऊर्द्धतासामान्य। पदार्थका स्वरूप बतानेमें जिस सामान्यका कथन होता है यह है ऊर्द्धता सामान्य और एक साथ पड़े हुये पदार्थोंमें जो जातिरूपसे कहना वहाँ आयगा तिर्यक् सामान्य। इन्हीं दोनों प्रकारके सामान्योंका उदाहरण दे रहे हैं।

सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ४-५ ॥

तिर्यक्सामान्यका स्वरूप—जो सदृश परिणमन है वह तो है तिर्यक् सामान्य। जैसे गेहूँके दाने अरबों पड़े हैं, ढेर लगा है तो वे सब गेहूँ सदृश धर्म वाले हैं। जो आकार जो रंग जो प्रकार गेहूँमें है—वही रंग वही आकार अन्य गेहुंवोंमें है यों उन सारे ढेरोंमें एक गेहूँ शब्दसे कहा यह हुआ तिर्यक सामान्य। जैसे अनेक गायें खड़ी है—कोई चितकबरी, कोई लाल, कोई काली कोई सफेद कोई खंडी कोई मुण्डी आदिक तो उन सब गायोंमें जो गायपन है वे सब गायें कहलाती हैं। ऐसा जो गोत्व सामान्य है वह है तिर्यक सामान्य, क्योंकि यहां सदृश परिणमन आया। है शंकाकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कह रहा है क्षणिकवादी कि खंडी मुण्डी, चितकबरी, लाल, काली, पीली आदिक जो व्यक्ति गायें हैं उनको छोड़कर और कोई सामान्य चीज नहीं है तब सामान्य तो आकाशके फूलकी तरह असत् हुआ। क्षणिकवादी सामान्य मानलें तो उनका क्षणिक सिद्धान्त न रहेगा। पदार्थकी सब पर्यायोंमें कोई सामान्य तत्त्व है ऐसा माननेका अर्थ यह हुआ ना कि वह नित्य है। लेकिन क्षणिकवादी कहां मानते हैं। सो खण्डी मुण्डी आदिक गायोंको छोड़कर गाय गाय़ना गोत्व सामान्य नहीं है, फिर सामान्य लक्षण बनाना यह बिल्कुल अयुक्त बात है। ऐसी शंकाकारकी शंका है उसका उत्तर दे रहे हैं कि यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि गाय गाय बहुत सी गायोंमें यह भी गाय यह भी गाय। दूसरे लोग बराबर ज्ञान कर रहे हैं, इस अबाधित प्रत्ययका सद्भाव है कि गोत्व है सामान्य अर्थात् गोत्व सामान्यका सब लोग निर्बाध रूपसे ज्ञान कर रहे हैं ऐसे सामान्यका अभाव सिद्ध नहीं है। अबाधित प्रत्ययका विषय होनेपर भी अर्थात् सबके ज्ञानमें खूब बिना बाधाके ज्ञानमें आनेपर भी यदि सामान्यका असत्त्व मानोगे कि सामान्य कुछ तत्त्व नहीं है, तो यदि ऐसा मानोगे कि सामान्य कुछ तत्त्व नहीं है तो विशेषका असत्त्व हो जायगा, क्योंकि यहां भी अबाधित प्रत्ययकी अविशेषता है। जब तुम ज्ञानमें विषयभूत हुए सामान्य असत्य मान रहे तो ज्ञानमें विषयभूत हुआ विशेष भी सत् न रहेगा। क्योंकि यह चीज है इसकी व्यवस्था बनाने वाला तो अबाधित ज्ञान है। जिस ज्ञानमें कोई बाधा आये उसके बारेमें कहा करते हैं कि यह चीज है सत् है, लेकिन ज्ञानमें आनेपर भी जब हम असत् ठहराने लगे तब फिर सत्त्व असत्त्वकी कोई व्यवस्था नहीं रह सकती है। और, यदि उस अबाधित ज्ञानको विषयके बिना भी सद्भाव मान लोगे तो कोई व्यवस्था नहीं बनेगी। इस कारण मानो सही कि जो ज्ञानमें जचे सो ठीक है। ज्ञानमें देखो जच रहा कि जितनी गायें हैं वे भिन्न भिन्न प्रकारकी हैं। उनमें यह ज्ञान बराबर हो रहा कि ये सब गायें हैं। इन सबमें कितनी गायें हैं इस प्रकारका जो अबाधित प्रत्यय चल रहा है वह सिद्ध करता है कि सामान्य तत्त्व है। जैसे कि ज्ञानमें यह आ रहा कि यह गाय अच्छा दूध देने वाली है, पुष्ट है, अच्छे रंगकी है, अच्छे डोल डौलकी है। जैसे एक गायमें यह ज्ञान करते हैं तो विशेष ज्ञान हो रहा ना, तो विशेषकी तरह सामान्य भी ज्ञानमें आया करता है। इस कारण सामान्य है। विशेष भी है और पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है।

अनुगताकार प्रतिभासका निर्विकल्प समाधिके लिये पूर्ववर्ती सहयोग ज्ञानमें इन पदार्थोंके विषयमें अनुगताकार पना आ रहा है, इसमें कोई बाधा नजर नहीं आती, क्योंकि सब जगह, सब देशोंमें, सब कालमें अनुगत प्रतिभास बराबर विदित होता है और तभी वह व्यवहारका हेतु बनता है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें बोध है। यह उसके समान है। जैसे चटाई लावो तो अब वह चाहे नई चटाई लावे चाहे पुरानी, उस सम्बन्धमें ज्ञान है ना कि यह भी चटाई है। यह भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चटाई है, और उसमें अर्थक्रिया बनती है। उससे प्रवृत्ति होती है। अनुगत आकार सब ज्ञानमें झलक रहा है और अनुगत आकार झलके बिना तो आत्माका स्वानुभव भी नही बन सकता। स्वानुभवमें किस प्रकारका आत्मा ज्ञानमें रहता है ऐसा सामान्य हुआ केवल चैतन्यमात्र। मनुष्य नही। देव नही। इस एक सामान्य चित्स्वरूप अतस्तत्त्वके बोधसे प्रतिभाससे स्वानुभाव होता है। तो अनुगताकार ज्ञानमें आया यह बिना अव-बधानकी बात है। इससे यह भी सिद्ध है कि जो बुद्धि ऐसी अव्यवहित है कि उसमें अनुगताकार प्रतिभासित हो रहा है जो अनुगत आकार सबमें पाया जाने वाला है वह व्यावृत्त आकारके अनुभवसे अनिश्चित है। दोनों ही प्रतिभासमें पाये जाते हैं। यह गाय है ऐसा ज्ञान करनेके ही साथ यह भैंसा घोड़ा आदिक नही है, यह भी साथमें ज्ञान हो रहा है। ये सब गायें हैं ऐसा ज्ञान होनेके साथ सबमें गायपना है, एक समान है, यह भी बोधमें आ रहा है। तो सामान्य और विशेष दोनों बुद्धि में आते हैं। जिस बुद्धिमें यह अनुगत आकार प्रतिभासमें आ रहा है कि यह अन्य पदार्थोंसे बिल्कुल जुदा है, व्यावृत आकार बनता है ऐसी बुद्धि अनुगताकार वस्तुकी व्यवस्था करती है। वहां जो सर्वथा नित्य मानन वाले हैं वे विशेष नही मान सकते। क्योंकि विशेष मानेंगे तो पर्याय माननी पड़ेगी। तब अनित्व बन जायगा। क्षणिकवादी लोग सामा-न्य नही मान सकते। फिर सामान्य मानेंगे तो उन्हें वस्तुका नित्य मानना पड़ेगा, किन्तु वस्तुकी व्यवस्था इस ही प्रकार है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। ऐसा सबका ही ज्ञान हो रहा है। सब चीजें हैं, बदलती रहती हैं फिर भी उनमें वस्तुसामान्य वही एक सदा रहता है और पहिलेसे था। किसी भी पदार्थकी चर्चा करो जीवके सम्बन्धमें यही बात है कि अपनी पर्यायसे तो परिणमते हैं और जो एक सामान्य तत्त्व है सदा रहने वाला है वह शाश्वत रहा करता है। पुद्गल परमाणु ले लो। उसमें रूप, रस, गंध स्पर्श बदलते रहते हैं पर रूप सामान्य, रस सामान्य आदिक गुण ये तो सदा शाश्वत हैं। कोई भी रूप बदले, रूप तो रहेगा। कोई भी परिणति बनो वस्तु तो रहेगा। तो यों प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है और पदार्थ ही ज्ञानमें आया करता है। सो ज्ञानका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, इस होको प्रमाणका विषय कहते हैं। इस अध्यायमें प्रमाणके विषयकी चर्चा की गई है कि प्रमाणका विषय क्या होता है इस एक सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विवरण पर बहुतसे तत्त्व और समस्यायें हल हो जाया करती हैं। पदार्थका सामान्य विशेषा-त्मक जाने बिना गुण विकासके लिए उत्साह नही हो सकता मैं वही हूं जो सदा रहता हूं। मैं अभी मलिन पर्यायमें हूं। इस पर मलिन पर्यायको छोड़कर निर्मल पर्यायमें आ सकता हूं। यह उत्साह सामान्य विशेषात्मक आत्मपदार्थके व अन्तस्वत्त्व के बोधमेंसे ही आ सकता है।

बुद्धि भेदसे सामान्य विशेष तत्त्वकी सिद्धि—जितने भी पदार्थ होते हैं वे सामान्य विशेषात्मक होते हैं। सामान्य धर्म तो जाना जाता है सदृश परिणामोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखकर। एक समान परिणमनोंको देखकर, आकार प्रकारोंको देखकर तो सामान्यका ज्ञान होता है और एक दूसरेसे भिन्न है। ऐसी भिन्नता देखकर विशेषका ज्ञान होता है। तो उस सम्बन्धमें दार्शनिक ऐसे हैं जो केवल सामान्यको ही मानते हैं पदार्थमें और कुछ ऐसे हैं जो केवल विशेष ही मानते हैं। तो यह जो केवल विशेष ही मान रहा है वह शंकाकार कुछ कह रहा है। केवल विशेष ही माने वह कौन हो सकता है? क्षणिकवादी क्योंकि विशेषका, भेदका अधिकसे अधिक भेद माननेपर क्षणिकपनेकी सिद्धि होगी। तो शंकाकार कह रहा कि विशेषके अलावा कोई कुछ सामान्य समझमें ही नही आता। सब विशेष ही विशेष है। सामान्य रही कुछ नही है, क्योंकि यह सामान्य है, यह विशेष है ऐसी बुद्धिमें कोई भेद नही आता। किसी चीजको देख कर उसमें ऐसा तो कोई नही निरखता कि इसमें यह तो सामान्य है और यह विशेष है। इस प्रकारका बुद्धि भेद न होनेसे सामान्य कुछ चीज नही है। जो देखा, जो जाना सो सब विशेष ही विशेष है। बुद्धि भेदके बिना पदार्थके भेदकी व्यवस्था नही की जा सकती। यदि बुद्धि भेद न होनेपर पदार्थ भेद मान लिया जाय, प्रतिभास तो एकत्व है और वहां पदार्थ भेद मान लिया जाय तो इसमें बड़ा अनर्थ होता है। ऐसा शंकाकार विशेषवादका मण्डन कर रहा है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। सामान्यका स्वरूप और है, विशेषका स्वरूप और है। जैसे किसी पदार्थमें रूप, रस, गंध, स्पर्श अनेक धर्म हैं। एक पदार्थमें हैं और एक ही समयमें हैं तो एक ही पदार्थके आश्रय रहने वाले जो रूप, रस, आदिक हैं देखो इनमें बुद्धि भेदसे भेद सिद्ध है कि नही। चीजको उठाकर कौन कह सकता है कि देखो इसमें यह तो रूप है और यह रस है। ऐसा कोई बता तो नही सकता। किन्तु क्या बुद्धि भेद नही जानता कि रूप यह है और रस यह कहलाता है? चक्षुरिन्द्रियके द्वारा जो नजर आया वह तो रूप है और रसनाइन्द्रियसे जो समझमें आया सो रस है। तो जैसे एक ही पदार्थमें रूप, रस एक साथ है और एक पदार्थका हम ज्ञान कर रहे हैं लेकिन वहां भी बुद्धिसे ये दोनों गुण अलग अलग समझमें आते हैं। रूप इसका नाम है और रस इसका नाम है।

एकेन्द्रियगम्य तथा एक पदार्थमें प्रतिभासभेदकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि जो पदार्थ एक ही इन्द्रियके द्वारा जाना जाता है उसमें जाति और व्यक्तिका भेद कैसे बन सकता है? जाति मायने सामान्य। व्यक्ति मायने विशेष। जब हम चक्षुरिन्द्रियसे ही देख रहे हैं गाय तो अब उसमें उसमें यह छांट कैसे बन जायगी कि इसमें गोत्व तो सामान्य है और यह चार लम्बे पेट वाला जो जानवर खड़ा है यह व्यक्ति विशेष है। यह जातिका और व्यक्तिका याने सामान्यका और विशेषका भेद कैसे बन जायगा जब कि वह एक चीज ज्ञानमें आ रही है और एक इन्द्रियसे ज्ञानमें आ रही। और, जब सामान्य और विशेषका भेद न बन सका तो इसके मायने यह है कि विशेष तो दिख ही रहा, सामान्य कुछ चीज नही है। तो यों विशेषवादी सामा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न्यका निराकरण कर रहा और केवल विशेषका ही सत्व बता रहा। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है कि जो चीज एक ही इन्द्रियके द्वारा जानी जाय उसमें भेद नहीं होता। देखो गर्मीके दिनोंमें हवा भी चल रही है। तेज धूप भी पड़ रही है तो स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा हवा जानी जाती है तो यह कहना युक्त नहीं है कि एकेन्द्रियके द्वारा जो ज्ञेय होता है उसमें भेद नहीं रहता। देख लो स्पष्ट हवामें और गर्मीमें भेद समझमें आता कि नहीं कि यह तो गर्मी लगी और यह हवा लगी और दोनोंके दोनों एक ही इन्द्रियसे जाने गए। तो हवा और गर्मीमें जो यह भेद सिद्ध हो रहा है उसका कारण प्रतिभास भेद ही तो है। गर्मीका और ढंगसे प्रतिभास हो रहा हवाका और ढङ्गसे प्रतिभास हो रहा। हो रहा एक ही स्पर्श इन्द्रियसे, पर प्रतिभास भेद होनेसे हम वहाँ भेद व्यवस्था कर लेते हैं। यह तो हवा है और यह गर्मी है। इसी प्रकार और रस, एक पदार्थमें रह रहे हैं और एक जाति और व्यक्ति सामान्य और विशेष ये दोनों धर्म एक पदार्थमें हैं और उसे हम उपयोगसे जान रहे हैं लेकिन प्रतिभास भेद तो है। जो सदृश परिणाम वाला तत्त्व है वह तो है सामान्य और जो विलक्षण परिणाम वाला तत्व है वह है विशेष। गायको देखकर तुरन्त ही क्या यह ज्ञान नहीं बनता कि घोड़ा, भैंस, बकरी आदिक सबसे निराला पदार्थ है। और, क्या यह प्रतिभास नहीं होता कि ऐसी गाय हुआ करती है। सो यह उनमेंसे एक है। अर्थात् अनुगताकार और व्यावृत्ताकार दोनों ही पदार्थोंके जाननेमें समझमें आ जाते हैं। अनुगताकार तो कहते हैं सदृश परिणामको। हर एक गायमें जो चीज पायी जाय जैसे गलेके नीचे लटकने वाली सासना [पतली खाल]। तो उस सदृश लक्षणसे यह ध्यान नहीं है क्या कि ऐसी गाय होती है और यह गाय है? तो किसी पदार्थको देखकर अनुवृत्त व्यावृत्तका याने सदृश धर्मका ज्ञान और विसदृश धर्मका ज्ञान दोनों एक साथ चलते हैं। तो सामान्य और विशेषमें भी प्रतिभास भेद बराबर होता है। सामान्य प्रतिभास तो है अनुगताकार। जैसे गाय, गाय, गाय सबमें यह बुद्धि चल रही है, यह तो है सामान्य प्रतिभास। और, विशेष प्रतिभास होता है व्यावृत्ताकार। यह इससे भिन्न है ऐसा जो बुद्धिमें आता है उसे कहते हैं व्यावृत्ताकार। तो सामान्य और विशेषमें भेद प्रतिभास बराबर सही है। ऐसा पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, केवल व्यक्तिरूप, विशेषरूप भेदरूप ही नहीं है।

व्यवहारमें भी एक ही वस्तुमें सामान्य विशेषका प्रतिभास— और भी देखिये! चले जा रहे हैं घूमने कहीं, वहां बड़ी दूर से जो वृक्षोंका समुदाय नजरमें आता है तो वहां केवल ऊर्ध्वाकार सामान्य नजरमें आता है अर्थात् ऊँचा ऊँचा है ऐसा भर ज्ञानमें आता कि यह आमका वृक्ष है, यह जामुनका वृक्ष है, यह ठूठ है आदि। ठूठ है या वृक्ष है इसका तो संदेह बना हुआ है, तो इस संदेहको दूर करनेके लिये जब प्रतिभास होता है सामान्यका अर्थात् ऊँची-ऊँची चीजका सामान्य प्रतिभासमें आया था, फिर उसमें हुआ सन्देह कि यह ठूठ खड़ा है या व्यक्ति है। उस सन्देहको दूर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

था, फिर उसमें हुआ सन्देह कि यह ठूठ खड़ा है या व्यक्ति है। उस सन्देहको दूर करने के रूपसे उस हीका विशेष है, क्योंकि भेदका यही लक्षण है कि दूसरेके परिहारपूर्वक रहे। सामान्यमें केवल एक ऊर्ध्वाकार ही जाना था। ठूठ है या पुरुष इसके सन्देहका मौका था। अब यह ठूठ ही है, पुरुष नही है ऐसा जो प्रतिभासमें आया सो क्या दूसरा कुछ आया। वही पदार्थ तो आया, किन्तु अब वह विशेष कहलाने लगा।

सामान्य विशेष दोनोंके प्रतिभासके सम्बन्धमें प्रश्न और उत्तर— शंकाकार कहता है कि वह जो व्यतिरेक प्रतिभास हुआ है—स्थाणका पुरुषसे जो भिन्न प्रतिभास हुआ है वहाँ निकट होनेपर फिर ऊर्ध्वाकार सामान्य प्रतिभास क्यों नही होता जब ज्ञानमें विशेष बात आ गई, यह पुरुष है या ठूठ है कुछ भी एक ज्ञानमें आ गया तो उसके बाद कुछ ऊँचा-ऊँचा उठा हुआ है यह प्रतिभास तो नही रहता है, क्यों नही रहता? बहुत दूरसे जो बात ज्ञानमें आ रही थी निकट पहुंचनेपर फिर उतना ही क्यों नही ज्ञानमें रहता? स्पष्ट क्यों प्रतिभास होने लगता सामान्य विशेष दोनों ही क्या ज्ञानमें नही आते? ऐसा शंकाकार अब विकल्प उठाकर सामान्यका निराकरण करना चाह रहा कि सामान्य कुछ चीज नही। विशेष ही वस्तु है। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्तियुक्त नही है क्योंकि यह इस विशेषमें भी घटित हो जायगा। विशेष भी यदि सामान्यसे अलग है तो दूर होनेपर वस्तुका स्वरूप सामान्य जैसे प्रतिभास मान होता है वहां विशेष क्यों कुछ नही प्रतिभासमान होता। जैसे कि कहते हो कि सामान्य अब क्यों नही प्रतिभासमान होता जब कि उस पदार्थके पास पहुँच गए? दूरसे देखनेमें ऊर्ध्वाकार मालूम होता था पर निकट पहुँचनेपर यह तो प्रतिभासमें नही रहता कि यह इतना ऊँचा उठा हुआ है। शंकाकारने यह कहा था कि सामान्य यदि कोई वास्तविक बात होती तो निकट पहुंचनेपर यह ठूठ है ऐसा ज्ञान होनेपर फिर वह ऊर्ध्वाकार सामान्य भी प्रतिभासमें रहता किन्तु ऐसा है नही इससे सिद्ध है कि सामान्य कुछ चीज नही है। उसके उत्तरमें कर रहे हैं कि ऐसी बात तो हम विशेषमें भी घटा सकते हैं। दूरसे जब हम वस्तुका सामान्य स्वरूप अपने प्रतिभामें ले रहे हैं तो वहां विशेष क्यों प्रतिभासमें नही आ रहा? इससे सिद्ध है कि विशेष नामका तत्त्व कुछ नही है। यों विशेषका भी हम असत्त्व कह सकेंगे। देखो जब इन्द्रधनुष नीले, पीले आदिक रूप में प्रतिभासित होता है तो दूरसे ही नीले पीले आदिक सब रूपोंका प्रतिभास नही होता यह तो बात नही है। जैसे इन्द्रधनुषमें दूरसे ही नीले पीले आदिक रूप दिख रहे हैं इसी तरह किसी स्थलपर जब सामान्यका प्रतिभास हो रहा है तो वहाँ विशेषका भी प्रतिभास हो रहा है। ऐसा विशेषमें भी हम कह सकते हैं। आक्षेप प्रतिक्षेप यहाँ उस तरह दिये जा रहे हैं कि क्षणिकवादी लोग यह कह रहे हैं कि पदार्थमें सामान्य धर्म नही हुआ करता। एक विशेष ही होता है। और उसके लिये इसकी युक्ति दी कि सामान्य और विशेष दोनों ही यदि धर्म होते तो किसी वृक्षके ठूठके निकट पहुचनेपर जो विशेष प्रतिभास हो रहा है उस समय सामान्य क्यों नही प्रतिभासमें आ रहा कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह ऊँचा उठा हुआ कुछ खड़ा है। यह सामान्य भी तो बोधमें रहना चाहिए जब कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक माना जा रहा । केवल वस्तु ही नजर आ रहा सामान्य यहाँ होता नही, इससे विशेष ही तत्त्व है, सामान्य नही। इसके उत्तरमें ठीक उनकी ही पद्धतिके अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि विशेष यदि कोई तत्त्व होता अलग तो जब दूरसे ऊर्ध्वाकार दिख रहा था कुछ ऊँचा सा उठा था तो उस समय ठूठ आदिक व्यक्ति क्यों नही प्रतिभासमें आ रहे थे ? इससे सिद्ध है कि विशेष कुछ चीज नही है। दोनों ही बातें गलत कि विशेष ही होता, सामान्य कुछ नही होता अथवा सामान्य ही तत्त्व हो विशेष न हो। वस्तु तो सामान्य विशेषात्मक होती हैं। उनमेंसे जो केवल विशेष तत्त्व मान रहा है और सामान्यका खण्डन कर रहा है उसको समझानेके प्रसंगमें यह आपत्ति दी जा रही है कि यों सामान्य ही तत्त्व रहेगा विशेष तत्त्व न रहेगा,

दूरनिकटदेशसामग्रीकी सामान्यविशेषात्मक पदार्थके स्पष्टास्पष्ट प्रतिभासमें हेतुरूपता—अब शङ्काकार कहता है कि निकट देश सामग्री विशेष प्रतिभासको उत्पन्न करने वाली होती है। दूर देशमें रहने वाले पुरुष को यह सामग्री प्राप्त नही है। वह अभी दूर ही खड़ा है इस कारण से उसे विशेषका प्रतिभास नही होता। खाली ऊर्ध्वाकार सामान्यका प्रतिभास हो रहा है। है कुछ ऊँचा खड़ा—खड़ा सा ! कहते हैं कि इस तरह तो यह भी कह सकते हैं कि सामान्य प्रतिभास को उत्पन्न करने वाली सामग्री है दूरदेशसामग्री, बहुत दूर स्थायी खड़ा हुआ हो तो सामान्यका प्रतिभास होता है और दूरदेशसामग्री निकट रहने वाले पुरुषोंको प्राप्त नही है। इस कारण निकट में रहने वाले लोगों को सामान्य प्रतिभास नही होता अर्थात् यह है कुछ ऊँचा उठा सा ऐसा प्रतिभास नही होता। इस तरह तो समान समाधान है। और है निकटमें सामान्यका प्रतिभास जैसे कि विशेषका प्रतिभास स्पष्ट है। यह तो शङ्काके उत्तरमें कहा गया था, पर वास्तविकता यह है कि जिस समय कोई दूर देशमें खड़ा हुआ पुरुष कुछ पदार्थ निरख रहा है तब भी सामान्य विशेष दोनोंका प्रतिभास है और जब यह निकट देशमें आ गया, जो पदार्थ जाना जा रहा है तो वहां भी सामान्य और विशेष दोनोंका प्रतिभास है। अब जो यह प्रतिभासभेद है कि जैसे दूरमें खड़े रहकर पदार्थका अस्पष्ट धुंधला प्रतिभास हो रहा है उस प्रकारका अस्पष्ट प्रतिभास निकट पहुँचनेपर नहीं होता क्योंकि अस्पष्ट प्रतिभासमें सामग्री है, दूरदेशस्थ सामग्री वह तो अब नहीं रही। तो अब तो यह जानने वाला पुरुष ज्ञेय पदार्थके निकट क्षेत्रमें पहुँच गया है। सो सामग्रीके भेदसे स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभास हो रहा है लेकिन समस्त ज्ञानोंके समय सामान्यविशेषात्मक पदार्थ ही प्रतिभासमें आया करता है।

व्यावृत्ताकार प्रतिभासवत् अनुगताकार प्रतिभासमें बाह्य साधारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्तनिरपेक्षताका अभाव – अनुगताकारका प्रतिभास भी बाह्य साधारण निमित्त की अपेक्षा न रखकर घटित नहीं होता। जैसे निर्विशेष व्यावृत्त आकारका प्रतिभास बाह्य सामग्री निमित्तकी अपेक्षा न रखकर नहीं होता यों ही सामान्य प्रतिभास भी बाह्य निमित्तकी अपेक्षा न रखकर नहीं होता अन्यथा प्रतिनियत देशमें प्रतिनियत कालमें इस प्रकारकी क्रियारूपसे उसका प्रतिभास न हो सकेगा। कोई पुरुष सुबहके समय जब कि कुछ अधेला उजेला रहता है, घूमने गया। उसे रास्तेमें कोई स्थित ऊँचा खड़ा सा पदार्थ नजर आया। था वह ठूठ, पर उसको दृष्टिमें लेकर यों ज्ञान कर रहा है कि यह तो कुछ ऊँचा सा है, यह है उसका सामान्य प्रतिभास। और जब जब उसके निकट पहुंच गया तो वहां समझमें आया कि यह ठूठ है। अब इसमें जो पहिले सामान्यसा ज्ञान हुआ था कि यह है कुछ ऊँचा उठा हुआसा पदार्थ। तो हुआ सामान्यका ज्ञान मगर निमित्त निरपेक्ष वह भी नहीं है। वहांपर भी इस जगह है यह ऊँचा उठा हुआ सा पदार्थ। या इस सुबहके समय यह दिख रहा है ऊँचा उठा हुआ सा पदार्थ। तो प्रतिनियत देश कालके आकार रूपसे उसका प्रतिभास तो हो ही रहा है तो निमित्त निरपेक्ष नहीं रहा प्रतिनियत देश कालमें। वह ऊर्ध्वाकार सामान्य समझमें आ रहा है। ऐसा नहीं है कि बाह्य साधारण निमित्त सामान्यमें तो होते नहीं हों और व्यक्तिमें विशेषमें बाह्य साधारण निमित्त होते हैं। ऐसा भी नहीं है कि असाधारण व्यक्तियां ही उस सामान्यमें निमित्त पड़ती हैं। और कुछ नहीं, ऐसी बात यों नहीं है कि फिर वह व्यक्तियां भेदरूपसे व्यापक हैं ना। फिर भी उन असाधारण व्यक्तियोंका सामान्य प्रतिभासमें निमित्त माना जाय तो घोड़ा आदिक जो अनेक व्यक्ति हैं उनमें भी गौ गौ एक दशा बननेका निमित्त हो जाना चाहिये। शंकाकार यहाँ यह कह रहा है कि सामान्य प्रतिभास एक तो होता नहीं। और जैसे जाना मान भी ले तो उस सामान्य प्रतिभासमें वह व्यक्ति ही निमित्त है। अन्य कोई कहीं उनमें निमित्त नहीं है। उसके उत्तरमें कहते हैं कि व्यक्ति ही सामान्य प्रतिभासमें निमित्त बन जाय तो घोड़ा गधा गाय सुवर आदिक सब खड़े हों तो उनमें यह गाय है, गाय है ऐसा सामान्य प्रतिभास हो जाना चाहिये। और जब यह मान लोगे कि बाह्यमें जो उनमें सदृश परिणाम वाले पदार्थ हैं उनका स्मरण निमित्त होता है तो फिर कोई व्यवस्था नहीं रहती सामान्यकी सिद्धिमें और विशेषकी सिद्धिमें।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके ही प्रमाणविषयत्वका निष्कर्ष —उक्त कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि जितने भी पदार्थ है लोकमें सद्भूत, जीव हो, पुद्गल हो, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक पदार्थ हों, प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। पदार्थ हैं इस नातेसे उनमें प्रतिक्षण परिणमन भी होता रहता है। तो जो परिणमन है वह तो है विशेषतत्त्व और अनादि अनन्त अहेतुक जो कुछ स्वभाव है वस्तुका वह है सामान्य तत्त्व। यों प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं, और, यह सामान्य है, यह विशेष तत्त्व है इस प्रकारका प्रतिभास भेद भी हो रहा। इससे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुमें सामान्य धर्म भी है और विशेष धर्म भी है, और वे दोनों एक ही वस्तुके आधार में हैं उनमें ये सब कुछ हम समझनेके लिए उपचारका कथन किया करते हैं। वस्तुः सामान्य विशेषात्मक वही पदार्थ हैं प्रतिभास भेदमें बराबर ध्यानमें आः रहा। प्रमाण का विषय केवल विशेष न रहा, केवल सामान्य न रहा किन्तु सामान्य विशेषात्मक जो कुछ पदार्थ है वह ज्ञानका विषय और वही कहलाता है प्रमाणका विषय। तो यों प्रमाणके विषयकी आलोचना करनेके प्रसंगमें यह कहा गया है कि ज्ञानका विषय है सामान्य विशेषात्मक पदार्थ। सामान्य दो प्रकारका है—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य। तो यहाँ जो सदृश परिणमन वाला है वह तो है तिर्यक् सामान्य और जो अनेक पर्यायोंमें शाश्वत रहने वाला है वह है ऊर्ध्वता सामान्य सामान्य माने बिना विशेषका टिकाव नहीं हो सकता और विशेष तत्त्वके माने बिना सामान्यका टिकाव नहीं हो सकता। और, सामान्य विशेषात्मक पदार्थको निरखनेपर ज्ञान भी सही बनता, कषायों का क्षय होता है और आत्माको शान्तिपथपर चलनेकी प्रेरणा मिलती है। यों पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, और ऐसे हीं पदार्थ ज्ञानमें आते हैं।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे एकत्व प्रत्यय होनेका शंकाकार द्वारा वर्णन

ज्ञानका विषयभूत पदार्थ कैसा हो सकता है, इस सम्बन्धमें चर्चा चल रही है। सिद्धान्त यह रखा कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है। अर्थात् ज्ञान जिस किसीको भी जानता है वह पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है। न केवल सामान्यरूप न केवल विशेषरूप। तो इस प्रसङ्गमें विशेषवादी क्षणिकवादी) कह रहा है कि सामान्य तो अवस्तु है, कुछ चीज ही नहीं है। वस्तु तो केवल विशेष है। फिर यह पूछते हैं कि जब केवल विशेष विशेष ही पदार्थ है, भिन्न—भिन्न है तो फिर अनेक पदार्थोंमें जो एकत्वकी बुद्धि होती है वह क्यों होती है? जैसे बहुतसे मनुष्योंमें यह मनुष्य है, मनुष्यत्वसामान्यका जो बोध होता है वह क्यों होता है? केवल विशेष विशेष ही तत्त्व रहे तो फिर सामान्यक बोध न होना चाहिये। इसपर शंकाकार कह रहा है अतत्कार्य कारण व्यावृत्ति पदार्थोंके अभेद प्रतिभासका कारण होता है। अर्थात् जैसे किसी पदार्थको समझा जा रहा है जैसे गाय, गाय, गाय सब गायोंमें जो एक गौ गौ का ही निश्चय रखने वाले एक अर्थका प्रतिभास हो रहा है, जिसे अन्य लोग सामान्य शब्दसे कहते हैं उस एक अर्थ सामान्यके प्रतिभासका कारण यह है कि जो गायके कार्य नहीं है, गायके कारण नहीं हैं उनसे यह अलग है इस कारण गाय गाय, इस प्रकार एकत्वका बोध होता है। सीधी बात तो इसमें यह निकली कि जो गाय नहीं है घोड़ा बकरी आदिक हैं उनकी व्यावृत्ति है इसमें। इससे गाय गाय सामान्यका ज्ञान कर लिया जाता है। वस्तुतः सामान्य कोई तत्त्व नहीं है। विशेष ही तत्त्व है। ये अश्व आदिक न तो गायके कार्य हैं और न गायके कारण हैं विशेषवादमें कारण तो होता है उत्तर समयमें और कार्य होता है पूर्व समयमें। जैसे आज असगुन देखा। मान लो काग सूखे वृक्षपर बैठा हुआ रो रहा है। तो इस असगुनका अर्थ माना जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि ६ महीने बाद मृत्यु होगी। तो यह जो वर्तमान दृश्य है यह ६ महीने आगे होने वाले मरणका कार्य है याने कारण तो ६ महीने बाद होने वाला है। उसका काम यह है—जो ६ महीने पहिले यह असगुन हुआ है। तो गायका अश्वादि नहीं है। अश्वादिककी उत्तर पर्याय नहीं है और कार्य भी नहीं है। ऐसा जो परिज्ञान है कि यही सब गायोंमें गाय गाय, गाय ऐसे बोधका अतत्कार्यकारण व्यावृत्ति कारण होता है न कि कोई गाय सामान्य तत्त्व है जिसकी वजहसे गाय, गायका यह बोध होता है।

दृष्टान्तपूर्वक अनेक कारणोंमें एकत्वप्रतिभासका शङ्काकार द्वारा विवेचन – अनेकोंमें एकत्वप्रतिभासपनकी बात अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें भी अन्य पदार्थोंके निर्णयका हेतुपना देखा जाता है। जैसे पदार्थका परिज्ञान करनेमें इंद्रिय कारण है, पदार्थ कारण है, क्षणिकवादमें जो वस्तुका परिज्ञान होता है उसके कारण तीन बताये गए हैं पदार्थ, प्रकाश और इन्द्रिय। ये तीनों होते हैं तब पदार्थका ज्ञान होता है। और, इन तीनोंमें पदार्थ तो है तदुत्पत्ति वाला कारण और प्रकाश और इन्द्रिय हैं सहयोगी कारण। अर्थात् जो भी ज्ञान हुआ है उस ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे हुई है। चौकीका ज्ञान हुआ तो इस ज्ञानकी उत्पत्ति चौकीसे हुई है तभी तो यह कह सकते कि यह ज्ञान चौकीका है। इन्द्रिय और प्रकाश ये तदुत्पत्ति सम्बन्ध रखने वाले कारण नहीं हैं किन्तु उसमें सहयोगी कारण हैं। तो यों ये तीन कारण कर क्या रहे हैं? किसी एक पदार्थका अवगम कर रहे हैं। एक को जान रहे हैं। तो एकताका जानना अभेदका जानना। यह अनेक कारणोंमें भी हो सकता है। इसी तरहसे गाय अनेक हैं। वे कारण बन गए एक गायको समझनेके। पर उन गायोंमें एक सामान्य धर्म है सामान्य तत्त्व है। तब वह गाय गाय कहलाती है ऐसा नहीं है। क्षणिकवादी लोग सामान्यको नहीं मानते वे विशेषको ही मानते हैं। क्योंकि विशेष को माननेपर ही क्षणिकवादका सिद्धान्त कायम रह सकता है। क्षणिक माना जायगा तो पदार्थमें नित्यत्व सिद्ध हो जायगा। सामान्य शाश्वत है, इसका अर्थ है कि पदार्थ नित्य है तब क्षणिकवादका ही व्याघात हो गया। तो क्षणिकवादी शंकाकार यह कह रहा है कि चीज अत्यन्त भिन्न है, इन्द्रिय आलोक और पदार्थ, तिसपर भी ये तीनोंके तीनों एक ही अर्थका बोध करनेमें जुटे हैं। तो देखो ना भिन्न भिन्न होनेपर भी उन कारणोंमें एकका ज्ञान भेदका ज्ञान जिसे अन्य लोग सामान्य कहते हैं उसका ज्ञान हो जाता है। और दूसरा दृष्टान्त भी देखिये जैसे ज्वर शान्त करनेकी कोई औषधि पकायी गयी मानो काढ़ा पकाया गया तो उसमें ८–१० चीजें रहती हैं। तो वे ८–१० चीजें भिन्न भिन्न हैं फिर भी देखो उन ८–१० चीजोंके कारणसे एक काम बन गया ज्वरका उपशमन हो गया। तो अत्यन्त भिन्न कारणोंमें भी एकत्वका बोध हो जाया करता है इससे कहीं यह न समझना कि वह एकत्व कार्य सामान्य है अथवा कोई अभेद सदृश धर्म है। शंकाकारका यहां यह आशय है कि सामान्य नामका तत्त्व पदार्थमें नहीं है। सब विशेष ही विशेष है और कदाचित् सामान्यका जो बोध होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, एकत्वका जो ज्ञान होता है ये हैं सब गाय, गाय, गाय। तो वह बोध एक भ्रान्तिरूप है, अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुआ है। वस्तु तो वह एक एक अलग अलग ही है।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे एकत्व प्रत्यय माननेकी शंकाका समाधान उक्त आशंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह जो तुम्हारा कहना है कि वस्तुमें जो एकत्वका बोध होता है यह वही वही है। जो जातिका बोध होता है वह अतत्कार्य कारण व्यावृत्तिसे होता है. कहीं सदृश परिणाम पाए जाते हैं इससे नहीं होता, किन्तु उसका जो कारण नहीं, उसका जो कार्य नहीं, उसकी है यहां व्यावृत्ति, उससे समझा जाता है एकत्व। इसके उत्तरमें कह रहे कि समान परिणामका आधार न माननेपर याने सर्वथा ही यह माना जाय कि सदृश परिणाम कुछ चीज ही नहीं है, तो वस्तुमें अतत् कार्य कारण व्यावृत्ति भी सिद्ध नहीं कर सकते। यह कहना कि इन समस्त गायोंमें गायोंसे जो भिन्न पदार्थ हैं उनमें गायके कारणत्वका अभाव है और कार्यत्वका अभाव है इससे यह बोध हुआ कि वे सब गायें हैं। तो यह जो अतत्कार्य कारणकी व्यावृत्ति है, अर्थात् जो कुछ भी गायके कारण नहीं है और जो गायके कार्य नहीं है उनकी व्यावृत्ति है, यह तो तब ही समझा जा सकता कि जब गायोंके सदृश परिणामका ख्याल हुआ, गायोंके कारणभूत अश्व नहीं बन सकते क्योंकि गाय जैसी बात अश्वमें नहीं है। तो सदृश परिणामपर दृष्टि तो पहुंच ही गयी तब दूसरेकी व्यावृत्ति सिद्ध हुई। जैसे कहा जाय कि जीवमें पुद्गल नहीं है तो पुद्गलका अभाव कोई तब ही जान सकता है जब जीवके परिणाम क्या हैं और सब जीवोंमें ये चीजें पायी जाती हैं यह बोध हो और तब ही तो अजीवका निषेध किया जा सकता कि जीवमें जीव नहीं है। तो सदृश परिणाम माने बिना अतत्कार्यकारण व्यावृत्ति सिद्ध नहीं हो सकती। और, सदृश परिणामका जो कारण है वही सामान्य तत्त्वका मानना कहलाता है।

अतत्कारणव्यावृत्तिसे प्रवृत्तिके अभावका प्रसंग—यदि अतत्कार्यकारण व्यावृत्तिसे एकत्वका बोध होता है तो उस एकत्वके बोधसे फिर प्रवृत्ति न बन सकेगी जैसे किसीको गायका दूध चाहिये। गाय दुहने जाना है तो पहिले वह गायको समझे तब ना किसीसे दूध दुह सकेगा। अब गायोंका समझना तो भ्रान्ति है। गोत्व सामान्यका अनुगताकारका बोध होगा तभी तो वह दूध दुहनेके लिये उठेगा, नहीं गायके बदले घोड़ा, बैल, भैंसा आदिकपर क्यों नहीं वह हाथ उठाता? तो जो अर्थ कार्य कर रहा, जो प्रवृत्ति करना चाह रहा उसे अनुगताकारका बोध है। अब ऐसे बोधमें यह गाय गाय है। क्षणिकवादमें माना गया है अतत्कार्यकारण व्यावृत्ति, जो गायमें कारण नहीं हैं। जो गायका कार्य नहीं है उनसे भिन्नता होना यह है एकत्व बोधका कारण। तो व्यावृत्तिसे निषेधसे कोई काम भी बन सकेगा क्या? अश्वादिकका निषेध—इसका नाम है गाय। तो अश्वादिकके निषेधसे दुग्ध नहीं निक-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लता, किन्तु अनुगताकार वाले यों अर्थसे दुःख प्राप्त होता है सो अनुगताकार माने बिना, सामान्यतत्त्व माने बिना तो व्यवहारका लोप हो जायगा।

शंकाकार द्वारा दिये गये दृष्टान्तमें अनेक कारणोंमें सर्वथा भिन्नता का अभाव—शंकाकारने जो दृष्टान्त दिया है कि ज्वरको शान्त करना, वह है एक कार्य और वह कार्य हो रहा है उन दस औषधियोंके मेलसे, तो वे १० औषधियां भिन्न भिन्न हैं फिर भी उन कारणों द्वारा ज्वरकी शान्ति हो रही है। यह दृष्टान्त देना भी गलत है क्योंकि वे दसों औषधियां सर्वथा भिन्न भिन्न नहीं हैं। उनमें ज्वरको शान्त करनेका कारणपना पाया जाता है इस दृष्टिसे वे दसों औषधियां कथंचित् अभिन्न है क्योंकि ज्वरके शान्ति करनेकी शक्तिकी समानता है उन दस औषधियोंमें। यदि यह समान परिणाम न होवे तो यह व्यवस्था नहीं कर सकते कि गुरमें बेल आदिक ज्वरको शान्त करनेके कारण हैं और ये ककड़ी खरबूजा आदिक ज्वरको शान्त करनेके कारण नहीं है। यह भेद आप कैसे करेंगे? यदि समान परिणाम नहीं मानते तो यह भेद नहीं किया जा सकता। जो जो पदार्थ ज्वरको शान्त करनेकी शक्ति रखते हैं उनमें इस दृष्टिसे समानता आ गई। कहीं समानता आकारसे मानी जाती है। कहीं समानता रूपतासे मानी जाती है, कहीं समानता कार्यके कारणपनेसे मानी जाती है। तो इन औषधियोंमें समानता आकारसे तो नहीं है कोई कि औषधि गोल हो, कोई लम्बी हो और कोई अन्य किसी आकारकी हो पर ज्वर शान्त होनेमें कारणपना होना इसकी समानता है। तो दृष्टान्तमें जो दस औषधियोंकी बात कहीं यह सर्वथा अभिन्न नहीं हैं।

समान परिणाम न माननेपर प्रतिनियत इन्द्रियज्ञानविषयकी अव्यवस्था

समान परिणामकी बात न माननेपर सदृशता न माननेपर, सामान्यस्वरूप न माननेपर तो ज्ञानकी भी व्यवस्था नहीं बन सकती। चक्षु ही रूपके ज्ञानके कारण होते हैं, रसना आदिक नहीं होते हैं। यह व्यवस्था कैसे बनायी गयी है इसी सामान्य समान परिणामके आधारपर। रूपज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिकी समानता सबके चक्षुओं में है। जैसे हम चक्षुके द्वारा पदार्थका रूप देखते हैं उस ही प्रकार अन्य पुरुषोंमें भी चक्षुके द्वारा पदार्थका रूप निरखते हैं तो शक्तिकी समानताका बोध है। समानता है यदि सदृश परिणाम न माना जाय जैसा कि विशेषवादकी हठमें केवल विशेष ही तत्व है सामान्य तत्व कुछ नहीं है तो यह व्यवस्था नहीं बन सकती कि चक्षु रूपके ज्ञानका कारण है और रस ज्ञानका कारण है और रस ज्ञानका कारण नहीं है। हमारी आंखें रूपका ज्ञान करती हैं तो करलें। दूसरेकी आंखें उसका ज्ञान करलें, तो यह जो व्यवस्था है कि सबसे चक्षु रूपज्ञानका ही कारण हैं तो यह व्यवस्था किस आधारपर है? यह सामान्यतत्त्वके आधारपर है। समान परिणाम पाये जाते हैं ऐसी बात चक्षुवोंमें रूपज्ञान करनेको शक्ति पायी जाती है इस समानताको देखकर हम यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोध करते हैं कि चक्षु तो रूपज्ञानके कारण है और रस ज्ञानके कारण नहीं हैं। निष्कर्ष यह है कि वस्तुमें समान परिणाम न माना जाय, सामान्य तत्त्व न माना जाय तो व्यवहार ज्ञान भी खतम हो जायगा।

व्यावृत्ताकार प्रत्ययकी तरह अनुगताकारप्रत्ययमें वास्तविक आलम्बनरूपता – अब दूसरी बात सुनो क्षणिकवादी, केवल विशेषतत्त्वको ही पदार्थ माननेवाला यह कह रहा है। यहांके अनेक पदार्थोंमें जो अनुगत प्रत्यय हो रहा है। गाय, गाय, गाय हैं सब इस प्रकार जो एक गौ जातिका बोध हो रहा है वह सामान्यके बिना ही व्यावृत्तिके आधारपर बोध हो रहा है। तो इसके उत्तरमें यह कह सकते हैं कि व्यावृत्ति प्रत्यय जो हो रहा है याने विशेषका जो बोध हो रहा है ये भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं न्यारे न्यारे हैं ऐसा जो व्यावृत्त ज्ञान चल रहा है वह भी विशेषके बिना होता है। जैसे अनुगत प्रत्यय एक समान जातिका बोध सामान्यके बिना बताया है शंकाकारने तो यह उससे निराला है ऐसा व्यावृत्त बोध भी विशेषके बिना होने लगे तो कौनसी आपत्ति है? हम ऐसा कह सकते हैं कि अभेदकी विशेषता न होनेपर भी एक ही ब्रह्मादिक स्वरूप इन अनेक नीले पीले आदिक पदार्थोंके प्रतिभासमें कारण होता है। फिर अनेक नीले पीले रूप आदिक स्वलक्षण मानना व्यर्थ है अर्थात् एक सामान्यसे ही यह सब व्यवस्था बन रही है सो विशेष माननेकी जरूरत नहीं। सामान्य क्या? एक ब्रह्म। सर्वं एकं ब्रह्म। सब कुछ एक ही ब्रह्म है और वही एक ब्रह्म भिन्न भिन्न जो पदार्थ पड़े हुए हैं उन पदार्थोंके प्रतिभासका कारण बन रहा है। ये भिन्न भिन्न व्यक्तियाँ कुछ नहीं हैं, ये धोखा हैं, भ्रान्ति हैं। यहां क्षणिकवादियोंको उनकी ही शंकाके रूपके अनुरूप ही शब्दों द्वारा उत्तर दे रहे हैं कि यदि सामान्यके बिना सदृश परिणामका बोध होना मान लिया है तो विशेषके बिना विसदृश विलक्षण भिन्न भिन्न पदार्थोंका भी बोध माना जा सकता है। इस कारण रूपादिकके प्रतिभासकी तरह अनुगत प्रतिभासका भी आलम्बन कोई वास्तविक मानना चाहिए। अर्थात् जैसे भिन्न भिन्न अनेक पदार्थोंके बोधका कारण क्या है? वही विसदृश धर्म। जैसे घोड़ा, हाथी, बकरी, गाय आदिक। ये सब न्यारे न्यारे हैं, तो ये सब न्यारे हैं, विशेष हैं, भिन्न हैं, विलक्षण हैं ऐसा ज्ञान होनेका कारण है। विशेष, याने पदार्थ विशेषस्वरूप है इस कारणसे ये पदार्थ न्यारे न्यारे जाने जा रहे हैं इसी प्रकार जब किसी जातिका बोध होता है गाय, गाय, गाय, मनुष्य, मनुष्य, मनुष्य, जिस भी जातिका बोध होता है तो उनमें जो सदृश परिणामका बोध हुआ, उनमें सदृश धर्मका जो बोध हुआ, उस बोधका कारण क्या है? सामान्य तत्त्व। तो विशेष तत्त्वकी तरह सामान्य तत्त्व भी वास्तविक मानना पड़ेगा और इस तरह जब पदार्थके सम्बन्धमें जातिरूपका भी बोध होता है और भिन्न भिन्न रूपका भी बोध होता है तब यह मानना सही है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं।

एककार्यतासादृश्यसे व्यक्तियोंमें एकत्वाध्यवसाय माननेकी अयुक्तता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अब शंकाकार कहता है कि एक कार्यपनेकी सदृशतासे व्यक्तियोंमें भिन्न–भिन्न पदार्थोंके एकत्वका प्रतिभास होता है ये सब पदार्थ जुदे–जुदे हैं इनमें समानता जरा भी नही है, सब स्वलक्षणमात्र हैं, लेकिन इन पदार्थोंमें जो एकत्वका बोध हो रहा है–जैसे इन ५० गायोंमें गाय है, गाय है इस तरह जो एकत्वका बोध हो रहा है उन सबका कार्य एक समान हैं। सब दूध देती हैं, सबका कार्य एक ढंगका है इससे आभास होता है, कि उन अनेक गायोंमें अनेक व्यक्तियोंमें एक गोत्वका, गाय गाय है इस प्रकारके बोध का प्रतिभास होता है। यह भी कहना ठीक नही है क्योंकि तुम कह रहे हो कि एक कार्य हो रहा है इस कारणसे उन उन गायोंमें एकत्वका प्रतिभास होता है तो एक कार्य हो रहा है यही कैसे सिद्ध होता है ? एक कार्य क्या ? जैसे दूध दूध तो उन समान दूधोंमें सदृश परिणाम माने गए। यदि वहाँ सदृश धर्म न मानें तो एक कार्यको भी सिद्ध नही कर सकते कि यह एक कार्य है और जब एक कार्य सिद्ध न हुआ तब फिर उन व्यक्तियोंमें एकत्वका अध्यवसाय भी नही बनता। अथवा उन गो में प्रति-व्यक्तियोंमें कार्य भी अनेक पाये जा रहे हैं। एक कार्य कैसे कहोगे ? बोझा ढोना, दूध दुहा जाना और उनके गंधसे कुछ रोग मिट जाना आदिक अनेक कार्य प्रति व्यक्तिमें पाये जाते हैं। तथा एक ही कार्य नही। दूध ही दूध दुहना समझें मगर जिस गायका जो दुग्ध कार्य है वह उसीका है, दूसरी गायका कार्य उसका उसीमें है। अब उन गायोंमें हम भेद कैसे सिद्ध करेंगे कि उनका एक कार्य है ? सदृश परिणाम मानेंगे तब ही तो अभेद सिद्ध कर सकेंगे। एक ही दूध है, एक सा स्वाद है, उससे हम यह निर्णय बतायेंगे कि यदि उन एक कार्योंमें भी यह बात लगावेंगे कि वे सब कार्य हैं ऐसा ज्ञान इसलिए होता कि वे सबके सब किसी कार्यके एक कारण पड़ते हैं तब इस तरह अन-वस्था दोष होगा। गायोंको एक सिद्ध करनेके लिए दुग्ध एक कार्यको सिद्ध किया। उस एक कार्यके सिद्ध करनेसे गायोंमें एकत्वका निश्चय बताना है। तो वे कार्य भी अनेक हैं दुग्ध। उन अनेक कार्योंमें भी एकत्वका अध्यवसाय कैसे हुआ कि वे भी किसी एक कार्यके कारण हैं तो फिर वहाँ भी प्रश्न होगा कि एक कार्य कैसे कहलाये इस तरहसे एक कार्यके कारण है, एक कार्यकी सदृशता है, यह बताकर अनवस्था बना लोगे। कहीं व्यवस्था न बनेगी। यदि कोई कहे कि हम केवल एक ही कार्य मानते हैं ज्ञान लक्षण वह ज्ञान लक्षण रूप भी कार्य प्रतिव्यक्ति भिन्न–भिन्न ही पाया जाता है। किन्हीं भी पदार्थोंमें एकताका बोध करने वाला जो ज्ञान है, जितने मनुष्योंको ज्ञान प्राप्त हुआ प्रति व्यक्तिमें भिन्न भिन्न है। इस कारण एक कार्य तुम सिद्ध कर ही नही सकते। विशेषकी हठ वालोंने प्रथम तो वे गायें एक जातिकी नही बनती। भिन्न भिन्न व्यक्तियां हैं। उनका कार्य एक मानते भी नही बनता, क्योंकि जितने व्यक्ति हैं उतने कार्य हैं और शायद यह कहो कि उन कार्योंका जो परिज्ञान है वह तो एक है, तो विशेषवादमें परिज्ञान भी एक नही बन सकता। जितने व्यक्ति हैं। जितने ज्ञाता हैं उतने ही उनमें ज्ञान हैं वे ज्ञान धर्मज्ञान परिणमन जितने ज्ञाता हैं उतने ही हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

वहां भी अभेद नही बन सकता।

पदार्थकी सामान्य विशेषात्मकताका स्पष्ट और सुगम बोध भैया! एक सीधे प्रतिभासमें जो बात आती है। जो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ हैं उनमेंसे किसी एकको न मान कर और उसके बिना काम चलता नही सो इस कार्यकी पूर्ति करनेके लिये अनेक कल्पनायें जोड़ना, इस परिश्रमको न करके सीधा मान लीजिये कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है तो यह विवादकी बात न होगी। हम किसी भी पदार्थको देखकर ऐसा पदार्थ यह हुआ करता है। यह भी ज्ञान होता है और यह पदार्थ इन अन्य पदार्थोंमें सदृशताका भी धर्म है और विसदृशताका भी धर्म है। इस कारण पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। इससे यह सिद्ध होता कि पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है। यह तो लोग सुगमतया स्पष्ट जान रहे हैं कि प्रत्येक पदार्थ नवीन पर्यायमें उत्पन्न होता है और पहिली पर्यायका नाश करता है। और सब पर्यायोंमें वही एक बना रहता है। यह उत्पादव्यय ध्रौव्यका आधार मिला कहांसे? इस सामान्य विशेषात्मकतासे। पदार्थ सामान्यस्वरूप है अतः तो ध्रुव है, नित्य है और पदार्थ विशेषस्वरूप है सो उत्पादव्ययात्मक है इस तरह सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है और ऐसा ही पदार्थ ज्ञानका विषयभूत होता है और सामान्यमात्र कुछ है ही नही, विशेष मात्र कुछ है ही नही। हो ही नही सकता केवल सामान्य और केवल विशेष। किस का नाम लोगे? जब भी नाम लोग कि यह है पदार्थ तो उसमें सामान्य धर्म भी है ये दोनों बातें पायी जाती हैं। तो यों जिस ज्ञानको प्रमाणता सिद्ध की गई इस ग्रन्थमें ज्ञानकी उत्पत्तिके साधन बताये गए इस ग्रंथमें, उस ज्ञानका विषयभूत पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हो। है, और सामान्य विशेषात्मक पदार्थकी श्रद्धासे ही हमें कल्याणका मार्ग दिखता है मैं आत्मा हूं। सामान्यविशेषात्मक हूं। सामान्य धर्मकी अपेक्षा शाश्वत हूं। विशेष धर्मकी अपेक्षा क्षण क्षणमें नये नये रूप रखता हूं। जब आज यह संसार अवस्था है तो यह मिटाकर हो निःसंसार अवस्था हो सकती है। और संसार अवस्था में भी रहने वाला मैं और हूं निःसंसार अवस्था चरम आनन्दका धाम रखकर भी मैं ही रहता हूं। इस प्रकारका सम्यक् बोध सामान्य विशेषात्मकके जाननेसे होता है और फिर कल्याणका मार्ग प्राप्त होता है।

अनुभवोंके एकत्वका व्यक्तियोंमें उपचार करनेके प्रतिपादनकी अयुक्तता—शंकाकार कहता है कि निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञानोंमें तो एक वस्तुविषयक ज्ञान के हेतु होनेसे साक्षात् एकत्व है। पदार्थमें एकत्व नही किन्तु निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञानमें एकत्व है और वह ज्ञान है पदार्थ हेतुक अर्थात् पदार्थके कारणसे ज्ञान उत्पन्न हुए हैं इस कारण व्यक्तिरूप पदार्थोंमें भी एकत्वका उपचार किया जाता है अर्थात् पदार्थोंमें एकत्व नही, सदृशता नहीं, किन्तु अनुभवोंमें एकत्व है। तो ज्ञानके एकत्वका उपचार पदार्थोंमें किया जाता है। उत्तर देते हैं कि यह कहना केवल तुम्हारी श्रद्धाभर है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वास्तविक प्रतिपादन नही हैं, क्योंकि अनुभव भी तो सारे अत्यन्त विलक्षण हैं। वे एक को स्पर्श करने वाले ज्ञानके कारण कैसे बन सकेंगे। यदि अनुभव निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान एकत्वको ग्रहण करने लगे तो बहुतसे घोड़ा भैंस आदिक व्यक्ति भी अनुभवमें आ रहे हैं। उनसे भी खण्ड मुण्ड आदिक जो गौ व्यक्ति हैं उनमें एक धर्मका हो जाय, अर्थात् एकस्पर्शी ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाना चाहिए फिर उन अश्वादिकके ज्ञानोंसे, क्योंकि अब अनुभवोंको निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञानोंको एक रूप मान लिया है और उस एक रूपताके व्यक्तियोंसे एकरूप मान ली है तो, कुछ भी ज्ञानमें आये ज्ञान तो एक रूप है तब पदार्थोंमें भी सबमें बिना विवेकके, बिना विशेषताके एकत्वका उपचार हो जाय। शंकाकार कहता है कि खण्ड मुण्ड आदिक जितनी गायें हैं, लाल पीली टूटी सींग बाड़ी पूंछ वाली जितनी गायें हैं उन सब गायोंमें प्रत्यासक्ति विशेष है। कुछ धर्मोंमें निकटता है इस कारण खण्ड मुण्ड आदिसे खण्ड मुण्ड आदिकमें एकत्वकी अनुभूति होती है अन्यसे नही अर्थात् घोड़ा भैंस आदिक का ज्ञान किया जा रहा हो तो उन ज्ञानोंसे गाय गाय पना एकत्वका प्रतिभास नही हो सकता है। उत्तरमें कहते हैं तो फिर वह प्रत्यासत्ति विशेष क्या चीज है ? जिस निकट धर्मज्ञताके कारण खण्डी मुण्डी आदिक गौ व्यक्तियोंके ज्ञानसे ही गाय गाय ऐसी एकत्वकी प्रतीति बने वह प्रत्यासत्ति विशेष और कुछ हो ही क्या सकती है सिवाय समान आकारके ज्ञानके। अर्थात् उन सब प्रकारकी गायोंमें एक समान आकार जाना गया जिससे यह जाना गया कि ये सब एक जाति हैं और फिर एकका ज्ञान करनेमें कारण रूपसे माने गए निर्विकल्प ज्ञानोंकी सिद्धि नही होती। निर्विकल्प ज्ञान कोई प्रमाणिक ज्ञान नही है। इससे बाधारहित ज्ञानमें यही बात आती है कि सदृशपरिणाम स्वरूप वस्तुभूत कोई सामान्य है।

पदार्थविषयक तत्त्व होनेसे सामान्यकी नित्यता व सर्वव्यापकताकी असिद्धि—अनेक व्यक्तियोंमें सदृश परिणामका रहना यह वास्तविक सामान्य है और वह सामान्य अनित्य है, अव्यापक है। यदि सामान्यको नित्य माना जाय, व्यापक स्वभाव वाला माना जाय तो उस सामान्यसे फिर अर्थ क्रिया नही बन सकती है। नित्य सर्वगत गौ जातिसे बोझा ढोना, दुग्ध दुहना आदिकका उपयोग न होगा, इन कामोंके लिए तो व्यक्तियोंका ही व्यापार होगा। तो अर्थक्रिया व्यक्तिसे होती है, गौ जातिसे नही होती और सदृश परिणामरूप धर्म व्यक्तिको छोड़कर अन्यत्र नही रहता, इसी कारण सामान्य भी नित्य और सर्वगत नही है। यदि कहो कि नित्य व्यापक सामान्य स्वविषयज्ञानका जनक होता है तो यह बतलावो कि यह पदार्थ अपने विषयके ज्ञानको उत्पन्न करता है तो उसमें उस हीके केवलका व्यापार है या व्यक्ति सहित सामान्यका व्यापार है ? यदि कहो कि केवल इस ही गोत्व सामान्यका अपने विषयमें ज्ञान उत्पन्न कर देनेका व्यापार होता है तब तो व्यक्तियोंके बीचमें भी इस सामान्यकी उपलब्धि होना चाहिये। यदि कहो कि व्यक्ति सहित सामान्यका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने विषय ज्ञानमें उत्पन्न होनेका व्यापार है तो यह बतलावो कि प्रतिपन्न (विज्ञात समस्त व्यक्तियोंसे, युक्त होकर इसका युक्त होकर इसका अपने विषयक ज्ञानको उत्पन्न करनेमें व्यापार है या अप्रतिपन्न समस्त व्यक्तियोंसे व्यक्ति सहितका व्यापार है ? यदि कहो कि प्रतिपन्न समस्त व्यक्तियोंसे सहित होकर यह अपने विषयक ज्ञान को उत्पन्न करता है यो यह बात यों अयुक्त है कि हम लोग असर्वज्ञ हैं। इन सबका समस्त व्यक्तियोंने नही जाना ऐसा व्यक्ति सहितका व्यापार होता है तो जब एक व्यक्तिका भी ग्रहण न हुआ तब तो एक सामान्य ज्ञान बन गया, विशेष ज्ञान नही बना, क्योंकि विशेष ज्ञानमें तो व्यक्तियोंका बोध होता है। यहां व्यक्तियोंका बोध कहाँ है ? अतएव सामान्य ज्ञान ही रहा। यदि कहो कि जाने गये कुछ व्यक्तियों सहित ही अपने विषयके ज्ञानको उत्पन्न करता है तो यह बतलावो कि व्यक्तियोंके द्वारा उसके सामान्यका कुछ उपकार किया गया अथवा नही ? यदि कहो कि किया गया तो सामान्य व्यक्तिका कार्य बन गया। क्योंकि जो उपकार किया वह अभिन्न उपकार किया होगा तो अभिन्न उपकार करनेसे सामान्य व्यक्तिका कार्य बन गया। यदि कहो कि व्यक्तियोंसे भिन्न है उपकार जो कि सामान्यका किया गया तो वहां वह सामान्यका उपकार है ऐसा कहना ही असिद्ध हो जायगा। यदि कहो कि उस सामान्य का जो उपकार है उसके द्वारा अन्य उपकार किया गया है, उससे जाना गया कि यह इसका उपकार है तो इसमें अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि व्यक्तियोंके द्वारा सामान्यका कुछ उपकार नही किया गया तब फिर व्यक्तिके सहयोगकी बात करना व्यर्थ है क्योंकि जब व्यक्तियोंने इस सामान्यमें कुछ नही किया वे अकिञ्चित्कर रहे तो अकिञ्चित्करको तो सहकारी कहा नही जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सामान्य नित्य सर्वव्यापक नही है। कोई स्वतत्र जैसा नही है। जो व्यक्ति हैं उन हो व्यक्तियोंमें सदृश परिणमन धर्म देखकर सामान्य समझ लिया जाता है।

सामान्यज्ञानमें व्यक्तिव्यापारकी हेतुताका निराकरण— यदि कहो कि सामान्यके साथ एक (जैसा कि गौ गौ इस प्रकारके) ज्ञानको उत्पन्न करनेमें व्यक्तियों का व्यापार बना सो व्यक्ति सामान्यके ज्ञानके सहकारी कहलाये। तो पूछते हैं कि व्यक्तियोंका सामान्यके साथ एक जातिका ज्ञान उत्पन्न करनेमें व्यापार कैसे हुआ या, व्यक्तियोंका कुछ अविपतित्व था इसलिये सामान्यके साथ एक ज्ञान उत्पन्न होनेमें व्यापार हुआ ? यदि कहो कि आलम्बन भावसे व्यक्तियोंका सामान्यके साथ एकज्ञान जननमें व्यापार हुआ तो एक और अनेक आकार वाले सामान्य विशेषज्ञान सर्वदा ही हुआ करें, क्योंकि जितने विज्ञान होते हैं वे अपने आलम्बनके अनुरूप हुआ करते हैं। सामान्य तो एक है इसलिये एकाकार ज्ञान बना और व्यक्तियां अनेक हैं इस कारण अनेकाकार ज्ञान बना। अपना जब ज्ञान होता है तो इस ही प्रकार होता है, जैसे पदार्थ एकानेकस्वरूप है, जाति व्यक्तिस्वरूप है तो ज्ञान भी एक अनेकाकार रूप हो जाता है। यदि कहो कि व्यक्तियोंका व्यापार सामान्यके साथ एक ज्ञान उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करनेमें अविपक्तित्व रूपसे होता है तो यों द्वितीय विकल्प माननेपर अर्थात् अविप-
तत्त्व होनेके कारण व्यक्तियोंका सामान्यके साथ एक ज्ञानकी उत्पत्तिमें व्यापार
होता है, यह माननेपर व्यक्तियोंका ज्ञान न होनेपर भी सामान्यज्ञानका प्रसंग हो
जायगा। जैसे कि रूपका ज्ञान करनेमें चक्षुका अधिगम न होनेपर भी व्यापार देखा
गया है अथवा चक्षुके धर्मका अधिगम (ज्ञान) न होनेपर भी रूपज्ञानमें व्यापार
देखा गया है। सामान्यको सर्वथा नित्य माननेपर तो उसका किसी भी अर्थक्रियामें
व्यापार हो ही नही सकता है, क्योंकि नित्य वस्तुका क्रमसे अथवा क्रमसे भी अर्थ
क्रियाका विरोध है। इस तरह किसी भी अर्थ क्रियामें कल्पित नित्य सामान्यका व्या-
पार न बनेगा और व्यापार बने तो सहकारीकी अपेक्षा न रखनेके कारण सदा कार्य-
कारी बनता रहे यह दोष आता है। क्योंकि जो नित्य है वह किसीकी अपेक्षा नही
रखा करता।

पदार्थोंकी साधारणासाधारणधर्मरूपता—पदार्थोंमें साधारण धर्म और असाधारण धर्म होते ही हैं ऐसा मौलिक नियम है। सबसे प्रारम्भमें वस्तुस्वरूपको जानते हुए देखा कि प्रत्येक पदार्थोंमें साधारणधर्म हुआ करते हैं। छह साधारण गुण समस्त पदार्थोंमें हैं— अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व, प्रमेयत्व, इन साधारण धर्मोंके सद्भावके नाते पदार्थ कहनेसे समस्त पदार्थ आ जाते हैं। यह पदार्थ नामक जाति, यह साधारण धर्मसे युक्त हुई जाति सब व्यक्तियोंमें पायी जाती है। चाहे वह चेतन पदार्थ हो अथवा अचेतन पदार्थ हो, सभी पदार्थोंमें साधारण धर्म पाये जाते हैं, और सभी पदार्थोंमें असाधारण धर्म पाये जाते हैं। जैसे जीवमें चेतना, पुद्गलमें मूर्तिकता आदिक। ऐसा कोई पदार्थ नही है जिसमें केवल साधारण ही धर्म पाये जायें अथवा जिसमें असाधारण ही असाधारण धर्म पाये जायें। असाधारणके बिना साधारण होते ही नही, तथा यदि साधारण धर्म नही है तो वस्तुत्व ही नही है, फिर असाधारण धर्म कहाँ विराजें ? यदि असाधारण नही है तो उसकी सत्ताका मतलब ही कुछ नही है, फिर साधारण धर्मोंकी वहाँ आवश्यकता क्या है। तो पदार्थ स्वतः ही साधारण और असाधारण धर्मोंसे सहित हैं। यह तो एक पदार्थकी बात कही जा रही है। जब एक ही पदार्थमें साधारण धर्म और असाधारण धर्म हैं, तब अनेक व्यक्तियोंमें व्यक्तियोंकी सदृशता देखकर उन सब व्यक्तियोंका एक जातिमें कहना कैसे अयुक्त हो सकता है। जो अनेक व्यक्तियोंमें समान धर्म पाये जाते हैं, उसकी अपेक्षा तिर्यक् सामान्य जाना जाता है। तो सामान्य न माननेपर केवल विशेष मानने पर कुछ भी व्यवहार नही बन सकता, और विशेष न माननेपर केवल सामान्य मानने पर भी कुछ भी व्यवहार नही बन सकता। जब अनुवृत्ताकारके बोध होनेसे वस्तुका ज्ञान होता है तब व्यवहार चलेगा। और सामान्यमात्र वस्तु है नही, विशेष मात्र वस्तु है नही, तो जैसा वस्तु नही वैसा ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान कैसे हो सकता है। पदार्थोंकी जो स्थिति बतायी गई है वह सामान्य और विशेषात्मक न माननेपर नही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बन सकती। सत्त्वकी दृष्टिसे यह साधारण धर्मोंकी दृष्टिसे चूँकि प्रत्येक पदार्थ हैं, अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे नही हैं, निरन्तर परिणम शील हैं, अपने ही प्रदेशमें परिणमते हैं, परमें नही परिणमते हैं। प्रदेशवान हैं और किसी न किसीके ज्ञानमें प्रयेय हैं ऐसे छह साधारण गुणोंकी अपेक्षासे प्रत्येक पदार्थ पदार्थ है और इस दृष्टिसे यदि समस्त विश्वको एक सदृश ब्रह्मरूप कह दिया जाय तो इसमें कुछ अयुक्ति नही। क्योंकि दृष्टिमें केवल साधारण धर्मोंको ध्यानमें लेकर सन्मात्र देखा जा रहा है। तो यों साधारण ही धर्म होते, समस्त व्यक्तियोंमें, तो ऐसा एकत्व बनता, किन्तु असाधारण धर्मके बिना साधारण धर्मोंके आधारपर पदार्थका अस्तित्व नही रह सकता, इस कारण प्रत्येक पदार्थमें असाधारण धर्मरूपता अस्तित्वके कारण अनादि अनन्त होती है।

पदार्थोंमें जातिरूपता व व्यक्तिरूपता होनेसे ही प्रवृत्ति व अर्थक्रियाकी संभवता—जब उस सत् पदार्थमें ६ प्रकार निकले। कोई तो जीव है कोई पुद्गल धर्म अधर्म आकाश, काल आदि द्रव्य है। पदार्थकी ये छह ही जातियां बतायी जा सकती हैं। वैसे तो पदार्थोंको दो भेद रूपसे कहा जा सकता है। एक चेतनरूपसे और एक अचेतन रूपसे। किन्तु चेतनत्व होना अनुजीवी धर्म है जबकि, ऐसा अचेतनत्व कोई अनुगत धर्म नही है। चैतन्यका न होना इसको कहते हैं अचेतन। तो अचेतनके कहे जानेसे किसी उपयोगिताका अवगम न हो सका इस कारण चेतन और अचेतन ऐसे दो भेद जातिरूपसे नही किए गए हैं विवेकी जगतमें। द्रव्यके, पदार्थोंके ६ प्रकार बताये गए और उनके उस प्रकार होनेमें कारण है असाधारण धर्म। असाधारण धर्मके हुए बिना साधारण धर्मोंके रहनेका प्रयोजन कुछ नही है। आत्मा जैसे ज्ञान स्वरूप है तब उस स्वरूपके पोषणके लिए छह साधारण गुण उपयोगी हो गए और किसी असाधारण धर्मरूप हो ही नही कोई तो फिर स्वरूप ही क्या रहा? फिर किसके पोषणके लिए छह प्रकारके साधारण धर्म माने जायेंगे? पुद्गलका असाधारण धर्म है मूर्तिकता रूप, रस, गंध, स्पर्श होना। उसमें अर्थ क्रिया है। उसके ज्ञानसे लोगोंकी प्रवृत्ति होती है अभीष्ट व्यवहार बन सकता है असाधारण धर्म मान लेनेसे। तो पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्शमयताका होना यह असाधारण धर्म है, इस असाधारण धर्मके बिना याने पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श न माना जाय तो छह साधारण धर्म किस लिए फिर रहे? उनका कोई प्रयोजन न रहा। तो यों साधारण धर्म और असाधारण धर्म प्रत्येक पदार्थमें जुटे ही रहते हैं अब इस भेदके विस्तारपर चलिये। ये जो ६ भेद किए गए हैं ये भेद इस आधारपर हैं कि इनमें सबमें साधारण धर्म हैं इस कारण तो यह वस्तु है और इसमें असाधारण धर्म है इस कारण अर्थ क्रिया होती है। काम क्या हो? यदि असाधारण धर्म न माना जाय। साधारण धर्मसे तो जाति बनती है और असाधारण धर्मसे व्यक्तिरूपता आती है, तो जब वस्तुता व व्यक्तिरूपता हो तो, उसमें अर्थक्रिया उसमें प्रवृत्ति सम्भव है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

लोकव्यवहारमें व मोक्षमार्गमें सामान्य विशेषात्मक पदार्थके अवबोध का योग—देखिये लोकव्यवहारमें भी अनुवृत्त और व्यावृत्त आकार न माना जानेसे अव्यवस्था बन जायगी। हम किसी भी मनुष्यको पहिचानते हैं तो पहिचाननेके साथ सामान्यरूपता और विशेषरूपता दोनोंका प्रतिभास होता है। जो नाम हमने जिस व्यक्तिका सुन रखा है उस नामको उस ही व्यक्तिमें लगाते हैं कहीं गाय, घोड़ा आदिक में नहीं लगा बैठते। इसका कारण क्या है इसका कारण यह है कि अनुवृत्ताकारका प्रतिभास है। मनुष्य जैसा तो हो कोई तब उसका यह नाम है, न हो मनुष्य, पशु पक्षी हो तो उसका नाम तो नहीं कहते। तो नाम लेनेका व्यवहार भी तब बन पाता है जब चित्तमें सामान्य और विशेष दोनोंका प्रतिभास बना हुआ है। मोक्षमार्गकी भी बात देखो—मोक्षमार्ग तब ही बन पाता है जब सामान्य विशेष सस्वरूप पदार्थका बोध होता है। सामान्य धर्मके बोधके कारण प्रभुस्वरूपमें और साधक स्वरूपमें एक समता का ज्ञान होता है जिससे यह उत्साह जगता है कि मैं भी प्रभुकी तरह निर्मल हो सकता हूं इस तरहका सदृश परिणाम बने तो उसका फल है। स्वरूपसे सदृशता है प्रभुमें और अपनेमें। इसीलिए यह विश्वास बना है कि जिस विधिसे प्रभु चले उस ही विधिसे हम चलेंगे तो हम भी इसी तरह संकटोंसे मुक्त हो सकेंगे, ऐसा उत्साह जगाने और समस्त पर भावोंसे भिन्न स्वचैतन्य तत्त्वका निर्णय करनेके लिए सामान्य विशेषताका बोध होने ही लगेगा मैं सिद्ध समान हूँ ऐसी अपने स्वरूपकी श्रद्धा करूँ ज्ञान करूँ और आचरण करूँ तो संसारकी पर्यायोंसे हटकर निर्वाणकी अवस्थामें पहुंच सकता हूँ। यह रुचि कैसे उत्पन्न हो ? जब सामान्य विशेषात्मक पदार्थ हैं इस प्रकारका निर्णय हो। कोई ऐसा ही मान ले कि मैं तो सामान्य स्वरूप हूँ। नित्य सर्वव्यापी हूं, अपरिणामी हूँ मुझे कुछ हैरानी ही नहीं है तो ऐसी दशा वाला पुरुष कैसे मुक्तिके मार्गमें गमन कर सकेगा ? उन्हें सामान्यका बोध है जिससे वे प्रभुमें और अपने स्वरूपमें समानता निरख रहे हैं और उस स्वरूप साम्यके कारण जो हम भक्ति व्यवहार करते हैं उससे हम लाभ उठा लेते हैं। सामान्यके अवगमसे तो हम यह शिक्षा लें कि हम प्रभु वत् हैं ऐसा ही अपना निश्चय बना लें और विशेषके निर्णयसे यह उत्साह जगता है कि आखिर वर्तमान परिणमन विशेष ही तो है। यह विशेष परिणमन मिटकर बदलकर अविशिष्ट अभेद सामान्यरूप परिणमन हो सकता है तो हमें ऐसा ही यत्न करना चाहिये कि जिससे हमारी यह विषेष परिणति उत्तरोत्तर निर्णय होकर सदाके लिए शान्त सुखी बन जाय। यह बात तब हो सकती है, जब हमारा विशेष अपने ही सामान्यका आलम्बन करे। अपने ही सामान्य स्वरूपका आश्रय करनेसे यह परिणमन विशेष निर्मल हो जाया करता है। वह सामान्यस्वरूप वह चैतन्य मात्र स्वरूप, उसकी ओर साधुजनोंकी दृष्टि बराबर जाती है। वह है निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक विकाररहित। ऐसे सामान्यस्वरूपका जो आलम्बन लेता है, जिस उपयोगमें यह सामान्यस्वरूप विराजा होगा

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह उपयोग निर्मल होगा। तो सामान्य विशेषात्मकताका अपने आत्मामें बोध करें
यह आत्मकल्याणके लिये अत्यन्त आवश्यक है। हमारा उपयोग है विशेष तत्त्व।
तो सामान्यतत्त्वका आलम्बन यह विशेष लक्षण उपयोग करें तो निर्विकल्पता, निरा-
कुलता, निर्विकारता जगती है। तो सामान्य विशेषका हर दृष्टियोंमें, प्रत्येक स्थि-
तियोंमें बराबर सम्बन्ध बना हुआ है। तब यों कहा जा सकता है कि सामान्य विशे-
षात्मक पदार्थोंके बोधसे आचारशुद्धि व्यवहारशुद्धि बनी रहती है और आत्मश्रद्धान,
आत्मज्ञान और आत्माके आचरणमें सुगमतया प्रवृत्ति हो जाती है। अतः सर्वप्रकार
के लाभ हैं। इससे हम वस्तुको सामान्य विशेषात्मक जानें वस्तु ऐसा ही है सामान्य
विशेषात्मक, उसको उपयोगमें लेनेसे आत्महित बनता है।

स्वतन्त्र नित्य व्यापक एक सामान्य पदार्थकी असिद्धि—पदार्थ सामान्य
विशेषात्मक तत्त्व है वह कहीं पृथक सामान्य नामका पदार्थ नहीं है जो कि नित्य और
सर्वव्यापक हो। नित्य और सर्वव्यापक सामान्यको माननेपर उसकी अर्थक्रिया नहीं बन
सकती है, क्योंकि नित्य होनेसे अपरिणामी है और सर्वव्यापक होनेसे उसकी परिणति
की गुञ्जाइश नही है। नित्य सर्वव्यापक सामान्य यदि अर्थक्रिया करने लगे तब तो
अर्थक्रिया सदा होना चाहिये सदैव कार्य करते रहना चाहिए क्योंकि जो नित्य होता
है वह एक स्वभावरूप होता है। उसका कार्य करनेका स्वभाव है तो सदैव कार्य
होना चाहिए और यदि यह कहो कि सदा कार्य नही करता नित्य व्यापक सामान्य।
कभी करता, कभी नही करता। तो यह स्वभाव भेदकी बात बन जायगी। अर्थात्
नित्य सामान्यमें कभी अर्थक्रिया करनेका स्वभाव है कभी नही है, सो जिसमें स्वभाव
भेद पाया जाय वह नित्य नहीं हो सकता, अनित्य है। जैसे जीव कभी ससारी है
कभी मुक्त है तो जीव निन्य तो न कहलाया क्योंकि उसमें परिणति भेद देखा गया
है। तो यदि नित्य व्यापक सामान्यमें कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है तो सदा कार्य
करना चाहिए, और कार्य करनेका स्वभाव नही है तो कभी भी कार्य नही कर
सकता है, क्योंकि जो जिसको न उत्पन्न करनेका स्वभाव वाला हो वह अन्य पदार्थों
से सहित होकर भी कार्यको उत्पन्न नही कर सकता। जैसे धान्यके बीजमें कोदो
उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नही है। धान बोनेसे कोदोका अंकुर उत्पन्न नही होता तो
खाद, पृथ्वी, पानी सारी सामग्री भी मिला दें, अच्छी तरह जोत बाह करके उसे
बोदें तब भी कोदोंके अंकुर नही उत्पन्न कर सकते, इसी प्रकार जब सामान्य कार्यको
न उत्पन्न करनेका स्वभाव रख रहा है तो वह कभी कार्य न कर सकेगा। और जिस
में अर्थक्रिया नही होती है वह अवस्तु है। जिसमें उत्पादव्यय नही, परिणाम नही,
व्यक्तरूपता नही वह वस्तु कैसे हो सकती है, इस कारण नित्यव्यापक सामान्य संगत
नहीं बैठ सकता है। सामान्य एक सदृश परिणाम धर्मका नाम है। न कोई पृथक
सत्ता रखने वाला पदार्थ है। अब उस सर्वगत सामान्यके सम्बन्धमें पूछा जा रहा है
कि वह सामान्य क्या सर्व सर्वगत है या निज व्यक्ति सर्वगत है? इस प्रश्नका खुलासा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह है कि जैसे गायमें गोत्व सामान्य है तो यह गोत्व क्या आकाशके सब प्रदेशोंमें सर्व रूपसे भरा पड़ा है या जो गाय गाय है, जहां हैं उन–उन गायोंमें ही वह सामान्य व्यापकर रहता है। इन दो विकल्पोंमेंसे यदि कहोगे कि वह सर्वसर्वगत है, आकाशके समस्त प्रदेशोंमें फैला है तो यह बात एकदम अयुक्त है क्योंकि सामान्य यदि सर्वसर्वगत् है तो व्यक्तियोंके अन्तरालमें क्यों नहीं वह पाया जाता ? जैसे गोत्व सामान्य सर्व सर्वगत है तो जहाँ गाय नहीं है ऐसा जो अन्तरालका स्थान है उसमें गोत्व क्यों नहीं पाया जा रहा ? जैसे कि गाय सर्वत्र नही पायी जाती है इसी तरह सामान्य भी निरन्तर नही दिख रहा है। गायमें ही गाय सामान्य विदित होता है। तो इसमें सर्वसर्वगत सामान्य है यह बात बनती नही है।

व्यक्त्यन्तरालमें सामान्यके अनुपलम्भ होनेके कारणके सम्बन्धमें पृष्टव्य छह विकल्प—यदि कहो कि सामान्य है तो सर्वसर्वगत सारे विश्वमें व्यापक है। किन्तु उसकी जो व्यक्तिके अन्तरालमें अनुपलब्धि हो रही है वह किसी कारण से हो रही है तो उन कारणोंकी बात बतलावो कि क्या सामान्यका जो व्यक्तिके अन्तरालमें अनुपलम्भ है वह इसलिए है कि अन्तरालमें सामान्य अव्यक्त है अथवा सामान्यका अनुपलम्भ इस कारण है कि सामान्य व्यवहित है। किसीके व्यवधान में अड़ा हुआ है या सामान्य अन्तरालमें इस कारण अनुपलब्ध है कि वह दूरमें स्थित है अथवा अदृश्य होनेसे सामान्यका अनुपलम्भ है या सामान्यके आश्रयभूत व्यक्तिका और इन्द्रियका सम्बन्ध नही हो रहा है इस कारणसे सामान्यका अनुपलम्भ है क्या ? अथवा अपने आश्रयरूप व्यक्तिमें समवेत रूपका अभाव है, सम्बद्ध नही हो रहा है इस कारण सामान्यका अनुपलम्भ है। इस तरह ६ विकल्पोंमें यह पूछा गया है कि व्यक्तियोंके अन्तरालमें जहां व्यक्ति नही है वहाँ दृष्टान्तमें जैसे कि जहां गाय नही है ऐसी जगहमें सामान्य गोत्व सामान्य जो नही पाया जा रहा है वह क्या इन कारणोंसे नही पाया जा रहा।

अव्यक्त होनेसे व्यक्त्यन्तरालमें सामान्यके अनुपलम्भरूप विकल्पकी असंगतता—उक्त विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पका ही विचार कर लीजिये। अन्तरालमें सामान्यका अनुपलम्भ अव्यक्त होनेसे है। यह बात यों नहीं बनती कि जब एक व्यक्ति में सामान्य प्रकट हो गया तो जब सब व्यक्तियोंमें उसी सामान्यकी अभिन्नता है तो सर्वसर्वगत होनेपर सामान्य अन्तरालमें भी क्यों नहीं व्यक्त हो जाता ? जैसे आकाश एक सर्वव्यापक है, अनन्त है और समस्त द्रव्योंका परिणमन होता है काल के निमित्त से। जैसे जीव द्रव्यका परिणमन कालके निमित्तसे होता है, पुद्गलका भी होता है। इसी तरह धर्मादिक सभी द्रव्योंका कालद्रव्यके समय परिणमनके निमित्तसे होता है। तो आकाशका भी परिणमन कालद्रव्यके निमित्तसे होता है। अब यह देखो कि कालद्रव्य तो है लोकाकाशमें। अलोकाकाशमें तो केवल आकाश ही आकाश है। न वहां

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव है, न पुद्गल, न धर्म अधर्म, न काल। तो जैसे लोकाकाशमें रहने वाले काल-द्रव्यके निमित्तसे जो आकाशका परिणमन है सो समस्त आकाशका परिणमन है। क्योंकि आकाश सर्वव्यापक है एवं अखण्ड है इसी कारण अलोकाकाशमें भी परिणमन है तो खण्ड सर्वव्यापक पदार्थका किसी भी जगह परिणमनका निमित्त पड़ा हो निमित्त चाहे एक देशमें है, पर उसका निमित्त पाकर जो अखण्ड व्यापक पदार्थमें परिणमन होगा वह सबमें होगा। तो इसी तरह जब सामान्य पदार्थ पूर्ण विश्वव्यापक मान लिया तो जहाँ व्यक्ति है वहाँ भी सामान्य है जहाँ व्यक्ति नही है वहाँ भी सामान्य है, तो जब एक व्यक्तिमें सामान्यकी उपलब्धि हो जानी चाहिये, क्योंकि सामान्य एक है। प्रकट हो तो सारा प्रकट होना चाहिए। यदि कहो कि अन्तरालमें सामान्य अव्यक्त है इस कारण अन्तरालमें अर्थात् जहाँ व्यक्ति नही है उन स्थानोंमें सामान्यकी अनुपलब्धि है तब तो इसीं कारणसे व्यक्तियोंका भी अनुपलम्भ हो जावे। हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति ठसाठस रूपसे भरे पड़े हैं। जैसे गाय। गाय इस विश्वमें सब जगह ठसा-ठस भरी पड़ी हैं। एक बिन्दुमात्र भी जगह गाय व्यक्तियोंसे शून्य नही है। तो कोई पूछ बैठे कि ठसाठस गाय तो नही दीखती। कोई गाय कहीं बँधी है कोई कही बँधी है। तो वहांपर भी यह प्रत्युत्तर हो सकता है कि भाई अव्यक्त होनेसे इस बीचमें इन व्यक्तियोंका अनुपलम्भ है' जैसे सामान्यको कह डाला कि सामान्य विश्व व्यापक है, पर व्यक्तियोंके अन्तरालमें जो उसका अन्तराल है वह अव्यक्त होनेसे है। यदि कहो कि व्यक्तित्वके बारेमें तो यह बात है कि व्यक्तियोंके अन्तरालमें व्यक्तिके सद्भावको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है इस कारण व्यक्तियां बीचमें नहीं है। गाय बीचमें नहीं है, क्योंकि बीचमें नहीं हैं। गाय बीचमें नहीं हैं, क्योंकि बीचमें गाय व्यक्तिका सद्भाव बताने वाला कोई प्रमाण नहीं है तो उत्तरमें भी यही बात कहने में आयगी कि सामान्यका भी व्यक्तिके अन्तरालमें सद्भावको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है इस कारण अन्तरालमें सामान्यका असत्त्व है। कोई कहे कि व्यक्ति अन्तरालमें भी सामान्यकी प्रत्यक्षसे उपलब्धि हो रही है तो यह बात बिल्कुल तथ्य-हीन कही जा रही है? जहां कुछ व्यक्ति ही नहीं। जहां गाय ही नही वहां गोत्व आँखोंसे दिख रहा, यह तो एक अपने हठके आवेशकी बात है। व्यक्तिसे वहिर्गत सामान्य कहाँ पाया जाता? विशेषरहित सामान्य तो अवस्तु है। जहाँ व्यक्ति नही है वहां सामान्य पाये जानेकी बात कहना बिल्कुल असङ्गत है। जैसे कोई कहे कि हमने तो गधेका सींग देखा तो इसे कौन मान लेगा? गधेका सींग अवस्तु है। इसी तरह कोई कहे कि गाय व्यक्तियोंके अन्तरालमें जहाँ गाय नही है वहां भी गोत्व हमने देखा तो इसे कौन मान लेगा?

सामान्यमें व्यक्ताव्यक्तस्वभाव भेद होनेसे अनित्यत्वका प्रसंग— अब इस विषयमें और भी सुनिये। यह बतलावो कि जब ही प्रथम व्यक्तिका ग्रहण किया, जैसे एक प्रथम गाय का ग्रहण किया, उसे जाना देखा तो उस समयमें उस व्यक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में प्रकट हुये सामान्यका ग्रहण होनेपर चूंकि वह सामान्य अभेद रूप है इस कारण सामान्य सब जगह सब समय प्रकट हो जाना चाहिए क्योंकि सामान्य मानते हो तो व्यापक और नित्य तो एक व्यक्तिको जब हमने जाना, एक गायको देखा तो उसी समय सब जगह सब समय गाय सामान्यकी उपलब्धि हो बैठना चाहिए, क्योंकि जो नित्य एक सर्वव्यापक है वह अगर अभिव्यक्त होता है तो सर्वात्मरूपसे अभिव्यक्त हो सकेगा। व्यापकमें खंड नहीं हुआ करता। अन्यथा इस सामान्यमें दो स्वभाव पड़ जायेंगे एक स्वभाव और एक अव्यक्त स्वभाव व्यक्तियोंमें उसके व्यक्त स्वभाव वाला सामान्य है और व्यक्तियोंके अन्तरालमें अव्यक्त स्वभाव वाले सामान्य हैं। इस तरह तो अब सामान्य एक न रहा, सामान्य दो प्रकारके हो गए, व्यक्त स्वभाव सामान्य और अव्यक्तस्वभाव सामान्य। तो जब अनेकता आ गयी तो सामान्य अब सामान्य ही न रहा, असामान्य हो गया। क्योंकि उसमें भेद पड़ गया ना। तो इस तरह सामान्यको नित्य व्यापक माननेमें जब ये दोष आ रहे हैं तो यह समझना चाहिए कि व्यक्तियोंके अन्तरालमें सामान्य नहीं है। जैसे कि व्यक्तियोंके अन्तराल में व्यक्ति नहीं हैं गाय जहां जहां खड़ी है वहां वहां है। अन्यत्र तो नहीं हैं, इसी तरह सामान्य भी अन्यत्र नहीं है। अब शंकाकार कहता है कि व्यक्तियोंके अन्तराल में सामान्य है जैसे कि जहां गाय नहीं है उन जगहोंमें भी गोत्व सामान्य है, क्योंकि एक साथ भिन्न देशमें अपने आधारमें रहनेकी वृत्ति रखते हुए सामान्य एक होता है, इस कारण सामान्य व्यक्तियोंके अन्तरालमें भी है। जैसे कि एक लम्बा बांस है। उसका एक पोर एक ओर दीखे, दूसरा पोर दूसरी ओर और बीचके सारे पोर ढके हुए हैं तो वहां यह निर्णय हो जाता है कि इन दोनों पोरोंके बीचमें अन्तरालमें भी बाँस रह रहा है। और है वह एक इस कारणसे अन्तरालमें भी है। इस अनुमानसे व्यक्तिके अन्तरालमें सामान्यकी सिद्धि करते हैं। चूंकि सामान्य एक है और एक साथ भिन्न–भिन्न देशोंमें सामान्यके आधारभूत गाय व्यक्तिमें वह पाया जा रहा इस से सिद्ध है कि अन्तरालमें भी गोत्व सामान्य है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी असङ्गत है, क्योंकि हेतु प्रतिवादीको मान्य नहीं है। प्रतिवादीको भी साधन मान्य हो तब तो उससे साध्यकी सिद्धि होती है। जब हेतु ही मान्य नहीं है तो उससे साध्य कैसे सिद्ध हो? कभी भी भिन्न देश वाले व्यक्तियोंमें कोई एक सामान्य प्रत्यक्षसे प्रतीयमान होता हो सो बात नहीं है जैसे कि किसी लम्बे बांसमें वह ओर से छोर तक एक प्रतीत होता है इस तरहसे सामान्य पूरा सब जगह एक प्रतीत होवे, ऐसी बात नहीं है और इस कारण वह बात नहीं कह सकते हो कि एक साथ भिन्न देशमें अपने आधारमें रहते हुए हुआ सामान्य व्यक्तिके अन्तरालमें भी हैं, क्योंकि एक है यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इस कारण यह तो कह नहीं सकते कि व्यक्तियों के अन्तरालमें सामान्यका अनुपलम्भ इस कारणसे है कि वहां सामान्य अव्यक्त है। सो सामान्यको यदि सर्व विश्व व्यापक माना जाय तो यह आपत्ति सामने है कि फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यक्तियोंके अन्तरालमें भी जहां व्यक्ति नही है ऐसे स्थानमें भी सामान्यकी उपलब्धि होनी चाहिए।

व्यवहित व दूरस्थित होनेसे भी व्यक्त्यन्तरालमें सामान्यके अनुपलम्भकी असिद्धि - यदि दूसरा पक्ष लेते हो कि सामान्य है तो सर्वसर्वगत, किन्तु व्यक्तिके अन्तरालमें जो उसका अनुपलम्भ है, वह व्यवहित होनेके कारण है यह बात भी ठीक नही है, क्योंकि सामान्य तो एक अभेदस्वभावरूप है। वह कहीं व्यवहित हो जाय, कही अव्यवहित हो जाय तब फिर उसमें एकस्वभाव कहाँ रहा ? व्यापी है सामान्य। शंकाकारके सिद्धान्तसे तो सामान्य दूरस्थित कैसे बने ? सामान्य बहुत दूर में है इसलिए वह दीख नहीं रहा है। यह विकल्प मात्र मत हठका पोषक है। सामान्य तो सर्वव्यापक है अतएव व्यक्तके अन्तरालमें भी सामान्यकी उपलब्धि होनी चाहिए सो हो नही रहा। इससे सिद्ध है कि सामान्य सर्वसर्वगत नही है। सामान्य सर्वव्यापक है तो व्यवहित भी नहीं हो सकता और दूरस्थित भी नही रह सकता। सर्वत्र है तो इस कारणसे व्यक्ति के अन्यरालमें सामान्यका अनुपलम्भ सिद्ध नही होता तो दूर स्थित विकल्पमें भी वही दोष बराबर सिद्ध है जो सर्वव्यापक सामान्य होता तो सब जगह पाया जाता।

अदृश्य, स्वाश्रयेन्द्रियसंबंधविरह व आश्रयसमवेतरूपाभावसे भी व्यक्त्यन्तरालमें सामान्यके अनुपलम्भकी असिद्धि - सामान्य नित्य सर्वव्यापक माना है शंकाकारने इसी कारण सामान्यका व्यक्तिके अन्तरालमें अनुपलम्भ नही कह सकते कि सामान्य अदृश्यात्मक है अथवा अपने आश्रयभूत व्यक्ति और इन्द्रियके सम्बन्धसे रहित है या आश्रयमें समवायरूपसे नही है ये भी तीन विकल्प अयुक्त हैं क्योंकि सामान्य तो अभेदरूप है, सर्वव्यापक है उसमें एक जगह अदृश्य हो गया, एक जगह दृश्य हो गया ये दो स्वभाव कहांसे आये ? और, यह कहना कि सामान्यके आश्रयभूत हैं व्यक्ति सो जिस व्यक्तिमें इंद्रियका सम्बन्ध होता है और जिस व्यक्तिमें इंद्रियका सम्बंध नहीं होता उस व्यक्तिमें उस जगह उस सामान्यकी उपलब्धि नहीं होती। अरे तो क्या सामान्यमें दो स्वभाव पड़े हैं ? अथवा सामान्यके आश्रयभूत व्यक्तियोंमें कोई ही व्यक्त है और कहीं उसके आश्रयभूत व्यक्ति भी अव्यक्त हैं ? ये सब विकल्प मिथ्या है। सामान्य तो पदार्थ नही है वहाँ सामान्य तो पदार्थका धर्म है। पदार्थ जहां है वहां मिलेगा। जहां पदार्थ नही है वहां सामान्य कहाँ मिल जायगा ? पदार्थमें जो सदृश परिणाम नजर आता बस वह ही सामान्यकी बुद्धिका कारण है। और पदार्थमें जो विसदृश धर्म नजर आता वह ही पदार्थ उस विशेषताको समझानेका कारण है। तो किसी भी प्रकार यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि सामान्य सर्वसर्वगत नहीं रहा।

सामान्यको सर्वव्यक्तिसर्वगत माननेमें सामान्यकी नित्यता एकता व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यापकताकी असिद्धि—सामान्य अपनी व्यक्तियोंमें सर्वगत है यह विकल्प भी युक्त नहीं बन सकता। यदि सामान्य निज निज व्यक्तियोंमें ही व्यापक है, इसीसे व्यक्तियों के अन्तरालमें सामान्य नहीं है। तो भाई अब तो यह सामान्य प्रत्येक व्यक्तिमें परिसमाप्त हो गया। तब जितने व्यक्ति हैं उतने सामान्य हो गए। जिस व्यक्तिमें जो सदृश परिणाम है वह सामान्य उस व्यक्तिमें हैं और वह सामान्य उस ही व्यक्तिमें समाप्त हो गया। उससे बाहर अब है नहीं तो ये यही तो स्पष्ट भाव हुआ कि जितने व्यक्ति हैं उतने ही सामान्य हैं। जैसे कि व्यक्तिका स्वरूप व्यक्तिमें ही समाप्त हो जाता है और अपनी ही व्यक्तिमें पूरे उस रूपसे रहता है। तो वह व्यक्ति अनेक हुआ ना। यों ही सामान्य भी अनेक हो गया। उस सामान्यमें न तो सर्वात्मक रूपसे रहनेकी वृत्ति बन सकती और न एकदेशरूपसे रहनेकी वृत्ति बन सकती जो सामान्य प्रतिव्यक्तिमें सर्वगत है सो सामान्य वह अब सर्वात्मकरूपसे तो नहीं ठहर सकता। प्रतिव्यक्ति सर्वात्मक रूपसे रहता है सो ठीक है। उसे अनेक मानियेगा। और एक ही सामान्य एक देशरूपसे रहा अर्थात् यदि यह कहो कि सामान्य तो है एक नित्य सर्वव्यापक किन्तु व्यक्ति व्यक्तिमें एक–एक देशरूपसे सामान्य रहा करता है। तो इस का अर्थ यह हुआ कि सामान्य खण्ड खण्ड सहित हो गया। एक सामान्य भिन्न–भिन्न व्यक्तियोंमें अंश अंश रूपसे रह गया तो इस तरह सामान्यको सर्वसर्वगत मान ही नहीं सकते और स्वव्यक्ति सर्वगत मानते हो तो उसका भाव यह समझिये कि पदार्थ तो व्यक्तिरूप है। उस पदार्थमें जो सदृश परिणाम लक्षण धर्म हैं उनसे तो सामान्य की बुद्धि बनती है और जो विसदृश परिणाम लक्षण धर्म हैं उससे विशेषपनेकी बुद्धि बनती है। सामान्य नामक स्वतन्त्र सद्भूत कोई पदार्थ हो और फिर उसमें व्यवस्था बनाये कि वह सामान्य सर्वसर्वगत है। वह सामान्य स्वव्यक्ति सर्वगत है ऐसी बात नहीं है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थ माननेमें ही व्यवस्था—जो बात स्पष्ट है, देखने जानने वालेको सुगम विदित हो रहा है कोई पदार्थ और उसमें यह सदृश धर्म है जिससे उस जातिके अनेक पदार्थोंमें यह सही यह है ऐसी सामान्यकी बुद्धि होती है और उस ही एक व्यक्तिरूप पदार्थमें जो विसदृश धर्म पाये जाते हैं उनको देखकर यह बुद्धि होती है कि यह पदार्थ अन्य पदार्थोंसे भिन्न है। तो सामान्य और विशेष तत्त्व तो यह ज्ञाताके आशयमें है। कोई वस्तुकी तरह सामान्य नामक पदार्थ बन जाय सो बात नहीं है। पदार्थ तो पदार्थ ही है और वह वस्तुतः अव्यक्तव्य है। उस अनिर्वचनीय पदार्थ में तीर्थ प्रवृत्तिके निमित्त व्यवहारसे भेद करके समझाया जाता है कि इस पदार्थमें सदृश परिणमन भी पाया जाता है और विसदृश परिणमन भी पाया जाता है जिससे सिद्ध है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं। यह तो है तिर्यक सामान्यकी दृष्टि और ऊर्ध्वता सामान्यका भी जब विचार करते हैं तो उस एक ही पदार्थमें जितनी पर्यायें बनती हैं उन सब पर्यायोंमें स्वरूपका सादृश्य पाया जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहीं ऐसा नहीं हो बैठता कि जीव पुद्गल जीवकी भाँतिसे परिणमन कर बैठे। क्यों नहीं होता यों कि प्रतिवस्तुमें ऊर्द्धता सामान्य है। यों सामान्य विशेषात्मक पदार्थ माननेसे ही सर्व व्यवस्था बन सकती है।

सामान्यको स्वव्यक्ति सर्वगत माननेपर व्यक्त्यन्तरमें सामान्यकी वृत्तिकी वर्तनाके कारणके विषयमें चार विकल्प – सामान्य यदि एक व्यक्तिमें सर्वात्मक रूपसे रह रहा है तब फिर अन्य जगह सामान्यकी वृत्ति कैसे हो सकती है? यदि सामान्य स्व व्यक्ति सर्वगत है तो उस व्यक्तिमें समस्त रूपसे सामान्य रहता है या एक देश रूपसे रहता है? अगर एक व्यक्तिमें सर्वरूपसे सामान्य रह रहा है उसका फिर सामान्य तो उस एक व्यक्तिमें रह गया, फिर तो अन्य जगह सामान्य न रहना चाहिये एक व्यक्तिमें पूरा सामान्य रह गया, अब दूसरे व्यक्तिमें या अन्य जगह कैसे सामान्य रहेगा? क्या अन्य व्यक्तियोंमें वह सामान्य गमन करता है इसलिए अन्य जगह रह जायगा या दूसरे व्यक्ति पिण्डके साथ ही सामान्य उत्पन्न हो जाता है कि जैसे दूसरा व्यक्ति है उसीके साथ सामान्य भी उत्पन्न हो गया अथवा उस जगह भी सामान्यका सद्भाव है सो व्यक्तिमें वहाँ भी रह गया या कुछ आंशिक रूपसे सामान्य वहाँ रहता है? इस तरह यहाँ ४ विकल्पोंमें पूछा गया है कि एक व्यक्तिमें सर्वरूपसे सामान्य रह जाता है तो अन्य व्यक्तियोंमें पहुचता कैसे है?

सामान्यका गमन मानकर व्यक्त्यन्तरमें सामान्यकी वृत्ति सिद्ध करनेका असफल-प्रयत्न -- उनमेंसे यदि पूर्व विकल्पकी बात मानोगे अर्थात् सामान्य गमन करता है इससे अन्य व्यक्तिमें अन्य पिण्डमें सामान्यका रहना बन जाता है तो यह बात यों अयुक्त है कि सामान्यको निष्क्रिय माना है। सामान्यमें क्रिया ही नहीं होती तो वह जायगा कैसे? अथवा मान लो गया तो पूर्व व्यक्तिका त्याग करके अन्य व्यक्तिमें गया या पूर्व व्यक्तिको न त्यागकर अन्य व्यक्तिमें गया? जैसे एक गाय यहाँ है और एक गाय दूसरे गाँवमें है तो सामान्य जब यहाँके गायमें पूरे रूपसे रह गया गोत्व सामान्य तो दूसरे गाँवकी गायमें यह गोत्व सामान्य कैसे पहुँच गया? क्या यहाँकी गायको छोड़कर वह सामान्य दूसरे गाँवकी गायमें गया या यहाँकी गायको न छोड़कर दूसरे गाँवकी गायमें सामान्य गया? यदि कहो कि यहाँ की गाय को छोड़कर दूसरी गायमें गोत्व सामान्य गया तो उसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ की गाय तो छोड़ दिया सामान्यने तब यह अगौ बन गया यह गाय न रही, गायको छोड़कर सामान्य जब गया तो यहाँ तो गोत्व सामान्य न रहा, यह दोष आता है। यदि कहो कि इस पूर्व पिण्डको न छोड़कर दूसरी जगह गया तो भला बतलावो कि पूर्वपिण्डको तो छोड़ा नहीं और सामान्य है अनंश तब फिर उसका कैसे गमन सम्भव है? जैसे रूपादिक जो तत्त्व हैं वे गमन नहीं करते। इसी प्रकार गोत्व आदिक जो सामान्य हैं वे भी गमन नहीं करते, क्योंकि जिन्होंने पूर्व आधार को नहीं छोड़ा, ऐसे जो रूपादिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनके अन्य आधारोंका संक्रमण होना नहीं देखा गया। जब एक पूरा निरवयव सामान्य यहाँ की गायों में रह रहा है तो और यहाँकी गायको छोड़ा नहीं उसने तो वह सामान्य अन्यत्र कैसे पहुंच सकता है ? जितना था वह सारा पूर्ण सर्वात्मक रूपसे सामान्य तो इस एक व्यक्तिमें रह गया है, इस कारण यह विकल्प युक्त नहीं बैठा कि सामान्य अन्य व्यक्तिके देशमें गमन करता है। इस कारणसे अन्य व्यक्तियोंमें सामान्य पहुंच जाता है।

पिण्डेन सह उत्पाद व व्यक्त्यन्तर देशमें प्राक्सत्व विकल्पसे भी व्यक्त्यन्तरमें सामान्यकी वृत्तिकी असिद्धि—अब दूसरे विकल्पके बारेमें सुनो ! दूसरे विकल्पमें यह कहा गया कि पूर्व व्यक्तिमें सामान्य तो पूर्णरूपसे रह गया, अब दूसरी जगह में भी गाय पैदा हो गयी, गोत्व सामान्य उत्पन्न हो गया। उत्तरमें कहते हैं कि तो फिर सामान्य अनित्य कहलाया। जैसे व्यक्ति नया उत्पन्न हुआ तब सामान्य अनित्य कहलायेगा। सो सदृश परिणामका आधारभूत व्यक्ति उत्पन्न होनेसे उसमें सामान्य आया और सदृश परिणामका आधारभूत व्यक्ति नष्ट होनेसे उसका सामान्य भी नष्ठ हो गया। अब कल्पनामें सामान्य तत्त्व रहा। इस तरह दूसरे विकल्पसे भी यह सिद्ध नहीं कर सकते कि एक व्यक्तिमें सर्वरूपसे सामान्य रह रहा है तब फिर अन्य जगह भी चला जायगा। यदि तीसरे विकल्पकी बात लगाते हो कि जिस जगह दूसरा व्यक्ति है उस जगह भी सामान्य सत्व है तो यह विकल्प भी ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ जो दूसरा व्यक्ति उत्पन्न हुआ उस पिण्डकी उत्पत्तिसे पहिले उस व्यक्ति स्थानमें निराधार सामान्य कैसे अवस्थित रह जायगा ? क्योंकि अब तो मान रहे कि उस देशमें मौजूद है सामान्य जहां कि दूसरा व्यक्ति उत्पन्न होगा। तो जब तक वह व्यक्ति उत्पन्न नहीं होता है उससे पहिले भी सामान्य है, तो कैसे है निराधार ? सामान्य तो व्यक्तिके आधारमें ही रहता है। पदार्थ हो कोई तो उसमें सदृश परिणाम बतादो, पर पिण्ड वहां अभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है तो निराधार सामान्य कैसे ठहर जायगा ? अथवा मान लो ठहरा हुआ है सामान्य पिण्डकी उत्पत्तिसे पहिले निराधार तो फिर सामान्यके सम्बन्धमें यह कहना कि वह सामान्य अपने आश्रयमात्र में रहता है। अब तो देखो वहां कोई पिण्ड या व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ और फिर भी सामान्य रह गया। इस तरह तीसरा विकल्प भी युक्त नहीं है।

अंशवत्तया भी सामान्यकी व्यक्त्यन्तरमें वृत्तिका अभाव—अब चतुर्थ विकल्पकी बात सुनो ! यह कहना कि अंशवत्तारूपसे सामान्य अन्य व्यक्तिमें है तो यह कहना यों ठीक नहीं है कि सामान्य को आपने निरंश माना है। इसी कारण अन्य व्यक्तिमें सामान्यका अभाव होता है। यदि एक व्यक्तिमें सामान्य सर्वात्मकरूप से रह गया तो अन्य व्यक्ति सामान्यसे शून्य हो जायेंगे फिर सामान्य ही क्या रहा ? इस कारण यह नहीं कह सकते कि सामान्य स्वव्यक्ति सर्वगत रहा करते हैं। देखिये !

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ये अन्य लोग भी इस तरहका प्रयोग करते हैं कि जो जहांपर उत्पन्न नहीं हुए हैं और न पहिलेसे अवस्थित हैं और न किसी देशसे आते हैं वे वहां असत् ही कहलाते हैं। अब देखिये ! सामान्यके सम्बन्धमें न तो यह सिद्ध हो सकता कि सामान्य व्यक्तिके स्थानमें उत्पन्न हो जाता है और न यह सिद्ध हो सकता कि व्यक्तिसे पहिले भी वहाँ सामान्य है और न यह सिद्ध हो सका कि किसी व्यक्तिके स्थानसे सामान्य चलकर अन्य व्यक्तिमें आता है। तब सामान्य असत् ही ठहरा। जैसे गधेके शिरपर सींग। न तो सींग उत्पन्न होता है न वहाँ सींग पहिलेसे अवस्थित है और न किसी अन्य देशसे वहाँ पर सींग आया हुआ है तब फिर गधेके सींग असत् ही कहलाये ना ? इसी प्रकार सामान्य भी न उस देशमें था, न उस देशमें उत्पन्न होता है और न कहींसे आता है तब सामान्यकी क्या सत्ता रही ?

सामान्यको व्यक्तिस्वभाव माननेकी मान्यताकी मीमांसा— जो पुरुष सामान्यको व्यक्ति स्वभाव मानते है अर्थात् व्यक्ति ही है स्वभाव जिसका ऐसा स्वभाव जिसका ऐसा सामान्य है क्योंकि व्यक्ति और स्वभावमें भेद नहीं है। सो व्यक्ति स्वभाव ही सामान्य माना करते हैं और, कोई पूछे कि उस व्यक्तिमें सामान्यका तादात्म्य कैसे हो गया ? तो उसका उत्तर देते हैं कि स्वभाव ही व्यक्तिमें सामान्यका तादात्म्य है। तो इससे यह सिद्ध हुआ ना कि सामान्य कहीं कुछ अलग नहीं है। और, जो ऐसा मान रहे हैं कि सामान्य व्यक्तिस्वभाव है तो उनके मतमें भी व्यक्तिकी तरह सामान्यकी असाधारणरूपता हो जायगी व्यक्ति है सो ही सामान्य है। विशेषमें और सामान्यमें अब अन्तर नहीं रहा, क्योंकि व्यक्तिस्वभाव ही सामान्य मान लिया गया। तब व्यक्तिका तो उत्पाद और विनाश होता है, तो सामान्यका भी उत्पाद और विनाश होगा, क्योंकि जब सामान्य व्यक्ति स्वभाव माना गया है तो जब व्यक्तिका उत्पाद हुआ तो सामान्यका भी उत्पाद हुआ जब व्यक्तिका विनाश हुआ तो सामान्यका भी विनाश हुआ। फिर सामान्यरूपता ही नहीं रही। यदि कहो कि सामान्यमें हम असाधारण रूपता नहीं मानते जिससे कि उत्पाद और विनाशका योग जुड़ जाय। उत्तरमें कहते हैं कि तब तो विरुद्ध धर्म वाला हो गया ना सामान्य। अब व्यक्तिस्वभाव तो न रहा। व्यक्ति तो है असाधारणरूप, उत्पत्ति विनाशका सम्बन्ध रखने वाला और सामान्यको कह रहे हो असाधारणरूप नहीं है, वह उत्पत्ति और विनाशका सम्बन्ध रखता नहीं है तब व्यक्तिका धर्म और कुछ हुआ और सामान्यका धर्म और कुछ हुआ तो लो अब व्यक्तियोंसे सामान्यका भेद हो गया ना ? फिर तादात्म्य कहा रहा ? फिर सामान्य व्यक्ति स्वभाव कहां रह सका।

सदृश परिणामलक्षण धर्मसे सामान्य तत्त्वकी व्यवस्था— अब और देखिये जो यह कहा गया है कि सामान्यके बिना अनुगताकार बुद्धियोंकी उत्पत्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं होती है इस कारणसे सामान्य विशेषमें अन्तर है। सामान्य नित्य है, अचल है। सामान्यके बिना अनुगताकार बुद्धि ोंकी उत्पत्ति कैसे हो सकेगी ? अगर सामान्यके बिना अनुगताकार बुद्धिकी उत्पत्ति हो जाय तो वह मिथ्या हो जायगा। यह सब कथन निराकृत हो जाता है क्योंकि नित्य सर्वगत सामान्यका जो आश्रय है, व्यक्ति है उससे बतलाओ सामान्य सर्वथा भिन्न है या अभिन्न ? सामान्य जिस व्यक्तिमें रह रहा है, उससे सामान्य क्या भिन्न है ? यदि भिन्न है तो फिर सामान्य ही क्या रहा ? सामान्य सर्वत्र जुदा है तो फिर यह कहना गलत होगा कि सामान्य अपने आश्रयमें रहा करता है। यदि कहो कि व्यक्तिसे वह नित्य सर्वगत सामान्य अभिन्न है तो भी उसमें अनेक दोष आते हैं। तब तो व्यक्ति और सामान्य एक बन गए। इस कारण सामान्य नामक कोई पदार्थ है अलग। और विशेषमें व्यक्तिसे भिन्न किसी प्रकार रह रहा है यह बात असिद्ध हो जाती है। अरे अनुगत ज्ञान जो बना करता है, पदार्थोंको निरखकर ज्ञाताके जो अनुगताकार बोध होता रहता है यह ज्ञान सदृश परिणामके कारण हैं। अथवा जो सदृश परिणाम हो रहे है उनको निरखकर जाना जाता है कि यह इसके समान है तो इस प्रकार जो अनुगत ज्ञान है उसका कारण सदृश परिणाम है, यह निरखकर हम समानताका बोध किया करते हैं। और वह सामान्य, अनुगत प्रत्यय, सदृश परिणाम अनित्य है अव्यापी है अनेक व्यक्तात्मक है अनेक रूप है सो ऐसा यह प्रत्यक्षसे ही नजर आरहा है। जैसे आंखोंसे जब हम देखते हैं पदार्थोंको तो सारे रूप स्पष्ट नजर आते हैं ये पीले नीले आदिक। इसी प्रकार प्रत्यक्षसे ही यह नजर आरहा है कि इस व्यक्तिमें देखो ! यह है सदृश परिणमन जिससे कि उस जातिके सब व्यक्तियोंके प्रति यह वही है, वही है इस प्रकारका बोध फलता रहता है। इससे यह बात कहना गलत है कि अनेक पिन्ड भेदमें जो गौ गौ एकाकार रूपसे बुद्धि होती है वह एक गोत्व सामान्यके कारण होती है। तो सामान्य है एक ? जैसे गायमें गाय गाय यह बताया है तो गाय सामान्य है उसके कारण नाना गायोंमें गौ है गौ है, इस प्रकारकी बुद्धि होती है, यह बात अयुक्त हो जाती है।

सामान्यके सर्वगतत्वकी असिद्धि—सामान्य व्यक्तिगत है न कि व्यक्तिसे अलग और न सर्व व्यापक कोई एक नित्य है व्यक्तिमें ही सदृश परिणमन पाये जाते हैं, व्यक्तिमें ही विसदृश परिणमन पाये जाते हैं। अथवा व्यक्ति तो जो है सो है, वह आवान्तर सत् है, उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक है। अब उसमें सदृश धर्म है विसदृश धर्म है यह तो हम आप जान करके बुद्धिसे स्थापित करते हैं। पदार्थकी ओरसे तो जो कुछ है, जैसा है सत्त्व वैसा ही है। हां जो कभी शंकाकारके अनुयायियोंके द्वारा यह कहा जाता है कि जैसे सामान्यका बोध किसी व्यक्तिसे हुआ करता है। जैसे—"गाय" ऐसा कहना केवल चितकबरी गायमें ही नहीं, खण्डी मुण्डी, लाल, पीली आदिक अनेक गायोंका आलम्बन करके गो बुद्धि होनेसे और खण्डी मुण्डी आदिकमें गो बुद्धि होनेसे और खण्डी मुण्डी आदिक गाय न हो तो भी शावलेयमें गो बुद्धि

होनेसे यह सिद्ध होता है कि सामान्य सर्वव्यापक है। जैसे कि घड़े में पार्थिव बुद्धि होती है। पार्थिव कहते हैं पृथ्वीसे उत्पन्न होनेको। सफेद पीली आदिक विशेषके बिना जैसे घड़ेमें यह मिट्टी है ऐसा सामान्यरूपसे मिट्टीपनेकी बुद्धि होती है इसी तरह शावलेय खण्डी मुण्डी आदिक गायोंमें यह शावलेय हैं, यह खण्डी मुण्डी है, ऐसा भेद किए बिना ही उनमें गौ ऐसी एक बुद्धि होती है। उत्तर यह है कि ठीक कह रहे हो यह जितने व्यक्ति हैं उन व्यक्तियोंमें जब साधारणधर्म देखा जा रहा है तो उस दृष्टि में व्यक्तिका विशेष धर्म कैसे नजर आ गया? ठीक ही है– दृष्टिमें व्यक्तित्वको छोड़ करके एक सामान्यतया जातिकी बुद्धि होती है तो यह तो सदृश प्रत्यय ज्ञानका कमाल है न कि कोई सामान्य नामका पदार्थ अलगसे सिद्ध होता है। क्योंकि व्यक्तित्वको छोड़कर सदृश परिणामका आलम्बन होता है उस बुद्धिमें, अर्थात् विशेषको छोड़कर विसदृश धर्मको न लेकर सदृश परिणामको लेकर ही एक यह बुद्धि जगी है सो ठीक ही है कि सामान्य प्रतिव्यक्तिगत है और उसमें जो सदृश परिणाम पाया जाता है उसके आलम्बनसे उसकी सिद्धि होती है।

सर्वगत सामान्यकी सिद्धिमें कथित एकाकारबुद्धिग्राह्यत्व हेतुकी असिद्धता—देखिये सामान्यका जो सर्वगतपना सिद्ध किया है वह भी एक कथन मात्र है। शंकाकारने सामान्यका किस तरह सर्वगतपना सिद्ध किया है? वहां कथन है कि जो यह गौ बुद्धि हो रही है। अनेक गाय व्यक्तियोंमें गौ गौ प्रत्याकार जो एक प्रत्यय हो रहा है यह बुद्धि प्रत्येक समवेत अर्थमें रहने वाला है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में जो गोत्व लक्षण सामान्य रह रहा है उसे बुद्धि विषय करती है—गाय गाय, इस प्रकार जातिरूपसे जो बोध हो रहा है वह बोध प्रत्येक गायमें गोत्व सामान्यमें हो रहा है। फिर वह बोध हो रहा है फिर वह बुद्धि उसको विषय करती हुई प्रत्येक पिण्डमें समस्त रूप पदार्थके आकार होनेसे अर्थात् वह गोत्व सामान्य पूर्ण समस्त व्यक्ति रूप है, सो जिस प्रत्येक व्यक्तिके विषयमें जो बुद्धि चलती है विशेषकी, इसी तरह प्रत्येक व्यक्तियोंमें सामान्यकी भी बुद्धि चलती है, इस सामान्यमें एकता है। सामान्य सर्वत्र एक ही प्रसिद्ध है। वह किस तरह? यद्यपि सामान्य प्रत्येक में सर्वात्मक रूपसे व्याप्त हो जाता है तो भी वह एक है, क्योंकि एकाकार बुद्धि द्वारा ग्राह्य है। शङ्काकारका यह कथन है यहाँ। सामान्य यद्यपि प्रत्येक व्यक्तियों में समाप्त होकर व्याप रहा है तो भी यह शङ्का न करना चाहिए कि फिर तो जितने व्यक्ति हैं उतने सामान्य हो जायेंगे, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिमें सामान्य पूरे रूपसे भर गया है, वह बाहर नहीं है सामान्य, क्योंकि सामान्यका आश्रय व्यक्तिसे दूर नहीं होता, फिर भी सामान्य एक ही है, क्योंकि उस सामान्यके विषयमें जो ज्ञान होता है वह ज्ञान एकाकार बुद्धिके द्वारा ग्राह्य है। जैसे कि नञमें निषेधमें कहे गए वाक्यमें ब्राह्मण आदिककी जो निवृत्ति होती है वह एकाकार बुद्धिसे ग्राह्य है। निषेध एक ही कहलाया। जैसे कहना—अब्राह्मण. ब्राह्मण नही तो ब्राह्मण नहीं यह बात अन्य सब व्यक्तियोंमें एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आकाररूपसे पाया जा रहा है। यह भी ब्राह्मण नहीं, यह भी ब्राह्मण नहीं। तो जैसे नत्रमें एकता पायी जाती है इसी प्रकार सामान्यमें भी एकपना पाया जाता है। यह एकपनेकी बुद्धि मिथ्या नहीं है, क्योंकि उसके कारणमें दोष नहीं है, न कोई बाधक ज्ञान है कि इसके बाद इसे जाना। यदि इन्द्रियमें दोष नहीं है तो वह ज्ञान सच्चा ही होगा। ऐसा कहना भी एक कथनमात्र है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिमें समस्तरूपसे पदार्थाकार रहे उसका सदृश परिणामके साथ अविनाभाव नहीं है, क्योंकि यह साधन साध्यसे विपरीत पदार्थमें भी पहुँचता है अतएव विरोध है। हेतु दे करके सिद्ध तो यह करना चाहते हो कि सामान्य सर्वगत है, पर जो हेतु देना चाहिए कि प्रत्येकमें सर्वात्मकरूपसे व्याप्त है। यदि वह एक है तो कैसे वह सर्वगत हो सकता है? जो प्रत्येक व्यक्तिमें परिसमाप्त हो रहा है वह तो जितने व्यक्ति हैं उतने रूप होगा, एक कैसे हो सकता है? और, फिर नित्य एकरूप प्रत्येक व्यक्तिमें समाप्त होने वाले सामान्यको सिद्ध करनेमें जो दृष्टान्त दिया है उसमें साध्य न पाया जानेका दृष्टान्त दिया है—ब्राह्मण आदिक निवर्तनका 'न अयं ब्राह्मणः'। ब्राह्मणका निषेध किया तो उसमें सर्वगतता कहाँ है। यों यह हेतु अपने अभीष्ट साध्यको सिद्ध करनेमें असमर्थ है।

सामान्यको सर्वरूपसे प्रतिव्यक्तिगत माननेपर अनेक दोषप्रसंग होनेसे सामान्यके वस्तुधर्मत्वकी सिद्धि— इन सर्व प्रत्येक व्यक्तिमें परिसमाप्त होने वाले उस सामान्यके एकत्वका अनुमान बनाओगे तो सर्वादिक रूपसे सामान्य बहुत व्यक्तियोंमें परिसमाप्त हुआ तो सारे व्यक्ति भी परस्परमें एकरूप हो जायेंगे, क्योंकि एक व्यक्तिमें रहनेके स्वभाव वाले सामान्य पदार्थके द्वारा सभी पदार्थ छुवे गए हैं, अभिन्न हो रहे हैं, तादात्म्य बन गए हैं तब सारे व्यक्ति भिन्न–भिन्न नहीं रहे। सब कुछ एक हो गया। प्रयोजन यह है कि या तो सारे व्यक्ति एक बन जायेंगे या सामान्य अनेक हो जायेंगे। व्यक्ति रहे अनेक और उन सबमें रहने वाले सामान्य रहे एक, यह बात सम्भव नहीं हो सकती इस तरह सामान्य कोई सत्तात्मक अलग पदार्थ नहीं है। जो भी पदार्थ हैं वे सामान्य विशेषात्मक होता है। उसमें जो सदृश धर्म है वह तो सामान्यको सूचित करता है और जो विसदृश धर्म है वह विशेषको सूचित करता है। तो सामान्य विशेषात्मकता पदार्थका ही धर्म है, न कि सामान्य कुछ अलग पदार्थ है—और विशेष कुछ अलग पदार्थ है। ऐसा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय हुआ करता है। न केवल सामान्य प्रमाणका विषय है न केवल विशेष प्रमाणका विषय है। इस तरह इस प्रसंगमें जो यह जिज्ञासा की कि प्रमाणका विषय क्या है, सो सिद्ध किया गया कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है।

सर्वसर्वगत अथवा स्वव्यक्ति सर्वगत नित्य एक सामान्यकी सिद्धिकी अशक्यता— नित्य एक सर्वव्यापी सामान्य तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है और स्वव्यक्ति सर्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गत नित्य एक सामान्य युक्तिसे असिद्ध है तो अपने व्यक्तिमें सर्वरूपसे रहकर सामान्य एक और नित्य कहलाये तो उसकी उपलब्धि व्यक्तिसे बाहर नहीं होगी और जब कि व्यक्तिमें ही वह सामान्य परिसमाप्त हो गया और सामान्य है एक नही सामान्य, अन्य व्यक्तियोंमें एक तादात्म्य रूपसे रह रहा है तो इसका अर्थ यह होगा कि या तो सामान्य अनेक माने जाने चाहिएँ या फिर व्यक्ति ही सब एक मात्र रह जायगा। जैसे कि दूर रखे हुए अनेक पात्र हैं उनमें आमबेल आदिक फल लगे हुए हैं तो जैसे वे फल अनेक हैं इसी तरहसे अनेक वस्तुवोंमें सामान्य परिसमाप्त रूपसे रह रहा है तो सामान्य अनेक हो गए। जैसे कि अनेक बर्तनोंमें प्रत्येकमें एक एक फल पूरा पड़ा हुआ है तो फल अनेक हो गए इसी तरह प्रत्येक व्यक्तिमें पूरा पूरा सामान्य पड़ा हुआ है तो सामान्य अनेक हो जायेगे इस तरह न तो सर्वगत सामान्यकी सिद्धि हो सकती है और न स्वव्यक्ति सर्वगत सामान्यकी सिद्धि होती है। शंकाकार का यह कहना भी अयुक्त है कि नित्य एक सर्वगत सामान्यके माननेमें कोई बाधक ज्ञान नहीं है। अब तक इतने बाधकज्ञान तो बताये गए। किसी भी प्रकार नित्य एक सर्वव्यापी स्वतंत्र सद्भूत सामान्य पदार्थकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि ऐसी जाति जो कि प्रत्येक व्यक्तिमें पूर्णतया सभवेत हो, परिसमाप्त हो जाय और एक कहलाये, असिद्ध है। प्रत्येक व्यक्तियोंमें पूर्ण पूर्ण रूपसे रहे और उसे फिर एक कहा जाय, यह कैसे सिद्ध हो सकता है? जैसे कि वे नाना फलका एक बर्तनमें पड़े हुए हैं और फिर भी उन फलोंको एक कह दिया जाय इसे कोई मान सकता है क्या? यह कभी नहीं माना जा सकता। सामान्य न सर्वगत सामान्य रहा न प्रत्येक व्यक्ति सर्वगत सामान्य रहा। सामान्य नामक पदार्थ स्वतन्त्र सद्भूत कुछ नहीं है। पदार्थ ही सब हैं और उनमें परखा जाता है कि इसमें यह सदृश धर्म है और यह विसदृश धर्मके कारण तो सामान्य तत्त्वकी सिद्धि होती है और विसदृश धर्मके कारण विशेष तत्त्वकी सिद्धि होती है।

नित्य एक व्यापक सामान्यकी सिद्धिमें एकबुद्धि ग्राह्यत्व हेतुकी असिद्धता—शंकाकारका यह हेतु भी असिद्ध है। एक बुद्धि ग्राह्यत्वात् अर्थात् सामान्य सबमें एक है क्योंकि एक सामान्यकी अनेक व्यक्तियोंमे वही वही है यों एक बुद्धि के द्वारा ग्राह्य है। जैसे अनेक गायोंमें गौ गौ गाय है, गाय है, इस तरहकी एक बुद्धि बनती है इससे सिद्ध है कि प्रतिगायमें गोत्व सामान्य एक है इसका हेतु दिया वह असिद्ध है। असिद्ध दोस दो प्रकारके होते हैं एक आश्रयासिद्ध और दूसरा स्वरूप सिद्ध। जिस हेतुका कोई आधार ही नहीं, आश्रय ही नहीं उसको कहते हैं आश्रया सिद्ध, और, जिस हेतुका स्वरूप सिद्ध नहीं हो रहा है उसे कहते हैं स्वरूपासिद्ध। तो एकबुद्धि ग्राह्य नामका हेतु आश्रयासिद्ध तो यों है कि जिस जातिमें आप एक बुद्धि ग्राह्यता सिद्ध कर रहे हैं उस जातिका ही अभाव है। पहिले आश्रयभूत जाति को तो सिद्ध कर लें, वह सिद्ध है नहीं इस कारण एक बुद्धि ग्राह्यत्व हेतु आश्रया-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्ध है स्वरूपासिद्ध यों है कि यह इसके समान है। इस प्रकारका जो निर्बाध बोध हो रहा है उस बोधसे ही सामान्य जाना जा रहा है, जो कि अनेक रूप है अर्थात् जितने व्यक्ति हैं उन सब व्यक्तियोंमें समानताका बोध हो रहा है इस कारणसे एक बुद्धि द्वारा ग्राह्य है अतः सामान्य नित्यव्यापी एक है, यह बात असिद्ध है। वह तो सदृश धर्मके बोधके द्वारा अधिगम्य है। सामान्य नामक पदार्थ अलग नहीं है जिसको किसी साधनसे सिद्ध किया जाय और इस अनुमानमें जो दृष्टान्त दिया गया है उस दृष्टान्तमें साध्य ही मौजूद नहीं है। दृष्टान्त यह दिया था कि जैसे ब्राह्मणत्वको निवृत्ति, ब्राह्मणत्वकी निवृत्ति एकरूप है क्योंकि एक बुद्धि द्वारा ग्राह्य है। जो भी ब्राह्मण नहीं है उसे एक बुद्धिमें कहते हैं ना कि यह ब्राह्मण नहीं, यह ब्राह्मण नहीं तो देखो अनेक अब्राह्मणोंमें एकाकारकी बुद्धियां चल रही हैं। यह ब्राह्मण नहीं है ऐसा जो दृष्टान्त दिया था इस दृष्टान्तमें साध्य एकत्व नहीं है क्योंकि ब्राह्मण आदिक निवृत्ति परमार्थसे एकरूप नहीं है। यह क्षत्रिय ब्राह्मण नहीं है। यह वैश्य ब्राह्मण नहीं है आदिक ढंगसे अभाव दीखा तो अब्राह्मणत्व अनेक रूप हो गए वे अब्राह्मणत्व अभाव इस तरहके ज्ञानसे संयुक्त प्रागभाव आदिककी तरह अनेक दीखो सो इन अभावोंकी तरह ब्राह्मणनिवर्तन भी अभेदरूप हुए। तात्पर्य यह है कि जो यह बुद्धि बन रही थी यह ब्राह्मण नहीं है, यह ब्राह्मण नहीं है, यह कहनेमें विभिन्न-विभिन्न ज्ञान हो रहे हैं। यह क्षत्रिय ब्राह्मण नहीं है, यह वैश्य ब्राह्मण नहीं है तो उस अभावमें तो नाना ज्ञान चल रहे हैं। एकत्वका ज्ञान ही कहां रहा? जैसे कि प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव, ये कितने हो गए। तो अभावों में एकत्व बुद्धि नहीं हुआ करती। इस कारण इस अनुमान प्रयोगमें जो हेतु दिया है वह यों सही न रहा कि उसका दृष्टान्त कोई मिला नहीं और जो दिया गया है दृष्टान्त ब्राह्मण निवृत्तिका वह साध्य विकल है। वहाँ भी अनेकत्वकी बुद्धि हो रही है। तो सामान्य नित्य सर्वगत एक कोई न रहा।

पिण्डाद्व्यतिरिक्तनिमित्तमात्रसे अनुवृत्ति प्रत्ययकी सिद्धिपर विचार—

एकव्यापी सामान्यके निराकरणके साथ इसका भी निराकरण हो जाता। जैसे कि अन्य कुछ दार्शनिक कहते हैं कि अनेक गायोंमें यह गाय है, यह गाय है, ऐसा जो अनुवृत्तिका ज्ञान चल रहा है वह गाय पिण्डसे भिन्न किसी निमित्तका ज्ञान बन रहा है क्योंकि वह ज्ञान भेदक है, भेद करने वाला है। जैसे नीलादिकका ज्ञान यह भेद करने वाला है। यह नील है, यह पीत है तो वह पिण्डादिकसे व्यतिरिक्त अन्य निमित्तसे हुआ करता है। इस प्रकार अनेक गायोंमें जो अनुवृत्तिका प्रत्यय हो रहा है—यह भी गाय, यह भी गाय आदिक रूपसे, वह व्यक्तियोंसे भिन्न कोई अन्य निमित्तसे हो रहा है। इस प्रकार माननेपर स्पष्ट निष्कर्ष यह निकला कि गायोंसे भिन्न है गोत्व। गौ खण्ड मुण्ड आदिक गायें खड़ी हैं उन गायोंसे गोत्व न्यारा है। वे गायें तो द्रव्य हैं, किन्तु गोत्व सामान्य पदार्थ है क्योंकि भिन्न ज्ञानका विषय होनेसे। उन व्यक्तिरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गायको गोत्व नहीं कहा जाता। सब गायोंमें रहने वाले एकको गोत्व कहा जाता है। तो जब भिन्न ज्ञानके ये विषय होगए, गोव्यक्ति और गोसामान्य तो यह गो व्यक्तिसे भिन्न ही कहलाया गोत्वसामान्य। और, फिर यह भी तो व्यपदेश होता है कि गायों का गोत्व है। इससे भी सिद्ध है कि ये दो पदार्थ हैं। जैसे पदार्थका रूप है तो पदार्थ अन्य हुआ, रूप अन्य हुआ, भिन्न-भिन्न बुद्धिमें आरहा है। तो यह जो व्यपदेश हुआ है वह वस्तुभूत पदार्थसे ही तो हुआ है। वह कथन भी असङ्गत है। उत्तरमें कह रहे हैं कि उन समस्त गायोंमें जो अनुवृत्तिका ज्ञान हो रहा है - यह भी गाय है, यह भी गाय है, इस तरह जो अनुवृत्तिप्रत्यय बन रहा है उसका यदि पिण्डादिकसे व्यतिरिक्त निमित्तमात्रको साधन बनते हो तब तो सही बात बनती है क्योंकि वह जो समस्त व्यक्तियोंमें अनुवृत्तिका प्रत्यय चल रहा है वह सदृश परिणामके कारणसे माना ही गया है और वह सदृश परिणाम कथंचित् गोव्यक्तियोंका निमित्त है क्योंकि संज्ञा नाम और तद्गत प्रत्यय ये सब न्यारे-न्यारे हैं हाँ, नित्य एक अनुरागी सामान्यके कारण वह अनुगत प्रत्यय हो रहा है ऐसा माना जाय तो असिद्ध है और इसकी सिद्धि में कोई दृष्टान्त भी न मिलेगा। जो भी दृष्टान्त देंगे वह साध्य विकल होगा, क्योंकि साध्य तुम यहां बना रहे हो पिण्डसे व्यतिरिक्त कोई नित्य एक अनुगत सामान्य है उसके निमित्तसे यह अनुवृत्तिका प्रत्यय हो रहा है। अनुवृत्ति उसे कहते हैं जो अनेक व्यक्तियोंमें रहे अर्थात् एकत्वका प्रत्यय उस सामान्य पदार्थके कारण नहीं होता किन्तु सदृश परिणामके ज्ञानके कारण होता है तथा इस अनुमानमें अन्वय भी सिद्ध नही है। ऐसे जो जो भेदक प्रत्यय होते हैं वे वे नित्य एक अनुगामी सामान्यसे होते हैं यह तो अत्यन्त असिद्ध बात है। विशेष भी भेदक प्रत्यय है और वस्तुतः भेदक प्रत्यय तो विशेष ही है। यह गाय इससे निराली है, यह घोड़ा भैंससे जुदा है, इस तरह जो भेद करने वाला ज्ञान होता है वह ज्ञान किसी नित्य एक अनुगामी सामान्यसे हुआ करता है क्या, तो इस कारण यह कहना अयुक्त है कि अनेक व्यक्तियोंमें जो अनुगताकार ज्ञान बन रहा है वह नित्य एक सर्वव्यापी सामान्य ज्ञानके कारण बन रहा है। अरे वह तो व्यक्तियोंमें रहने वाला जो सदृश परिणाम लक्षण धर्म है उससे बन रहा है यह ज्ञान।

अनुगतज्ञानोपलम्भसे नित्य सर्वगत सामान्यकी सिद्धिके वर्णनकी मीमांसा——अब दूसरी बात भी देखिये——अनुगत ज्ञानके उपलब्ध होनेसे ही नित्य एक सर्वगत सामान्यकी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि बतलाइये—क्या जहांपर अनुगत ज्ञान है वहां सामान्यका होना हैं यह आप समझा रहे हैं या जहां सामान्य रहता है वहां अनुगत ज्ञान होता है यह समझा रहे हैं? अनुगत ज्ञानकी उपलब्धिसे नित्य एक सर्वगत सामान्यकी सिद्धि जो बना रहे हो, उस प्रसंगमें तुम हृदयसे सिद्ध क्या करना चाहते। क्या यह कि जहां अनुगत ज्ञान मिलेगा वहां सामान्य मिलेगा? या जहां सामान्य मिलेगा वहां अनुगत ज्ञान मिलेगा? इन दो बातोंमें कौन सी बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तुम समझाना चाहते हो ? यदि प्रथम पक्षकी बात कहोगे कि हम यह समझाना चाहते हैं कि जहाँ अनुगत ज्ञान होगा वहां सामान्यका सद्भाव है तो यह बात यों अयुक्त है कि अनुगत ज्ञान जहां जहां मिलता वहां वहां तुम सद्भाव मानते हो तो गोत्व, मनुष्यादिक सामान्यमें अनुगत ज्ञान है ना, तो उसमें भी और सामान्य बताओ गोत्वादिक सामान्यमें सामान्य है सामान्य है इस प्रकारका जो अनुगताकार प्रत्यय हो रहा है उससे फिर गोत्व, अश्वत्व, घटत्व, पटत्व आदिक सामान्योंसे व्यतिरिक्त फिर अन्य कोई जरूर सामान्य मानो। तो यों सामान्यकी अव्यवस्था होगी, अनवस्था होगी। इस कारणसे यह बात नहीं बनती कि जहां अनुगत ज्ञान होता है वहां सामान्यका सद्भाव होता है।

सामान्य और अभावोंमें होने वाले अनुवृत्त प्रत्ययकी सामान्य पदार्थवादमें व्यवस्थाकी अशक्यता—जहां अनुगत ज्ञान होता है वहां सामान्य होता है ऐसा कहनेमें तो सामान्यमें भी अनुगताकार ज्ञान पाया जा रहा है अर्थात् सामान्य गोत्व अश्वत्व, मनुष्यत्व, घटत्व आदिक जहां अनेक सामान्य समझमें आये उन सब सामान्योंमें सामान्यपना है यह भी बात समझमें आती है तब तो अन्य सामान्यकी कल्पना करनी पड़ेगी। सामान्योंमें जो सामान्य सामान्यका बोध होता है वह ज्ञान गौण नहीं है, काल्पनिक नहीं है, क्योंकि वह ज्ञान बराबर दृढ़तासे हो रहा है। काल्पनिकता सिद्ध नहीं होती प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव अत्यन्ताभाव इन चार प्रकारके अभावोंमें अभाव है, अभाव है, इस प्रकार जो अनुगत प्रत्यय होता है तो उन अभावोंमें अभाव अभाव रूपसे अभावत्व सामान्य मानना पड़ेगा। जब चार प्रकारके अभाव हैं। और सर्व प्रकारके अभावोंमें यह अभाव, यह भी अभाव इस इस तरहका अभाव सामान्यका बोध होता है तो उनमें फिर अभावत्व सामान्य भी मानना होगा। पर शंकाकारने तो अभाव सामान्य माना नहीं। तो ऐसे पदार्थोंमें अथवा अभावोंमें भी अनुगामी एक निमित्त और कुछ नहीं है सिवाय सदृश परिणामके। सदृश धर्म देखकर उनमें सामान्यका बोध होता है।

अभावोंमें अभावत्वसामान्यकी व्यवस्थाका अभाव—शङ्काकार कहता है कि प्रागभाव आदिक अभावमें और सामान्यका अभाव होनेपर भी सत्ता नामका सामान्य मौजूद है और इस सत्ता नामक सामान्यके बलसे अभावका जो ज्ञान है वह अनुगत रूपसे होता रहेगा। अभावमें सत्ता कैसे है ? ऐसी यदि कोई शंका करे तो शंकाकार उत्तर दे रहा है कि प्रागभावमें सामान्य नामक पदार्थ नहीं माना गया है। किन्तु यहां तो अनुत्पत्तिरूप है। नित्य सर्वगत भी। ऐसी सत्ता तो प्रागभाव आदिकमें भी है। इसके बलसे उन अभावोंमें अभाव प्रत्यय अनुगतरूपसे होता रहेगा। उत्तर देते हैं कि शंकाकारका यह कहना अयुक्त है क्योंकि फिर तो अभिप्रेत जो द्रव्य, गुण, कर्म पदार्थ है जिसका कि सब लोग सुगमतया बुद्धिमें शीघ्र आभास

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर लेते हैं, उन पदार्थोंसे अतिरिक्त जो मतके अन्तर्गत पदार्थ हैं, जैसे प्रधान अद्वैत प्रकृति आदिक तथा जो लौकिक विचित्र कथाओंके पदार्थ उ में अभावके प्रतीतिकी अविशेषता है अर्थात् इसके सम्बन्धमें भी अभाव प्रतीति हुआ करती है। तब उस अभावमें भी सत्वका प्रसंग हो जायगा। इस कारणसे अभावमें अनुवृत्तिका ज्ञान होने में अनुगामी एक सामान्य कारण है। यह न मानना चाहिए क्योंकि वह निमित्त अभावमें नही पाया गया और इसी तरह सर्व प्रकारके पदार्थोंमें भी अनुगामी एक सामान्यका कारणपना नहीं रह सकता। अनुमान प्रयोग भी है इस सम्बन्धमे कि जो क्रमित्व, अनुगामित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, सत्व आदिक धर्मसे सहित है वह कल्पित एक व्यापक सामान्य पूर्वक नही होता है। अर्थात् उनमें सामान्य पदार्थ निमित्त नहीं है। जैसे कि अभावमें अभाव है, अभाव है, ऐसा ज्ञान होता है। अथवा सामान्यमें सामान्य है, सामान्य है, ऐसा जो ज्ञान होता वह सामान्य निबंधक तो नही माना गया, इसी तरह समस्त पदार्थोंमें जो सदृश धर्मपनेका ज्ञान होता है वह कहीं सामान्य पदार्थ निमित्तक नहीं है, किन्तु उनमें सदृश परिणाम लक्षण धर्म पाया जाता तन्निबन्धनक अनुगत प्रत्यय है। इस कारण यह कहना युक्त नहीं है कि जहां अनुगत ज्ञान होता है वहां सामान्यका सद्भाव समझा जाता है।

जहाँ सामान्य होता है वहीं अनुगत ज्ञानकी कल्पना माननेके पक्षका निराकरण अब शङ्काकार कहता है कि यह बात तो युक्त हो जायगी कि जहाँ सामान्य होता है वहाँ हीं अनुगत ज्ञानकी कल्पनायें होती हैं अर्थात् द्वितीय पक्षकी बात शङ्काकार कह रहा है। उत्तर देते हैं कि यह भी बात सङ्गत नहीं है क्योंकि पाचक आदिक पुरुषोंमें सामान्यका अभाव होनेपर भी अनुगत प्रत्ययका बोध होता है, पाचक कहते हैं भोजन बनाने वाले को। जितने पाचक पुरुष हैं उन सबमें अनुगत ज्ञान तो होता है—पाचक है, पाचक है, यह पाचक है, वह पाचक है, इस तरहका अनुगत ज्ञान हो रहा है, पर उनमें सामान्य पदार्थ तो है नही। ऐसा नही कह सकते कि उन पाचकोंमें भी अनुगामी एक सामान्य मौजूद है इस कारणसे पाचक है, पाचक है, इस प्रकारके अनुगत ज्ञानमें प्रवृत्ति होती है। क्यों नही कह सकते कि पाचक कोई पदार्थ नही है। कोई पुरुष रसोई बनाने लगा तो उसका पाचक नाम पड़ गया, नही बनाता तो पाचक नाम नही है, इस कारण यहां कोई अनुगामी एक सामान्य नही माना।

क्रिया अनुगत प्रत्ययका अकारण—यदि कहो कि उसमें निमित्तान्तर है, सामान्य निमित्त न सही. किन्तु पाचक हैं, पाचक है, इस प्रकारके अनुगत बोधमें कोई अन्य निमत्त कारण है तो वह निमित्तान्तर क्या है। क्या कर्म है या कर्म सामान्य है। या व्यक्ति है या शक्ति है। कौन सा वह निमित्तान्तर है जिसकी वजहसे पाचकोंमें यह पाचक है यह पाचक है इस प्रकारका अनुघताकार बोध होता है उनमें कर्म तो कारण नही हैं। क्योंकि वह कर्म क्रिया प्रत्येक व्यक्तिमें भिन्न है। जो भिन्न है वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अभिन्नका कारण नही बन सकता है । जो जुदे जुदे हैं वे अनुगताकारके कारण नही हो सकते हैं यदि भिन्न होनेपर भी अनुगताकारके कारण बन जाये तब फिर सदृश परिणामके मान लेनेमें क्यों द्वेष किया जा रहा है । मान लीजिए कि प्रतिव्यक्तिमें भिन्न-भिन्न सदृश परिणाम हैं । हैं भिन्न-भिन्न परिणमन, मगर हैं वे सदृश । और उस सदृशताके कारण उन सब व्यक्तियोंमें सामान्यका बोध होता है । अथवा मानलो कि उन पाचकोंमें पाचक है पाचक है इस प्रकारके अनुगत प्रत्ययके बोधका कारण कर्म है तो यह बतलाओ कि वह कर्म नित्य है अथवा अनित्य है ? नित्य तो कह नहीं सकते क्योंकि कर्म नित्य सदा मौजूद देखा नहीं जाता और कर्मको नित्य माना भी नहीं गया है । यदि वह कर्म अनित्य है तो कर्म सर्वदा ठहरेगा नहीं । कर्म हुआ और नष्ट हो गया । अब नष्ट हो जानेपर फिर पाचक है, पाचक है इस प्रकारका ज्ञान नहीं हो सकता है, क्योंकि जब वह रसोई नहीं पका रहा है तब उस समय पाचन क्रिया कहाँ मौजूद है ? कर्म तो नहीं रहा । जब कर्म नहीं रहा तो पाचक सामान्य बतानेका हेतु भी न रहा । और, तब फिर रसोई पकाते हुएमें उसे पाचक यह नाम देना चाहिए । अन्य समय न बताना चाहिए लेकिन देखा तो यह जाता कि जो रसोई बनानेका काम करता है उसे सदैव पाचक कहा करते हैं । इस कारण कर्म तो अनुगतज्ञानका कारण न बना ।

कर्मसामान्य अनुगतप्रत्ययका अकारण—यदि कहो कि कर्म सामान्य अनुगत ज्ञानका कारण बन जायगा तो यह बतलावो कि वह कर्म सामान्य कर्मके आश्रित है या कर्मके आश्रयके आश्रित है ? अर्थात् कर्म करने वाले जो पुरुष आदिक हैं उनके आश्रित रहते हैं कर्म । यदि कहो कि कर्म सामान्य कर्मके आश्रित रहते हैं तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि कर्म सामान्य रहता है कर्मके आश्रित और कर्म सामान्य पाचकका ज्ञान उत्पन्न कर रहा हो । ऐसा तो नहीं होता कि अन्य जगह पाया जाने वाला तत्त्व अन्य जगहमें ज्ञानका कारण बन जाय । अन्यथा घरमें तो दीपक जल रहा हो और गुफामें ज्ञानका कारण बन बैठे तो अन्य जगह रहने वाली बात अन्य जगहके ज्ञानका कारण नहीं बनती । तो कर्म सामान्य जो रह रहा है सामान्यमें तो कर्ममें कर्म सामान्य बोध करे पर पाचकमें उससे बोध नहीं हो सकता । हां, फिर तो कर्म सामान्यसे पाक पाक, बस यह बोध हुआ करे, पर यह पाचक है, पाचक है ऐसा पुरुष-गत बोध तो नहीं हो सकता । क्योंकि कर्म सामान्यको तुमने कर्मके आश्रित मान लिया । यदि कहो कि वह कर्म सामान्य कर्मके आश्रयके आश्रित है अर्थात् कर्मका आश्रय हुआ पुरुष, जो कोई भी कर्म कर रहा है उसके आश्रित मानते हो कर्म सामान्यको तो यह बात ठीक नहीं है । कर्म सामान्य कर्म सामान्य कर्मके ही आश्रित हो सकता है । जैसे गोत्व सामान्य गायके ही आश्रित हो सकता है गाय वालेके आश्रय तो नहीं होता, इसी तरह कर्म सामान्य कर्मके ही आश्रित हो सकता है । यदि कहो कि परम्परासे कर्म सामान्य कर्मके आश्रयके आश्रित बन जायगा तो कर्म सामान्य है

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मके आश्रित और कर्म है पुरुषके आश्रित तो यों परम्परामें कर्म सामान्य कर्मके आश्रयके आश्रित बन जायेंगे। उत्तर देते हैं कि यह भी सारहीन बात है। क्योंकि जब वह रसोई पकानेका काम नहीं कर रहा है उस पुरुषमें कर्म फिर नहीं रहा। वह पुरुष फिर कर्मका आश्रयभूत न रहा। तब वहां पाचक है, पाचक है ऐसा बोध होना चाहिये, क्योंकि जब कर्म न रहा तो कर्मत्व कर्म सामान्य फिर न कर्मके आश्रय रहा और न कर्मके आश्रयके आश्रित रहा और अनाश्रित कर्म कैसे पुरुषमें पाचक है इस प्रकारके ज्ञानका कारण बन सकता है। तो इस तरह कर्म सामान्य परम्परासे भी कर्मके आश्रयके आश्रित सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

अतीत व अनागत कर्म अनुगत प्रत्ययका उदाहरण शंकाकार कहता है कि जब वह रसोई भी नहीं बना रहा है तो पहिले बनाया था आगे बनायेगा तो यों अतीत और अनागत कर्म "पाचक है, पाचक है" इस प्रकार के व्यपदेशमें ज्ञानका कारण बन जायगा। वहां कर्मत्व कारण नहीं वे। तो उत्तरमें पूछते हैं कि वह अतीत और अनागत कर्म क्या सत् होकर 'पाचक है" इस प्रकार का व्यपदेश ज्ञान का कारण बनता है या असत् होकर "पाचक है" इस ज्ञानका कारण बनता है या असत् होकर वह अतीत अनागत कर्म पाचक है, पाचक है" इस प्रकार व्यपदेश और ज्ञानके कारण तो बन नहीं सकते क्योंकि जो अतीत हो गया है वह तो अतीत ही हो चुका। अब जो अनागत है जो भविष्य में होगा पर इस समय तो उसने अपना स्वरूप पाया ही नहीं है। जो कर्म भविष्यमें होगा उस कर्मने अपने स्वरूपको अभी कहाँ पाया है अन्यथा वह वर्तमान कर्म कहलायेगा। तो अतीत तो च्युत हो गया और अनागत अभी आया नहीं है तो इस तरह असत कर्ममें भी कुछ कारण नहीं बन सकता। यों कर्मत्व भी अनुगत प्रत्ययका कारण नहीं बन सकता।

व्यक्ति और शक्ति अनुगत प्रत्ययका अकारण—यदि कहो कि अनुगत प्रत्ययमें व्यक्ति निमित्त है सो व्यक्ति भी कारण नहीं बन सकता क्योंकि ऐसा तो शंकाकारने भी नहीं माना और फिर व्यक्ति तो अनेक हैं। तब सामान्य भी अनेक बन बैठेंगे, इससे व्यक्ति भी अनुगत प्रत्ययका कारण नहीं बन सकता। यदि कहो कि शक्ति अनुगत प्रत्ययका कारण है तो यह भी अयुक्त है, क्योंकि शक्ति पाचकसे भिन्न है अथवा अभिन्न? इसका ही समाधान दो? यदि कहो कि शक्ति पाचकसे अभिन्न हैं तो वे दोनों एक ही कुछ हो गए। या पाचक रहा या शक्ति रही। यदि कहो कि पाचकसे शक्ति भिन्न है तो शक्तिने ही अनुगत प्रत्यय कर दिया तो शक्ति ही अनुगत प्रत्ययरूप कार्यका उपयोगी बने, फिर तो कर्तामें अकर्तृत्व आ जायगा अर्थात् पाचक पुरुषकी जो शक्ति है वह शक्ति ही अनुगत प्रत्ययका कारण बने तो शक्ति ही कार्यमें उपयोगी हो गयी। अब और क्या चाहिए? उससे पाचक हैं, यह सिद्ध तो हो गया। अब पुरुषको कुछ करनेकी क्या जरूरत है? यदि कहो कि परम्परासे उप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

योगी तो होता है कर्ता शक्तिमें लगता है, शक्ति कार्यमें लगती है तो यह बतलावो कि यह स्व शक्तिमें स्वरूपसे लगा या अन्य शक्तिसे स्वरूपसे लगा ? अन्य शक्तिसे लगा कहोगे तो अनवस्था दोष होगा। फिर उस शक्तिके उपयोगमें अन्य शक्ति मानो। यदि स्वरूपसे ही उपयोगमें आया। शक्तिमें लगा तो सीधा उस पुरुषको ही स्वरूपसे कार्यमें उपयोगी क्यों नहीं मान लिया जाता। फिर परम्पराकी बात कहनेका परिश्रम क्यों करते हो ? इस तरह यह सिद्ध नहीं हो सकता कि जहाँ सामान्य है वहां अनुगत ज्ञानकी कल्पना होती है।

द्रव्योत्पत्तिकालमें ही व्यक्त हुए पाचकत्वसे अनुगतप्रत्यय माननेमें दोष- शंकाकार इस पक्षका ग्रहण कर रहा था कि जहां सामान्य होता है वहां ही अनुगत ज्ञानकी कल्पना होती है। तो इस सम्बन्धमें यह पूछा गया था कि जैसे पाचक आदिकमें सामान्य न होनेपर भी अनुगत ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है तो सामान्य तो वहां निमित्त रहा नहीं। तो अन्य कौनसा निमित्त है जिसके कारण पाचक आदिक के अनुगत प्रत्ययकी प्रवृत्ति होती है ? क्या वह निमित्तान्तर कर्म है या कर्म सामान्य है या शक्ति है ? चार विकल्पोंके सम्बन्धमें अभी बता चुके हैं कि ये चार ही निमित्त उस अनुगत प्रत्ययके कारण नहीं बन सकते और इन चारोंके अतिरिक्त अन्य कोई कल्पनामें भी नहीं आते। यदि कहो कि पाचकत्व तो निमित्त है अर्थात् जितने पाचक हैं, रसोइया हैं उन सब व्यक्तियोंमें 'यह पाचक है, यह पाचक है" इस प्रकारका जो अनुगत ज्ञान होता है उसमें कारण पाचकत्व है। तो उत्तरमें पूछते हैं कि पाचक तो कोई मनुष्य ही होते हैं ना ? जैसे देवदत्त नामक व्यक्ति पाचक है तो यह बतलावो कि उसमें जो पाचकत्व आया है वह देवदत्तकी उत्पत्तिके समयमें ही व्यक्त हो गया अथवा उस समय अव्यक्त था। यहाँ सामान्यकी चर्चा चल रही है कि वस्तुमें सामान्य नामका धर्म होता है। कहीं कोई अलगसे सामान्य पदार्थ नहीं कोई अलगसे सामान्य पदार्थ नहीं होता क्योंकि अन्य कोई पदार्थ अनुगत प्रत्ययका निमित्त नहीं है। उसके सिलसिलेमें यहां यह प्रसंग चल रहा है कि पाचकमें पाचकत्व कहांसे आया ? क्या जब देवदत्त व्यक्ति उत्पन्न हुआ उस ही समय पाचकपना आ गया या नहीं ? यदि उस समय आ गया तो उसका अर्थ यह हुआ कि देवदत्त जन्मसे ही तो रसोई बनाता न था। बड़ी उम्रमें कुछ सीखनेके बाद वह पाचक बना। अब पाचकत्व मान लिया तुमने देवदत्तके जन्मसमयसे ही तो भाव यह हुआ कि जबसे उसने रसोई बनाना शुरू किया उससे भी पहिले उसमें पाचकत्व था तो क्यों नहीं जन्मसे उसमें 'पाचक है" यह ज्ञान बना और क्यों न पाचक यह उसका नाम पड़ा ? कोई भी व्यक्ति है, उसका कुछ पता तो नहीं कि जन्मसे ही समझ जाय कोई कि यह पाचक बनेगा, मुनीम बनेगा, यह पुजारी बनेगा ? जब बड़ी उम्र हुई तब तो वह कुछ बना और तुम मान रहे हो पाचकत्व आदिक, जन्मसे ही है तो जब वह पाचन क्रिया करने लगा रसोई बनाने लगा उससे पहिले क्यों नहीं उसे पाचक कहा जा रहा था। और

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्यों न उसके सम्बन्धमें यह पाचक है ऐसा ज्ञान हो रहा था। होता तो नही पर हो जाना चाहिए। यह दोष है यदि द्रव्यकी उत्पत्तिके समयमें पाचकत्व व्यक्ति मानते हो तो।

द्रव्यकी उत्पत्तिकालमें अव्यक्त पाचकत्वसे अनुगतप्रत्ययकी असिद्धि— यदि कहो कि देवदत्तकी उत्पत्तिके कालमें पाचकत्व अव्यक्त था यह तो पीछे भी पाचकत्व ज्ञान न होना चाहिये, न पाचक यह संज्ञा देना चाहिए। कैसे सो सुनो— वह पाचकत्व पहले देवदत्तका स्वभाव था या नहीं, याने जिस पाचकत्वको तुम देवदत्तका स्वभाव था या नहीं ? यदि कहो कि पहिलेसे ही स्वभाव है उस पुरुषमें तो सत्त्वकी तरह पहिले ही पाचकत्वकी व्यक्ति हो जाना चाहिए। अर्थात् जैसे देवदत्त रसोइयां बननेसे पहिले भी सत् था, पीछे था। बड़ा हुआ तो जैसे उसकी सत्ता पहिले थी ऐसे ही पाचकत्वकी व्यक्ति भी पहिले हो जाना चाहिए। और उसका पहिलेसे ही यह पाचक है, पाचक है इस प्रकारका नाम आ जाना चाहिए और यदि कहो कि देवदत्तमें पाचकत्वका स्वभाव पहिले नहो है तो फिर पीछे भी यह पाचकत्व स्वभाव देवदत्तमे नहीं आ सकता, क्योंकि द्रव्यमें समवाय रूपसे रहने वाला धर्म तो एकरूप हुआ करता है। यदि स्वभाव पहिले था तो पीछे भी रहेगा। यह पहिले न था तो पीछे भी नहीं आ सकता, क्योंकि किसी भी वस्तुमें स्वभाव समवाय रूपसे रहने वाला धर्म पहिले न था। अब हो ऐसा नहीं हुआ करता। स्वभाव तो सदा एकरूप होता है। तब उस देवदत्तमें पाचकत्वकी व्यक्ति पीछे भी न होना चाहिए। अथवा मान लो कि पीछे पाचकत्वकी व्यक्ति हो गयी। पाचक मायने रसोइया। उसके धर्मको कहते हैं पाचकत्व। तो रसोइयामें जो उसका धर्म अनुगत प्रत्ययका कारणभूत है वह कबसे आया यह पूछा जा रहा है ? यहां यह कह रहे हो कि उसमें पाचकत्वकी व्यक्ति देवदत्तके जन्मकालसे नहीं है किन्तु बादमें होती है।

पाचकत्वकी पश्चाद् व्यक्तिकी अशक्यता— थोडी देरको मानलो कि देवदत्तमें पाचकत्व व्यक्ति बादमें ही हुई, किन्तु वह व्यक्ति क्या द्रव्यके द्वारा की व कही जाती है अथवा क्रियाके द्वारा की व कही जाती है अथवा क्रियाके द्वारा की व कही जाती है अथवा द्रव्य और क्रिया दोनोंके द्वारा की व कही जाती है। यहां यह पूछा जा रहा है कि देवदत्त नामके व्यक्तिमें पाचकत्व धर्म पीछे व्यक्त हुआ तो उसको व्यक्त करने वाला कौन है ? किसके द्वारा वह व्यक्त हुआ और बताया गया ? क्या देवदत्त पुरुषके ही द्वारा वह व्यक्त हुआ और कहा गया था उसकी जो रसोई बनाने की क्रिया है उसके द्वारा पाचकत्व व्यक्त हुआ या व्यक्ति और क्रिया दोनोंको द्वारा व्यक्त हुआ और कहा गया। इन तीन विकल्पोंमेंसे पहिला विकल्प तो ठीक कह नहीं सकते कि देवदत्त नामक व्यक्तिके द्वारा वह व्यक्ति याने पाचकत्वका प्रगटन किया गया और कहा गया, क्योंकि देवदत्त तो उससे पहिले भी था। यदि देवदत्तके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

द्वारा पाचकत्व व्यक्त हुआ तो देवदत्त पहिले भी था क्यों नही पहिले हो गया ? यदि कहो कि क्रियाके द्वारा पाचकत्व व्यक्त हुआ और कहा गया याने जो वह रसोई बनानेकी क्रिया कर रहा है उस पाचन क्रियाके द्वारा पाचकत्व कहा गया तो यह बात यों ठीक नही है कि क्रिया पाचकत्व सामान्यमें कुछ नही कर सकती, याने क्रिया का प्रयोग असर क्या सामान्यमें हुआ करता है ? क्रियाके द्वारा पाचकत्वका व्यक्त होना तो तब माना जाय जब क्रियाका कुछ दखल सामान्यमें कुछ कर सकती नही है, तो क्रियाके द्वारा भी वाचकत्वकी व्यक्ति सिद्ध नहीं होती । और जब इन दोनों विकल्पोंमें पाचकत्वकी व्यक्ति सिद्ध न हो सकी तो दोनोंसे मिलकर भी व्यक्ति हो जाय यह भी ठीक नहीं बैठता, क्योंकि जब द्रव्यमें और क्रियामें जुदे-जुदेमें शक्ति नहीं है तो ये दोनों मिलकर भी सामर्थ्य नही पा सकते हैं जिससे कि देवदत्तमें पाचकत्वकी व्यक्ति हो जाय इस कारणसे जो अनुगत प्रत्यय हुआ करता है, जैसे बहुत सी गायें हैं, उन गायोंमें गाय है, गाय है ऐसा जो एक सामान्य बोध हुआ करता है, सबमें पाया जाने वाला तत्त्व जो जाना जाता है वह एक सामान्य के आलम्बनसे नही जाना जाता कि सामान्य नामका कोई एक पदार्थ है उनके सहारेसे अनुगत प्रत्यय होता है ।

सामान्यविशेषात्मक वस्तुमें सदृश परिणाम लक्षण धर्मके अवगमसे अनुगतप्रत्ययकी सिद्धि—वस्तु स्वयं सामान्यविशेषात्मक होता है. वस्तु है तो है वे ही कारण उसमें सामान्य विशेषात्मक है, क्योंकि केवल सामान्य हो तो वस्तु नहीं रह सकता, केवल विशेष हो तो नहीं रह सकता । जैसे कि पदार्थोंमें दो प्रकारके धर्म पाये जाते हैं – साधारण धर्म और असाधारण धर्म । साधारण धर्म तो हुए अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व । तो इन छह साधारण धर्मोंसे वस्तुका सामान्यरूप समझमें आयगा कि पदार्थ हो तो उसमें ये बातें हुआ करती हैं । वे हैं अपने स्वरूपसे नही हैं । निरन्तर परिणमते रहते हैं । अपने ही स्वरूपमें परिणमते हैं, परके स्वरूपमें नहीं परिणमते वे अपने ही क्षेत्रमें रहते हैं और वे किसी न किसी ज्ञानमें आ ये लेकिन वस्तुमें केवल साधारण ही धर्म माना जाय । असाधारण धर्म न स्वीकार किया जाय तो साधारण धर्मका टिकाव क्या ? जब वस्तुमें कोई बात ही न बनी । किसी तरहकी व्यक्ति भी न बन सकी तो साधारण धर्मका अर्थ ही क्या रहा ? और यदि उसका असाधारण धर्म और भी मान लेते हैं, जैसे कि चेतन नामक पदार्थमें चेतन असाधारण धर्म है, पुद्गल नामक पदार्थमें रूप, रस, गंध, स्पर्श रूप मूर्तिकताका धर्म है आदिक रूपसे जब असाधारण धर्म भी उसमें है तब वस्तुका ·स्व और परिणमन सही बन गया । तो असाधारण धर्मके बिना साधारण धर्मका अर्थ नहीं, इसी प्रकार साधारण धर्मके बिना असाधारण धर्मका भी अर्थ नही । जैसे जीवमें चेतन तो मान लिया पर अस्तित्व वस्तुत्व आदिक साधारण धर्म न माने तो फिर चेतनकी प्रतिष्ठा ही क्या । जब उसमें है पता नहीं । अपने स्वरूपसे होनेकी बात नहीं, परके स्वरूपसे न होनेका धर्म नहीं, परिणमनका स्वभाव नहीं ।

तब फिर उसका अर्थ ही क्या रहा ? तो जैसे पदार्थमें साधारण धर्म और असाधारण धर्म दोनोंकी ही व्यवस्था बनती है इसी तरह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थमें साधारण और असाधारण धर्म रूपता है, तब ही वह पदार्थ है। साधारण धर्मका नाम है सामान्य असाधारण धर्मका नाम है विशेष। अब प्रयोजनवश प्रसंगवश असाधारण धर्मकी व्याख्यायें बढ़ती जायेंगी। तो प्रयोजन यह है कि वस्तु स्वतः स्वभावतः सामान्य विशेषात्मक है, और जो सामान्यरूपता है अर्थात् सदृश परिणाम लक्षणरूपता है उससे तो जातिकी व्यवस्था बनायी गई है। पर सामान्य नामक पदार्थ कोई अलग हो, नित्य एक सर्वव्यापी हो उससे फिर जाति और अनुगत प्रत्यय की व्यवस्था बने यह सम्भव नही है।

गायोंमें ही गोत्व है इस पक्षकी असिद्धि—अब और भी बताओ। जो यह कहा जा रहा कि गायोंमें गोत्व है। मनुष्योंमें मनुष्यत्व है। यों जो सामान्यकी रचना बतायी जाती है तो उसका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि गायोंमें ही गोत्व रहता है ? अथवा क्या यह अर्थ है कि गायोंमें गोत्व ही रहता है ? अथवा यह अर्थ है कि गायोंमें गोत्व रहता ही है ? किस जगह एवकार लगा ? किसे जोर दिया गया सो तो बताओ ? यदि कहो कि गायोंमें ही गोत्व है यह अभिप्राय है गोत्व बतानेका तो गायोंमें ही गोत्व है ऐसा कहनेपर तुमने कहा ही तो है। अब गोत्व नामक पदार्थ तो जुदा है और गाय नामका द्रव्य जुदा है। सो जब ये दोनों जुदे-जुदे पदार्थ है तो यह गोत्व गायमें ही रहे अन्यमें न रहे, यह व्यवस्था कैसे बन सकती है ? जब गोत्वका अन्वय गायमें नही है तो अर्थात् गाय व्यक्तिका धर्म नही है गोत्व तो जैसे गोत्व गायमें रह रहा है वैसे गोत्व घोड़ा आदिकमें भी रह जायें, क्योंकि गोत्व नामका पदार्थ गायसे जुदा मान लिया है शंकाकारने। तो जब ये पदार्थ ही दो अलग-अलग है। गाय व्यक्तियाँ और गोत्व सामान्य है। अब गोत्व सामान्यका गायमें अन्वय तो माना नही। एक सम्बन्ध माना है। अन्वयके मायने यह है कि गायका ही धर्म है। गायका ही स्वरूप है। गोत्व, ऐसा तो नही माना। तो जब ये दो पदार्थ जुदे माने हैं और सम्बन्धसे गायमें गोत्वकी व्यवस्था की है तब तो जैसे गोत्वका सम्बन्ध घोड़ा भैंसा आदिकमें भी हो जाना चाहिए। क्यों नही होता ? इससे सिद्ध है कि गोत्व है इसका अर्थ यह युक्त नही कि गायोंमें ही गोत्व है।

गायोंमें गोत्व ही है, इस द्वितीय पक्षकी असिद्धि—अब द्वितीय पक्ष लोगे कि गोत्व है, इसका अर्थ यह मान लोगे कि गोत्व ही है, तो इसका भाव क्या हुआ कि गायमें सिर्फ गोत्व है, सत्त्व नहीं, द्रव्य नही, तो इन सारे धर्मोंका निषेध बन गया, तो भला बतलावो जिसमें सत्त्व न हो, द्रव्यत्व न हो, वह कुछ व्यक्ति भी हो सकता क्या ? उसकी सत्ता ही नही है। जब व्यक्तिका ही अभाव हो गया तब फिर और सिद्ध ही क्या कर सकते हो ? व्यक्ति तो सत्त्वरूप भी है, द्रव्यत्वरूप भी है। अब

http://www.jainkosh.org

गायोंमें गोत्व ही है ऐसा कहकर यह जताना चाह रहे कि गोत्वके सिवाय अन्य कुछ नही है। तो जब सत्त्व न रहा द्रव्य न रहा तो गाय भी न रही, फिर गोत्व कहाँ जाकर टिकेगा ? इस कारण यह भी पक्ष नही कह सकते कि गायोंमें गोत्व ही है। इसका अर्थ होगा कि गायमें गोत्व ही है अन्य कुछ नही। सो व्यक्तिका ही अभाव हो जायगा फिर सामान्य किसके आश्रय। सामान्यके तो आश्रयमात्र वृत्तित्व माना ही गया है। यों यह द्वितीय पक्ष भी सिद्ध नही होता कि गायोंमें गोत्व ही है।

गायोंमें गोत्व रहता ही है, सामान्य पदार्थवादीके इस तृतीय पक्षका निराकरण —सामान्य पदार्थ है, ऐसा मानने वाले यों माना करते हैं कि जैसे गायमें गोत्व है, मनुष्यमें मनुष्यत्व है तो यह सामान्य पदार्थ है। तो उनसे यह पूछा गया कि गायमें गोत्व है, इसका अभिप्राय क्या आप ले रहे ? क्या यह कि गायमें ही गोत्व है या यह कि गायमें गोत्व ही है या यह कि गायमें गोत्व रहता ही है। एवकारका प्रयोग कहाँ कर रहे हो ? इन तीन बातोंमेंसे दो बातोंका तो निराकरण कर दिया। अब तीसरी बात पूछ रहे हैं कि क्या यह मतलब है कि गायोंमें गोत्व है ही ? यदि यह मतलब है तो इसका अर्थ है कि गायमें तो गोत्व है ही और अन्य किसीमें भी गोत्व रहता है। जिस क्रियामें एकाकार लगता है उसका ऐसा अर्थ होता है कि उसके तो है ही, पर औरमें भी रह सकता है। तो इसका भाव यह निकला कि गोत्व जैसे गौ व्यक्तियोंमें है वैसे ही अश्व महिष आदिकमें भी होना चाहिये। तब फिर घोड़े, भैंसों को निरखकर गौ गौ इस प्रकारका ज्ञान होना चाहिए क्योंकि अब गोत्वकी वृत्ति गायमें भी है और औरोंमें भी हो गयी। इससे सिद्ध है कि सामान्य व्यक्ति पदार्थसे कुछ अलग नही है। जो चीज है उस ही चीजमें सदृश परिणाम को देखकर हम सामान्य समझते हैं और विलक्षण परिणामको देखकर हम विशेष समझते हैं।

अनुगत व्यावृत्त प्रत्ययका आधार सदृश व विसदृश परिणामका अवगम व्यक्तात्मकसे भिन्न और प्रतिव्यक्तिमें रहने वाले सदृश परिणामसे भिन्न कुछ और जो कि व्यक्तियोंसे अलग हो, अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता हो ऐसा सामान्य नामका पदार्थ कोई नही है। तब तथ्य क्या है कि पदार्थ हैं जो कि छह साधारण धर्मोंसे युक्त और अपने-अपने स्वभावरूप असाधारण धर्म से युक्त अनन्त पदार्थ हैं। सो वे भिन्न-भिन्न प्रतिव्यक्तिमें सदृश परिणाम वाले सामान्य रहते ही हैं। जैसे बहुत सी गौ व्यक्तियाँ हैं तो उन गायोंमें जैसे गलेमें सासूना लटकती है, यदि सबमें लटकती है तो वह साधारण धर्म हो गया सदृश परिणमन देखकर हम उसमें गोत्व सामान्य कहते हैं ऐसा नही है, जैसे जैन सिद्धान्तमें धर्म अधर्म एक माने गए हैं नित्य सर्व व्यापक हैं, इस तरहसे सामान्य पदार्थ कोई सर्वव्यापक हो ऐसा नही है। धर्मादिक द्रव्य सदा रहते हैं पर वे भी परिणामी हैं, क्योंकि पदार्थका स्वरूप ही है उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त होना। तो जिस तरह कोई व्यक्ति जो दिख रहा है, प्राप्त किया जा रहा है वह अन्य व्यक्तियों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से जुदा हैं यह कैसे हम जानते हैं ? विसदृश परिणामके देखनेसे जानते हैं । इसी तरह जब हम सदृश परिणाम देखते हैं दो व्यक्तियोंमें तो वहां हम यह कह सकते हैं कि यह इसके समान है। तो जो बात विसदृशताके जाननेमें कही जाती है वही बात सदृशता समझनेमें भी कही जा सकती है । अर्थात् दो पदार्थोंमें विसदृश धर्म देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह इससे विलक्षण है । इसी प्रकार सदृश परिणाम देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह इसके समान है । तो ऐसा समानपना जाननेके लिए कोई सामान्यपना अलगसे नहीं मानना पड़ता । तो भाव क्या हुआ कि जो सामान्य है वह उसी व्यक्तिमें है । उसी व्यक्तिमें सामान्य है, उसीमें विशेष है ।

सामान्यकी वस्तुगतताके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर- अब शंकाकार कहता है कि जब सामान्यको व्यक्तिस्वरूप मान लिया । सामान्य कोई अलग है और व्यापक है ऐसा नहीं मानते । और उस ही व्यक्तिमें उस ही चीजमें सामान्य धर्म मान रहे तो इसके मायने है कि सामान्य हो गया व्यक्तिस्वरूप । तो व्यक्तिस्वरूप होनेसे व्यक्तिसे सामान्य जब अभिन्न हो गया तो फिर सामान्य क्या रहा ? वह तो विशेष बन गया । व्यक्ति ही बन गया । मनुष्य तो अलग तब कहलाता जब उस व्यक्तिसे अलग कोई चीज होती । जो व्यक्तिरूप ही है सो व्यक्ति कहलाया । सामान्य तो अब नहीं रहा । उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे तो रूप शब्दका भी व्याघात किया जा सकता है । क्योंकि जैसे यह घड़ी है इस घड़ीमें सफेद रूप है । और यह काली बन जाय तो कालीरूप हो गयी मगर रूपस्वभाव तो इसमें सदा है तो बतलावो वह रूपस्वभाव वह रूप सामान्य इस घड़ीसे कहीं बाहर रह रहा है क्या ? घड़ीमें ही रह रहा है । तो व्यक्तिमें रहनेके कारण यदि सामान्यको असामान्य कह दोगे, विशेष कह दोगे तो रूप स्वभाव भी तुम सिद्ध न कर सकोगे । यदि कहो कि रूपके बारेमें तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध बात है । दिख रहा है—घड़ीका रूप सामान्य घड़ीमें है, घड़ीका रूप विशेष घड़ीमें हैं, तब उत्तरमें कहते हैं कि यही बात सब पदार्थोंकी है । सभी पदार्थोंमें जो कि सामान्य विशेषात्मक रूपसे जाने गए हैं ऐसा ही प्रत्यक्षमें जच रहा है । सामान्य उस पदार्थसे बाहर नहीं, विशेष उस पदार्थसे बाहर नहीं । पदार्थका ही जो सदृश धर्म है उससे हम विशेष कहा करते हैं ।

एक व्यक्तिको जानते समय भी अवधारणके अनुसार सामान्य विशेष का अवगम— अब शंकाकार यह कह रहा कि सामान्य यदि व्यक्तिमें होता तो जिस किसी एक चीजको देखा तो एक ही व्यक्तिको देखनेके समयमें सामान्य ज्ञात तो नहीं होता । और, तुम मान रहे हो कि प्रत्येक व्यक्तिमें सदृश परिणाम रूप सामान्य सदा रहता है तो कहां रहा सामान्य सदा, शंकाकार यह कह रहा कि एक चीज देखी, उस में जो रूप है, आकार है, जो कुछ है वह ज्ञानमें आया पर एक ही चीजको ज्ञानमें लेनेसे सदृशताका बोध तो नहीं हो सकता । सदृशताका बोध तो जब अनेकको जानें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तब हो सकता है। यह उसके समान है। तो देख लो ना, एक व्यक्तिको देखनेके समयमें सामान्य ज्ञान तो बना नहीं। यह समान है यह उसके समान है। इस तरहका ज्ञान तो बना नहीं अब तुम्हारे सामान्यका अभाव हो गया ना ? कहाँ रहा पदार्थमें सामान्य। अगर पदार्थमें सामान्य होता तो एक पदार्थको देखनेपर भी सामान्यका ज्ञान होना चाहिए पर कोई एकको ही देखकर क्या सामान्यका ज्ञान करता है। जब अनेक गायोंको देखें या दृष्टिमें लें तब तो कह सकेंगे कि ये सब गायें समान हैं। तो जब एक व्यक्तिको देखनेपर सामान्यका प्रत्यय नहीं हो रहा तो इसके मायने यह है कि सामान्यका यह लक्षण नहीं कि जो सदृश परिणाम हो सो सामान्य है, किन्तु सामान्य नामका एक पदार्थ ही है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तुम्हारी ठीक नहीं हैं। किसी एक व्यक्तिको देखने से सत्त्व द्रवयत्व इनका तो प्रत्यय हो रहा क्योंकि सत्त्वकी दृष्टिसे सब पदार्थ समान है। सबमें सत्व है जिस एकको देखा उसमें ऐसे सत्वका ज्ञान हुआ। प्रथम ही प्रथम एक गायको देखते हुए भी सामान्य सत्त्व द्रव्यत्व आदिकके द्वारा तो सादृश्यको कहा ही है। यह पदार्थ अन्य पदार्थके समान है क्योंकि सत्त्व होनेसे। अर्थात् गायें बहुत नहीं देखी, एक ही गाय देखी तो यह बोध तो न कर पायेंगे कि गाय सामान्य हैं, क्योंकि एक गायपर दृष्टि दे रहे हैं। लेकिन सत्त्व सामान्य तो जाना जायगा क्योंकि सत्त्व जैसा गायमें पाया जा रहा है वैसा ही सभी पदार्थोंमें पाया जा रहा है। वहां सामने सभी पदार्थ हैं। नहीं हैं गायें बहुत मगर अन्य वस्तु तो हैं घोड़ा भी है, भीट भी है, घर भी है और कुछ होंगे तो वे सब सत्त्वकी दृष्टिसे तो समान हैं। तो सत्त्व द्रव्यत्व आदिकका प्रत्यय पाये जानेसे सामान्यका अभाव नहीं कह सकते।

सामान्य तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि जब दूसरे व्यक्तिका अनुभव भी नहीं किया जा रहा। जिस पुरुषने किसी व्यक्तान्तरका अनुभव नहीं किया वह एक ही पदार्थके देखनेपर उसके समान ज्ञानकी क्यों उत्पत्ति नहीं होती ? तुमने यह कहा है कि प्रत्येक पदार्थमें सामान्य धर्म है तो एक पदार्थको देखनेपर समानका बोध क्यों नहीं होता ? क्यों अनेकको देखनेके बाद ही समानका बोध होता है कि यह उसके समान है। इससे सिद्ध है कि सामान्य पदार्थमें नहीं भरा है। वह अलग ही पदार्थ है। सो शंकाकार पूछ रहा है कि जिस पुरुषने अन्य व्यक्तिका अनुभव नहीं किया है, उस पुरुषके एक व्यक्तिके देखनेपर समान प्रत्ययका बोध क्यों नहीं होता ? क्योंकि सदृश परिणाम तो तुम उसमें सदा ही मानते हो ? तो उत्तरमें कहते हैं कि तुम्हारे यहां भी तो एक व्यक्तिके देखनेपर यह उससे भिन्न है यह भी तो ज्ञात नहीं होता। भिन्नताका भी तो ज्ञान अनेक व्यक्तियोंके देखनेपर होगा। तो तुम्हारे यहां भी विशेष प्रत्ययकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती, क्योंकि तुम तो विशेष वादी वैसादृश्यको सदा मानते हो। शंकाकार कहता है कि भाई विलक्षणताका ज्ञान परापेक्ष है। दूसरा कोई पदार्थ विलक्षण भी ज्ञानमें आ रहा हो तब वह यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कह सकता है कि यह उससे भिन्न है। तो एक ही पदार्थमें विशेषका ज्ञान क्यों नहीं होता ? यह आपत्ति नहीं आती। उत्तरमें कहते हैं कि यही बात सामान्यमें भी घटा लो। समानताका भी ज्ञान परापेक्ष है क्योंकि जब अनेक व्यक्ति जाननेमें आ रहे हों तो ही यह कहा जा सकता कि यह उसके समान है। परकी अपेक्षाके बिना कभी भी किसी भी जगह समान प्रत्ययका बोध नहीं होता जैसे कोई कहे कि ये दो चीजें हैं— तो दो का कहना परापेक्षसे होगा एक यह है या कोई कहे कि वह मंदिर उस मंदिरसे ज्यादह दूर है तो यहां दूसरेको दृष्टिमें किए बिना नहीं कहा सकता। इसी तरह समानताका भी प्रत्यय एकको देखकर न होगा। अनेकको देखकर होगा कि यह इसके समान है। इसी तरह विसदृशताका भी बोध एकको देखकर न होगा। अनेकको समझकर होगा। यह उससे विलक्षण है।

परापेक्ष और परानपेक्ष धर्मकी सिद्धिसे सामान्य विशेषकी समस्याओंका समाधान—देखिए वस्तुके धर्म दो प्रकारके होते हैं—पदार्थमें धर्म कोई तो परापेक्ष है अर्थात् कोई परकी अपेक्षा रखता है और कोई परसे निरपेक्ष रहता है। जैसे मोटाई दुर्बलता ये परापेक्ष हैं। दूसरा आदमी अगर पतला खड़ा है तो कह सकेंगे कि यह आदमी मोटा है। पर जैसे काले, पीले, नीले हरे लाल, सफेद ये वर्ण कहना परापेक्ष है। मायने परकी अपेक्षा नहीं रखते। हाँ उनमें यदि यह कहा जाय कि वह इससे ज्यादा हरा है तो परापेक्ष हो जायगा। याने पदार्थमें जो धर्म हैं वे दो हैं—एक परकी अपेक्षा न रखने वाला और एक परकी अपेक्षा न रखने वाला। जैसे पदार्थमें रूप है तो यह परकी अपेक्षा नहीं रखता। पदार्थ है उसमें रूप है, पर यह कहना कि यह पदार्थ लम्बा है तो यह परापेक्ष हो गया। कोई छोटी चीज दृष्टि में रखकर ही यों बोला जायगी। यह लम्बा है, यह उससे छोटा है। तो कुछ धर्म होते हैं परापेक्ष और कुछ धर्म होते हैं पर निरपेक्ष। इससे जैसे विसदृशता निरपेक्ष है यह इससे भिन्न है ऐसा जो ज्ञान है वह दूसरेकी अपेक्षा रखकर हुआ। निरपेक्ष नहीं रहा। तो जैसे विशेष ज्ञान परापेक्ष होकर अपनी व्यावृत्तिज्ञानकी अर्थक्रियाको करता है विसदृशताके ज्ञानके लिए ही यहां क्रिया कही हैं कि वह भिन्नता जान ले। तो जैसे विशेष भिन्नताका ज्ञानरूप अर्थक्रियाको करने वाला है परापेक्ष होकर इसी प्रकार सामान्य ज्ञान भी परापेक्ष होकर यह समान है इस प्रकारके ज्ञानरूप अर्थ क्रियाको करता है। दोनोंमें बात समान आ गयी। सामान्य और विशेष दोनोंका ज्ञान परापेक्ष है, ज्ञान होते ही उसके ज्ञानरूप अर्थक्रिया होने लगती है।

ज्ञप्तिक्रियासे व्यतिरिक्त अन्य अर्थक्रियाकी सामान्यविशेषात्मक वस्तुसे संभवता—ज्ञानरूप अर्थक्रियासे जुदा और कोई वस्तुमें अर्थक्रिया होगी, जैसे बोझा ढोना, दूध दुहना आदिक जो काम निकलेंगे तो उनको न केवल सामान्य करनेमें समर्थ है और न केवल विशेष करनेमें समर्थ है किन्तु सामान्यविशेषात्मक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो वस्तु है, गाय है उसका ही उन क्रियावोंमें उपयोग है। क्या कहा जा रहा है कि जैसे गायमें सामान्य धर्म है, सब गाय गाय हैं तो सामान्य धर्म परापेक्ष होकर ज्ञात होता है। जब अन्य गायोंका ज्ञान हुआ इसी तरह यह गाय भैंससे भिन्न है ऐसी विशेषताका भी बोध परापेक्ष है। तो परापेक्ष सामान्य ज्ञानने अनुगत ज्ञान करा दिया। यह काम कर दिया। विशेष ज्ञानसे व्यावृत्त ज्ञान कर दिया पर बोझा ढोना, दूध दुहना ये काम तो न सामान्यसे निकलते हैं न विशेषसे निकलते हैं। किन्तु सामान्यविशेषात्मक जो वे गाय बैलादिक हैं उनसे काम निकलेगा बोझा ढोनेका काम बैल कर देते हैं। दूधकी प्राप्ति गायसे होती है। तो इस तरह अर्थक्रियाकारी होनेसे वस्तुमें सामान्य आकार और विशेष आकार दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं। तब इससे यह सिद्ध हुआ कि सामान्य तत्त्व और विशेष तत्त्व दोनों ही वास्तविक हैं, वस्तुमें रहने वाले हैं, न कि सामान्य पदार्थ कोई पदार्थसे अलग हो। पदार्थ ही सामान्य विशेषात्मक हुआ करता है।

मुख्य और उपचरित एकत्व प्रत्ययका विवरण– शंकाकार कहता है कि सादृश्य सामान्य माननेपर यह वह ही गौ है ऐसा ज्ञान चितकबरी गायको देखकर सफेद गाय देखने समय कैसे घटित हो सकता है। शंकाकारका भाव है कि चितकबरी गाय और सफेद गायमें तो भेद है फिर चितकबरी गायको देखकर फिर सफेद गायको जब देख रहा है कोई तो उस समय यह उसके समान है अथवा यह वही गौ है। गाय ही तो है ऐसा ज्ञान कैसे हो जाता? उत्तर देते हैं कि एकत्वके उपचारसे यह ज्ञान हो जायगा। एकत्व दो प्रकारका होता है – एक मुख्य और दूसरा उपचरित। मुख्य एकत्व तो आत्मा आदिक द्रव्योंमें है। उस ही एक पदार्थमें एकत्वका ज्ञान करना तो मुख्य एकत्वका प्रत्यय है और धर्म वाले व्यक्तियोंमें एकत्वका ज्ञान करना यह उपचरित एकत्व प्रत्यय है। सदृश दो चीजोंमें यों कहना कि यह वही है तो ऐसा कहनेमें प्रयोजन अर्थक्रिया आदिक सब एक हैं इस कारण एक कहा जाता है तो सादृश्यमें एकत्वका व्यवहार करना तो उपचरित एकत्वका व्यवहार है और एक ही वस्तुमें पहिले देखकर बादमें कहना कि यह वही है यह मुख्य एकत्व है। तो यों सादृश्य सामान्यमें एकत्वका प्रत्यय उपचारसे होता है। और एकत्वका भी भाव यहां पर समानता है। सो सदृश परिणामरूप धर्मसे ही समानतासे अनुवृत्ताकारका प्रत्यय होता है। उसके लिए नित्य सर्वव्यापी स्वभाव वाला सामान्य नहीं माना जा सकता। ऐसे सामान्यके सम्बन्धमें अभी अनेक प्रकारके दोष बताये गये थे और फिर शंकाकारके बताये हुए सामान्य पदार्थके माननेपर भी जो सदृश पदार्थोंमें यह ज्ञान होता है कि यह उसके समान है सो यह ज्ञान किस प्रकारसे होगा?

सामान्य पदार्थके सम्बन्धमें शवल और धवल गायमें समानताकी

Version 1

अशक्यता—शंकाकार कहता है कि उन चितकबरी और सफेद गायोंमें एक सामान्य पदार्थका सम्बन्ध होनेसे वह उसके समान है यह बोध हो जायगा। शंकाकारने पहिले शंका की थी कि सादृश्य सामान्य माननेपर शवल और धवल गायोंमें यह वही गाय है ऐसा ज्ञान कैसे घटित होगा? तो उसके प्रत्युत्तरमें यह पूछा गया है कि शवल और धवल गायोंमें यह उसके समान है यह प्रत्यय सामान्य पदार्थवादियों के यहाँ कैसे हो जायगा? तो सामान्य पदार्थवादी शंकाकार यह कहता कि शवल और धवल गायोंमें एक सामान्य पदार्थका सम्बन्ध है, इस कारणसे यह प्रत्यय हो जायगा। तो उसके उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है। यदि सामान्य पदार्थके सम्बन्धसे शवल और धवल गायोंमें कोई प्रत्यय हो सकता है तो यह हो सकेगा कि ये दोनों सामान्य वाले हैं। यह इसके समान है इस ज्ञानकी बात न आ सकेगी। सामान्य पदार्थ इन दोनोंमें लगा हुआ है इस कारणसे यह तो बोध उससे बनाया जा सकेगा कि ये दोनों सामान्य वाले हैं पर यह उसके समान है इस ज्ञानका क्या कारण बनेगा? यदि कहो कि शवल और धवल गायोंमें अभेदका उपचार करने लगेंगे अथवा सामान्य और सामान्य वाले पदार्थमें अभेदका उपचार करने लगेंगे तब तो यह उसके समान है यह बोध हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि सामान्य और सामान्य वाले पदार्थोंमें अभावका उपचार करने पर तो 'सामान्य है' यह ज्ञान कैसे आ जायगा कि यह उसके समान है, क्योंकि एक सामान्य पदार्थ है और एक सामान्य वाला पदार्थ है। इन दोनोंमें कर दिया अभेद तो अभेद करनेसे एक चीज रह गयी है तो कह दीजिये कि सामान्य है, पर वहां यह उसके समान है यह बोध कैसे हो सकता है? जैसे कि लाठी और पुरुष में इन दोनोंमें उपचार कर देते हैं तो लाठी सहित पुरुषको लाठी कह देते हैं। जैसे कोई केला बेचने वाला पुरुष आवाज लगा रहा है—लेले केला। तो बुलाने वाले लोग, जिन्हें केला लेना है वे कहते हैं कि ऐ केला आवो! केला वाले आवो ऐसा नहीं कहते, क्योंकि उन्होंने केलामें और केला बेचने वालेमें अभेद उपचार किया। जैसे कोई लाठी लेकर ही चलता है और लाठीकी बड़ी तेज आवाज करके चलता है तो जब लाठीकी आवाज आयी तो समझने वाले तो समझ जाते हैं कि अमुक व्यक्ति आया मगर कहते यों हैं कि लो अब आयी लाठी! पुरुषके आनेको लाठीका आना इस शब्दसे कहते हैं। तो यह है अभेद उपचारका रूप तो इसी प्रकारसे सामान्य और सामान्य वाले पदार्थका यदि अभेद उपचार अङ्गीकार करते हो तो सामान्य है यह बोध होगा। यह उसके समान है यह बोध कैसे हो जायगा?

सदृश परिणामोंमें स्वरसतः समानत्वप्रत्यय—शंकाकार कहता है कि यह उसके समान है, इस प्रकारके समानताके ज्ञानके होनेमें समान परिणामोंको कारण मानते हो तो जैसे कि व्यक्तियोंको समान समझनेमें व्यक्तियोंमें यह उसके समान है, ऐसा ज्ञान करनेमें समान परिणामको कारण माना, तो समान परिणामोंमें भी समान ज्ञान होनेका फिर दूसरा समान ज्ञान होनेका फिर दूसरा समान परिणाम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण मानो और इस तरह समान परिणामकी समानता जाननेके लिए दूसरा समान परिणाम कारण माना तो दूसरे समान परिणाममें भी समान ज्ञानका ज्ञान करनेके लिए तीसरा समान परिणाम मानो। तीसरेके लिए चौथा। इस तरह तो अनवस्था दोष हो जायगा। और यदि समान परिणाममें समानता जाननेके लिए दूसरे समान परिणाम माने बिना ही समान प्रत्ययकी उत्पत्ति मान लोगे तब तो बस ठीक बन गया। इन शब्द धवल रूण्ड मुण्ड गायोंमें भी एकदम समानता मान ली जाय, समान परिणामके कारण क्यों समानता मानते ? उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तो विसदृशताके ज्ञानमें भी समान बैठ जायगी। विसदृश परिणाममें भी जो विसदृश ज्ञान हो रहा है वह यदि अन्य विसदृश परिणामोंके कारण हो रहा है तो अनवस्था दोष हो जायगा। याने जैसे गाय भैंस घोड़ा आदिक अनेक व्यक्तियोंमें यह उससे विलक्षण है ऐसी विसदृशताका ज्ञान करनेमें कारण माना गया है विसदृश परिणामों में जो विसदृशता जानी गई उन अनेक व्यक्तियोंमें जो विसदृश धर्म देखे जा रहे हैं—जैसे गायके खुर घोड़ाके खुर ये भिन्न-भिन्न हैं। उनके बहुतसे आकार रूप रंग भिन्न भिन्न हैं तो उन विसदृश धर्मोंमें विसदृशताका जो ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान भी यदि अन्य विसदृश परिणामोंके कारण होता है तो उस दूसरे विसदृश परिणाममें विसदृशताके बोधके लिये तीसरा विसदृश परिणाम मानो। उस तीसरे विसदृश परिणाम में विसदृश ज्ञान करनेके लिए चौथा विसदृश परिणाम मानो तो यों यह भी अनवस्था दोष हो जायगा। यदि कहो कि विसदृश पदार्थोंमें स्वभाव से ही विसदृश परिणामोंमें विसदृशताका ज्ञान हो जाता है —उत्तर देते हैं—तब भी व्यक्तिमें भी विसदृशताका ज्ञान करनेके लिये विसदृश परिणाम मानना अनर्थक हो जायगा। जैसे कि विसदृश परिणामोंकी विसदृशता जाननेके लिये स्वभाव ही कारण बन गया। उन विसदृश परिणामोंका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने आप उनमें विसदृशताका ज्ञान बन जाता है तो इसी प्रकार व्यक्तियोंका ही स्वभाव ऐसा मान लीजिए कि व्यक्तियोंको देखकर विसदृशताका ज्ञान हो जाता है। फिर विसदृश ज्ञान करनेके लिए विसदृश परिणामोंकी कल्पना करना अनर्थक है।

सदृशपरिणामोंके स्वात्मामें ही समानत्व प्रत्ययका विवरण—तथ्यभूत बात यह है कि सदृश परिणामोंमें तो अपने ही आपमें ही अपने ही आपके धर्मके कारण समान प्रत्ययका बोध हो जाता है, पर ऐसा मान लेनेपर पदार्थोंमें यह दोष नही दे सकते कि तब तो पदार्थोंमें भी अपने ही आप समान प्रत्ययका बोध हो जायगा, सदृश परिणाममें सादृश्य प्रत्यय स्वयंसे है ऐसा मान लेनेपर पदार्थोंमें यह दोष नही दे सकते कि तब तो पदार्थोंमें अपने ही आप समान प्रत्ययका बोध हो जायगा। वहाँ समान प्रत्ययके लिये अन्य सदृश परिणाम माननेकी जरूरत नही है। ये बातें दो हैं, अलग अलग हैं। पदार्थोंमें समान प्रत्यय करनेके लिए तो सदृश परिणामका आलम्बन लेना पड़ता है, अर्थात् सदृश परिणाम देखकर पदार्थोंमें यह उसके समान है, यह ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो पाता है, लेकिन वे जो सदृश परिणाम हैं, धर्म हैं उनमें तो समान प्रत्यय होनेके लिए वह स्वयं ही कारण पड़ता है। वहाँ अन्य समान परिणामोंके कारणकी जरूरत नही होती। क्योंकि पदार्थोंकी ऐसी विभिन्न शक्तियाँ हैं, प्रतिनियत शक्तियाँ होती हैं। भावोंमें जिसमें जिस प्रकारकी शक्ति है उसमें उस ही प्रकारकी है, अन्य प्रकारकी नही हो सकती। यदि पदार्थोंकी प्रतिनियत शक्ति नही मानते तो हम यहाँ भी ऐसा दोष दे सकते हैं कि देखो घट पट आदिक पदार्थोंका जो स्वरूप और प्रकाश प्राप्त होता है वह दीपकसे हो रहा है। दीपक जल गया तो घट पट आदिक पदार्थ दिखने लगे। तो जैसे दीपकसे घट आदिकका स्वरूप और प्रकाश प्राप्त हो जाता है तो दीपक में भी दीपकका प्रकाश अन्य दीपकोंसे होना चाहिये। जैसे कि शंकाकारने दोष दिया था कि व्यक्तियोंमें समानता का प्रत्यय सदृश परिणामोंसे हुआ करता है तो सदृश परिणामोंमें भी जो समानताका प्रत्यय होता है वह दूसरे समान परिणामसे होना चाहिए तो यह बात हम यहाँ भी लगा सकेंगे दोष दे सकेंगे कि यदि घट पट आदिक का स्वरूप और प्रकाश दीपकसे हुआ करता है तो दीपकमें भी जो प्रकाश होता है वह अन्य दीपकसे ही होना चाहिये।

समान और असमान प्रत्ययके होनेमें सदृश और विसदृश परिणामकी हेतुरूपता—शंकाकार कहता है कि भाई विसदृश व्यक्तियोंमें अथवा सभी पदार्थोंमें विसदृशताका स्वभाव पड़ा है इस कारण अपने कारण कलापसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थ विसदृश प्रत्ययके विषयभूत होते हैं अर्थात् उन समस्त पदार्थोंमें विसदृशताका ज्ञान हो जाया करता है स्वभावसे ही, अब उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो हम समान पदार्थोंके सम्बन्धमें भी कह सकते हैं कि अपने कारण कलापसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थ स्वभावसे ही समान प्रत्ययके विषय हुआ करते हैं, और यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि जैसे घट पट आदिकके प्रकाशके लिए दीपकका आलम्बन लेना पड़ा पर दीपकके प्रकाश जाननेके लिए अन्य दीपकोंका आलम्बन तो नही लेना पड़ता। इसी तरह पदार्थमें समानताका ज्ञान करनेके लिए समान परिणामरूप धर्मका आलम्बन लेना पड़ता है। जैसे गाय गाय बहुत सी खड़ी हैं तो उनमें समानताका ज्ञान करनेके लिए सासना आकार स्तन आदिक एकसे जो हैं उनके ज्ञानका आलम्बन लेना पड़ता है किन्तु इन सदृश धर्मोंमें सदृशता समझनेके लिए हमें अन्य समान परिणामोंका आलम्बन नही लेना पड़ता। वह स्वयं समान धर्म लिए हुए है तो पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं उनमें अनेक धर्म ऐसे हैं जो एक दूसरेसे विलक्षण हैं, यह बात हम परिक्षासे, प्रमाणसे जान जाते हैं तब उन पदार्थोंमें यह उसके समान है, ऐसा जो ज्ञान होता है उस ज्ञानका कारण उन पदार्थोंमें रहने वाला सदृश धर्म है, अर्थात् सदृश धर्मके ज्ञानके द्वारा हम उन पदार्थोंकी समानताका प्रत्यय करते हैं, न कि सामान्य नामका कोई अलग पदार्थ हो, और उसके सम्बन्धसे फिर पदार्थमें यह उसके समान है ऐसा ज्ञान किया जाता हो। अतः सामान्य पदार्थकी कल्पना करना युक्त नही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामान्य पदार्थके निराकरणसे नित्य ब्राह्मण्य आदि जातिका भी निरसन – प्रमाणका विषय क्या है अथवा ज्ञानका विषय क्या है। प्रकरण मूलमें यह चल रहा था। प्रमाणका विषय बताया गया है सामान्य विशेषात्मक पदार्थ अर्थात् प्रमाणके द्वारा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमेय होता है। इसपर एक शंकाकारने यह कहा था कि पदार्थ स्वयं सामान्य विशेषात्मक नही। सामान्य नामका एक स्वतंत्र पदार्थ है। उस पदार्थका जब किसी पदार्थमें सम्बन्ध होता है तो उसमें सामान्य परखा जाता है। इसका बड़े विस्तार सहित विवेचन किया गया और अन्तमें उस सामान्य पदार्थका खंडन हो हुआ जिसे कि लोग स्वतंत्र सत्तावान नित्य व्यापक मानते हैं। जैसे अनेक गायोंमें जो गोत्व है, अनेक मनुष्योंमें जो मनुष्यत्व है यह मनुष्यके सदृश परिणाम धर्मको देखकर कहा गया है। कहीं मनुष्यत्व नामका सामान्य पदार्थ अलग हो और उसका मनुष्यमें सम्बन्ध हो तब कहलाये मनुष्य या मनुष्यत्व कहलाये सो बात नहीं है। तो इसी तरहसे ब्राह्मणोंमें ब्राह्मण्य सामान्य हुआ नित्य हुआ, समस्त ब्राह्मणोंमें व्यापक होनेसे ब्राह्मण्य से ब्राह्मण कहलाया ऐसा कोई ब्राह्मण्य नामका सामान्य अलग नहो है। और यह बात कुछ नई नहीं कही जा रही है। जैसे अनेक गायोंमें गोत्व सामान्य कुछ अलग नही है इसी प्रकार ब्राह्मणोंमें ब्राह्मण्य कोई अलग नही है कि जिसका सम्बन्ध जोड़नेसे क्षत्रिय कहलाये। यह सभी पदार्थोंमें घटित कर सकते हैं। यहाँ ब्राह्मणका नाम लेनेसे कहीं इस तर्क वितर्कमें न पड़ना कि ब्राह्मण का खण्डन किया या ब्राह्मण्यका खण्डन किया। सभी व्यक्तियोंमें सामान्य धर्म स्वयं रहता है कोई सामान्य पदार्थ अलग नही रहता है। यहाँ ब्राह्मणमें ब्राह्मण्य जातिको बात कही जा रही है इसी प्रकार वैश्योंमें घटा लो। वैश्योंमें वैश्यत्व सामान्य हुआ। समस्त वैश्योंमें जो सदृश धर्म पाया जाया है उसका कारण वैश्यत्व सामान्य कहा जाता है। तो यहाँ ब्राह्मणको दृष्टान्तमें लिया है अन्य किसीको भी दृष्टान्तमें ले सकते थे। तो समस्त ब्राह्मणोंमें व्यापक नित्य ब्राह्मण्य सामान्य पदार्थ कुछ नही है क्योंकि ब्राह्मण जो कि समस्त ब्राह्मण व्यक्तियोंमें व्यापक हुआ, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे नही जाना जाता। कहीं ब्राह्मण आँखोंसे देखा है किसीने ? इसी प्रकार अन्य प्रमाणोंसे भी ब्राह्मण्य सामान्य पदार्थकी सिद्धि नही होती है।

ब्राह्मण्य स्वभावका प्रत्यक्षसे सिद्ध करनेकी आशंका - यहां शंकाकार कहता है कि वाह ब्राह्मण्य तो प्रत्यक्षसे ही प्रतिपत्ति हो जाती है। यह ब्राह्मण है, यह ब्राह्मण है ऐसा लोग प्रत्यक्षसे जान रहे हैं कहीं यह ज्ञान विपर्यय ज्ञान न हो जायगा क्योंकि उसमें कोई बाधक नही है। हर एक कोई अपने गांवमें समझते हैं कि यह ब्राह्मण है यह ब्राह्मण है। इस ज्ञानमें कहीं बाधा नहीं नजर आती। और यह संशय ज्ञान भी नहीं है। संशय ज्ञान हुआ करता है अनेक कोटिका आलम्बन करनेसे कोई यह सोचे कि यह ब्राह्मण है यह वैश्य है तब संशय कहलाये। यह ब्राह्मण है, यह ब्राह्मण है एसा जो ज्ञान हो रहा है वह संशय ज्ञान नहीं है। फिर यह कैसे कह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहे हो कि समस्त ब्राह्मण व्यक्तियोंमें व्यापक ब्राह्मण्य कुछ नहीं है। देखो उन अनेक व्यक्तियोंको देखकर झट कोई यह ज्ञान कर लेता है कि यह ब्राह्मण है इससे ब्राह्मण्य नामक सामान्य पदार्थ कुछ स्वतंत्र है जिसके सम्बन्धसे ब्राह्मण संज्ञा होती है।

ब्राह्मण्य जातिकी निर्विकल्प प्रत्यक्षसे सिद्धिका अभाव शंकाका समाधान करते हुये शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि जो तुम ब्राह्मण्यका बोध प्रत्यक्षसे होना बता रहे हो तो क्या निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मणका बोध होता है या विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण्यका बोध होता है ? प्रत्यक्ष दो प्रकारके माने गए हैं ना—एक निर्विकल्प प्रत्यक्ष दूसरा सविकल्प प्रत्यक्ष। जैसे किसी पदार्थको निरखकर उसका स्वलक्षण ज्ञात हो गया पर उसके सम्बन्धमें कोई बुद्धि या विकल्प नहीं जग रहा और जब जग जाता है विकल्प कि यह अमुक चीज है तब विकल्पात्मक ज्ञान हुआ और इस प्रकार उस ज्ञानसे पदार्थ जाना गया समझा गया। तो यहां पूछ रहे हैं कि समस्त ब्राह्मण व्यक्तियोंमें व्यापक ब्राह्मण्य नामक सामान्य पदार्थ क्या प्रत्यक्षसे जाना गया है तो निर्विकल्प प्रत्यक्षसे या सविकल्प प्रत्यक्षसे। निर्विकल्प प्रत्यक्षसे तो ब्राह्मण जाति जानी नहीं जाती क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्ष जाति आदिकको छूता ही नहीं है, निर्विकल्प प्रत्यक्ष तो पदार्थको जैसा है तैसा एक क्षणमें तुरन्त ज्ञान करता है। पश्चात् उस सम्बन्धमें कोई विकल्प उठता है तब वह निर्विकल्पज्ञान नहीं रहता। तो ऐसे निर्विकल्प ज्ञानसे जाति आदिक का ज्ञान होता ही नहीं है। और मान लो कि निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण जातिका बोध हो गया तो फिर वह ज्ञान निर्विकल्प न रहा। सविकल्प हो गया। उसमें विकल्प तो बना लिया, निर्विकल्प ज्ञान तो प्रथम इन्द्रियसे जो कुछ भी नजर आता है। जो बच्चे या गुंगेकी तरह जो ज्ञान होता है। शुद्ध वस्तुके विषयमें जो कुछ प्रतिभास होता है उसे बताते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष है। ऐसे निर्विकल्प प्रत्यक्षसे जाति आदिकका ज्ञान कैसे हो सकता है ? वस्तुके धर्मोंके द्वारा जाति आदिकके द्वारा जिस बुद्धिसे फिर वह जाना जाता है वह सविकल्प प्रत्यक्ष कहलाया करता है। तो निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण्य जातिका बोध हो ही नहीं सकता।

ब्राह्मण्य जातिकी सविकल्प प्रत्यक्षसे सिद्धिका अभाव—यदि कहो कि सविकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण्य जातिका बोध हो जायगा सो भी गलत है, क्योंकि किसी भी पुरुषको देखकर जैसे यह सामान्य है यह झट समझ जाते हैं ऐसे ही कोई यह भी झट समझ जायगा कि यह ब्राह्मण है। जिस ब्राह्मणको किसीने अभी तक न देखा, न जाना, न पहिचाना। न जिसके विषयमें किसीने कुछ कहा वह पुरुष जब सामने दृष्टिमें आता है तो दिखने वाला मनुष्य है यह तो झट जाना जाता है पर ब्राह्मण है यह नहीं समझ होती। तो उसमें मनुष्यत्व तो है पर ब्राह्मणत्व नहीं है। किसी भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पुरुष–मनुष्यत्व है ब्राह्मणत्व वैश्यत्व, क्षत्रियत्व ये तो क्रियाके आधारपर लोगोंकी समझमें हैं वस्तुमें तो नहीं है तो किन्हीं भी ब्राह्मण व्यक्तियोंको निरखकर कोई पुरुष इस तरह तो झट समझ जाता है कि यह मनुष्य है, यह मनुष्यत्वसे सहित है पर यह ब्राह्मण्यसे सहित है ऐसा कोई नहीं समझ पाता है, इससे सिद्ध है कि सविकल्पक प्रत्यक्षसे भी ब्राह्मण जातिका बोध नहीं होता।

पुरुखोंके ब्राह्मण्य ज्ञानपूर्वक ब्राह्मण्यकी सिद्धिकी शंका व उसका समाधान – अब शंकाकार कहता है कि जब लोगोंको उसके पिता आदिकके ब्राह्मणत्वका ज्ञान होता है —इसके पिता भी ब्राह्मण हैं। तो पिता आदिकमें ब्राह्मण्यके ज्ञान पूर्वक जो उपदेश चला आया है या लोगोंका ज्ञान प्रवाह चला आ रहा है, जैसे किसी गांवमें रहने वाले ब्राह्मणके विषयमें सब लोग समझते हैं कि इसके पिता ब्राह्मण थे, इसके दादा ब्राह्मण थे तो पिता आदिकके ब्राह्मण्यके ज्ञान पूर्वक जो उपदेश चला आया, जो बात चली आ रही है उसकी सहायता लेकर जो वे व्यक्तियां हैं। वे कठ आदिक व्यक्तियां ब्राह्मण्यकी व्यञ्जक हैं। अर्थात् जिसके सम्बन्धमें पितृपरम्परासे यह ब्राह्मण है यह ब्राह्मण है ऐसा उपदेश चला आया है तो वह व्यक्ति स्वयं ब्राह्मण्य जाति को व्यक्त कर देता है और उनसे पहिले जो उनके पिता थे उनमें ब्राह्मण्य था यह उनके पिताके ब्राह्मण्यकी सहायता लेकर व्यक्त होता है और उनके दादा आदिक ब्राह्मण थे ऐसा जानकर उससे व्यक्त होता है इसमें अनवस्था दोष भी नहीं आता कि फिर तो पिताको ब्राह्मण जान पाये तो लड़केको ब्राह्मण समझेंगे। पिताका ब्राह्मण्य दूसरेसे जानें उसका ब्राह्मण्य तीसरेसे जानें, यों पिताकी परम्परामें ब्राह्मण्यका ही निश्चय न हो सके और अनवस्था दोष हो जाय सो भी बात नहीं है, क्योंकि यह तो अनादि परम्परा है बीज और अंकुरकी तरह। जैसे अंकुर बीजसे होता है। यह बीज और अंकुरकी परम्परा अनादिसे चली आ रही है। इसी तरह ब्राह्मण को परम्परा भी अनादिसे है। यह ब्राह्मण अपने पितासे हुआ, वह ब्राह्मण अपने पितासे हुआ। तो उस रूप ब्राह्मण्यके उपदेशकी परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है। इस कारण अनवस्था दोष भी नहीं है। इस प्रकार शंकाकार कुल परम्परासे चले आए हुए उपदेशके अनुसार उन ब्राह्मण व्यक्तियोंको ब्राह्मण्य जातिका व्यञ्जक बता रहे हैं। इसके समाधानमें कहते हैं कि पिता आदिकके ब्राह्मण्यके ज्ञानपूर्वक उपदेशका सहाय लेकर यह ब्राह्मण व्यक्ति ब्राह्मण्यमें व्यञ्जक नहीं हो सकता, क्योंकि पहिले यह बताओ कि पिता आदिकके ब्राह्मण्यका जो ज्ञान होता है वह प्रमाण है या अप्रमाण है ? जैसे उपदेश परम्परामें वर्तमान ब्राह्मणमें ब्राह्मण्य जातिका बोध कर रहे हो और कह रहे हो कि यह ब्राह्मण्य जाति एक स्वतंत्र पदार्थ है और उस का सम्बन्ध होनेसे ब्राह्मण कहलाया है। यह पिता आदिकके ब्राह्मण्यका ज्ञान भी प्रमाणभूत है अथवा अप्रमाण है ? यदि कहो कि अप्रमाण है तब फिर उससे, अप्रमाण ज्ञानसे वर्तमान ब्राह्मण्य व्यक्तिमें ब्राह्मण्यकी सिद्धि कैसे कर सकते हो ? नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो किन्हीं भी मिथ्याज्ञानोंसे किसी भी अर्थका ज्ञान कर लिया जायगा। यदि कहो कि पिता आदिकके ब्राह्मण्यका ज्ञान प्रमाणरूप है तो किस प्रमाणसे जाना पिता आदिकके ब्राह्मण्यको? क्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना या अनुमान प्रमाणसे जाना? यदि कहो कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना सो बात गलत है। उसीका तो अभी निषेध किया गया है कि प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारके होते है निर्विकल्प और सविकल्प निर्विकल्प तो जाति आदिकको छूता ही नहीं है और सविकल्प ज्ञान भी पदार्थमें जो धर्म पाया जा रहा उसे ही तो समझेगा जैसे मनुष्यको देखकर मनुष्यत्व आदिक जाना जायगा पर ब्राह्मण्य न समझ पायगा। तो न निर्विकल्प ज्ञानसे पिता आदिक ब्राह्मण्य का ज्ञान हो सकता है और न सविकल्प प्रत्यक्षसे पिता आदिकके ब्राह्मण्यका ज्ञान हो सकता है। प्रत्यक्ष प्रमाण ब्राह्मण्यका ग्राहक है ही नहीं।

ब्राह्मण्य सामान्यकी प्रत्यक्षसे सिद्धि करनेमें बाधायें—अब और भी सुनो—ब्राह्मण्य जातिको यदि प्रत्यक्षसे सिद्ध करोगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। जब ब्राह्मण्य जाति प्रत्यक्षपनेसे सिद्ध हो जाय, ब्राह्मण्य जातिकी प्रत्यक्षता सिद्ध हो जाय तब तो उसके सम्बन्धमें कहे गए उपदेशमें प्रत्यक्ष हेतुताकी सिद्धि होगी। याने वह उपदेश प्रत्यक्ष ज्ञानकी सहायता करने वाला बनेगा। और जब यथोक्त उपदेशकी प्रत्यक्ष हेतुता सिद्ध हो जाय तब ब्राह्मण्य जातिकी प्रत्यक्षता सिद्ध होगी। यों अन्योन्याश्रय दोष होगा। ब्राह्मण्य जातिका प्रत्यक्षपना बुद्धिसे व्यवस्थित बनाते हो कि चूंकि लोग उसके बारेमें उपदेश सुनते आये हैं कि इसके पिता ब्राह्मण थे, इसके दादा ब्राह्मण थे, तो जैसे एक उपदेशके बलसे ब्राह्मण्य जातिका प्रत्यक्षपना व्यवस्थित करते हो तो ब्रह्म आदिक अद्वैतका प्रत्यक्षपना भी क्यों नहीं सिद्ध कर लेते? यदि आप अभीष्ट सिद्ध करोगे तो कुछ अपका अनिष्ट भी सिद्ध हो जायगा। यदि कहो कि अद्वैत आदिकके उपदेश तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित है कहां है अद्वैत पदार्थ भिन्न भिन्न तो है इसलिये अद्वैत आदिकका उपदेश प्रत्यक्षका अंग नहीं बन सकता है। तो उत्तर देते हैं कि यही बात तो ब्राह्मण और ब्राह्मण्यमें घटा लेना चाहिए। ब्राह्मण्य जातिसे भिन्न यह शरीर है जिसका ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षसे ही उपदेश में बाधा आती है। किसी ब्राह्मणको निरखकर देखने वाला पुरुष जैसे शरीर पिण्डको जान जाता है ऐसे ही ब्राह्मण्यको कहां जान पाता? अतः वह उपदेश प्रत्यक्ष बाधित है। यदि कहो कि ब्राह्मण्य जाति तो अदृश्य है इसलिये प्रत्यक्षसे बाधा नहीं आ सकती तो उत्तरमें कहते कि वाह उसे अदृश्य भी बता रहे और फिर कह रहे कि ब्राह्मण्य जातिका प्रत्यक्ष भी होता है तो किसी भी अतथ्यको सिद्ध करनेके लिए जिस अतथ्यका आश्रय करना होता, आश्रय ले लिया जाता यह बात शोभा नहीं देती। तो यों सामान्य पदार्थकी तरह ब्राह्मण्य नामक सामान्य पदार्थ अलग नित्य व्यापक हो सो बात नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ब्राह्मण शब्द प्रवृत्तिनिवृत्तिको अभ्रान्त माता पिताको कारण मानने का निराकरण ब्राह्मण्य जातिके सम्बन्धमें और भी सुनो। ब्राह्मण शब्द है औपाधिक। अर्थात् एक विशेषणरूप वचन है। तब उसका कोई निमित्त अवश्य कहना चाहिए। और, वह निमित्त क्या माता पिताकी अभ्रान्तता है या ब्रह्मसे उत्पत्तिका होना है। अर्थात् यह ब्राह्मण है ऐसा सिद्ध करनेमें क्या हेतु है क्या यह हेतु है कि इसके माता पिता अभ्रान्त थे, इस ब्राह्मणकी सिद्धि कुल परम्परासे है अथवा ब्राह्मण की ब्रह्मसे उत्पत्ति हुई है। इन दोनों पक्षोंमेंसे माता पिताकी अभ्रान्तता तो कह नहीं सकते क्योंकि समय अनादि कालसे चला आ रहा है। उस अनादिकालमें माता पिता की, पुरुषोंकी अभ्रान्तता प्रत्यक्षसे ग्रहण नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रायः स्त्रियाँ कामसे आतुर होनेके कारण उनके जीवनमें भी व्यभिचार देखा जाता है फिर जन्म के कारण ब्राह्मण्यका निश्चय कैसे हो सकता है? इस ही जीवनमें देखा जाता है कि कोई ब्राह्मणी किसी अन्य वैश्य शूद्र आदिकसे भी सम्बन्ध कर लेती है तब उसकी संतानको हम कैसे समझें कि यह ब्राह्मण है? अभ्रान्त और भ्रान्त माता पिता की संतानोंमें कोई भिन्नता तो देखी नहीं आती। जैसे गधी और अश्वसे उत्पन्न होने वाले खच्चरमें विलक्षणता देखी जाती है। उसका आकार न गधा जैसा पूर्णतया रहता है और न घोड़े जैसा पूर्णतया रहता है। इसी तरह ब्राह्मणीमें ब्राम्हण और शूद्र दोनोंसे उत्पन्न हुए संतानमें कुछ विलक्षणता तो नजर आती नहीं तब कैसे निश्चय हो सकता है कि यह ब्राम्हण है तथा इसके माता पिता शुद्ध ब्राम्हण चले आये हैं। साथ ही यह बात है कि शंकाकारके सिद्धान्तमें स्वयं माना गया है कि क्रियाका लोप हो जानेसे अथवा शूद्रका अन्न आदिक खा लेनेसे ब्राम्हण जातिका विनाश हो जाता है। कहा भी है उनके ग्रन्थोमें कि शूद्रका अन्न भक्षण करनेसे, शूद्रका सम्बन्ध कर लेनेसे शुद्रके साथ भाषण करनेसे इस जन्ममें भी वह ब्राम्हण शूद्रपनेको प्राप्त होता है। तो अब नित्य ब्राम्हण्य तो न रहा। क्योंकि क्रियाके ह्राससे ब्राम्हण्य जातिका लोप स्वयं मान लिया गया है फिर नित्य ब्राम्हण जाति कहकर उसके सम्बन्धसे ब्राम्हण सिद्ध करना भी नित्य व्यापक ब्राम्हण जाति मानना कैसे युक्त है।

जातिपदार्थवादका सामान्यपदार्थवत् निराकरण—भैया! यहां जितना भी कथन चल रहा है वह कुछ ब्राम्हणसे विरुद्ध होने की बात नहीं कही जा रही। इसी प्रकार क्षत्रियमें क्षत्रियत्व, वैश्यमें वैश्यत्व, शूद्रमें शूद्रत्वकी भी बात घटित करना चाहिये। यहां कहनेका मूल प्रयोजन यह है कि व्यक्तियोंमें व्यापक नित्य एक सामान्य जाति नहीं रहती किन्तु व्यक्तियोंके ही समान परिणाम देखकर उनकी योग्य क्रिया आचरण देखकर ब्राम्हणत्व, वैश्यत्व आदिककी प्रतिष्ठा होती है और फिर जो ऐसा कहा है कि ब्राम्हण शब्द की प्रवृत्ति और निवृत्तिका कारण माता पिताकी अभ्रांतता है, माता पिताके विषयमें भ्रम रहता और यह ज्ञान रहता कि यह शुद्ध ब्राम्हण है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उससे उनकी संतानमें भी यह ब्राम्हण है, ऐसी प्रवृत्ति हो जाती है और जो उनकी संतान नहीं है, अन्यकी संतान हैं उनमें यह ब्राम्हण नहीं है ऐसी निवृत्ति हो जाती है, ऐसा कहने वाले लोग ब्रम्ह व्यास आदिक व्यक्तियोंमें ब्राम्हण्यकी सिद्धि कैसे कर सकेंगे क्योंकि उनकी अभ्रांत माता पितासे उत्पत्ति नहीं मानी गई है। अनेक कथानक ऐसे हैं जिनकी उत्पत्ति अन्य तरहसे मानी है और उन्हें ब्राम्हण संज्ञा दी गई है, तो इससे ब्राम्हण शब्दकी प्रवृत्ति और निवृत्तिका कारण माता पिताकी अभ्रांतता सिद्ध नहीं हो सकती है। एक तो माता पिताकी अभ्रांतता नियमित नहीं बन सकती है, उनमें व्यभिचार भी देखा जाता है और फिर स्वयं भी क्रियालोपसे शूद्र सम्पर्कसे ब्राम्हण्य जातिका विनाश माना है, और जो ब्राम्हण ब्राम्हणीसे उत्पन्न नहीं हुए ऐसे लोगोंको भी ब्राम्हण संज्ञा उनके शास्त्रोंमें दी गई है। तब कैसे यह सिद्ध हो सकता है कि ब्राम्हण शब्दकी प्रवृत्ति और निवृत्तिका निमित्त माता पिताकी अभ्रांतता है।

ब्रह्मप्रभवत्वको ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्त माननेका निराकरण

यदि कहो कि ब्राम्हण शब्दकी प्रवृत्ति इस कारण होती है कि चूंकि वह ब्रम्हसे उत्पन्न हुआ है तो यह बात युक्त नहीं है क्योंकि जितने भी प्राणी हैं सभीकी ब्रम्हसे उत्पत्ति मानी गई है शङ्काकारके सिद्धान्त में, तो सभी जीवोंको ब्रम्हसे उत्पत्ति होनेके कारण ब्राम्हण शब्दसे कह दिया जाना चाहिए। ऐसा भी नहीं कह सकते कि जो ब्रम्हके मुखसे उत्पन्न हुआ है वह तो ब्राम्हण है, अन्य लोग ब्राम्हण नहीं हैं यह भाव प्रजा-जनोंमें यों नहीं बन सकता कि सभी ब्रम्हसे उत्पन्न हुए हैं। जैसे कि एक वृक्षसे उत्पन्न हुए फल मूलमें, मध्यमें शाखामें भेदको प्राप्त नहीं होते, एक वृक्षसे जो फल उत्पन्न होते हैं वे फल समान हैं, उनमें भेद नहीं डाला जा सकता है। इसी प्रकार एक ब्रम्हसे उत्पन्न हुए इन प्राणियोंमें भेद नहीं डाला जा सकता है। शकाकार कहता है कि एक ही वृक्षसे उत्पन्न हुए पदार्थोंमें तो भेद देखा गया है। जैसे नाग—बल्लीके पत्ते होते हैं, वे पत्ते यदि नाग बल्लीके वृक्षोंके मूलमें लगे हुए होते हैं तो वे पत्र कंठमें श्रम उत्पन्न कर देते हैं। कंठका स्वर खराब कर देते हैं और यदि उस ही नागबल्ली पेड़के मध्यके ऊपरके पत्ते खाये जायें तो वे कंठको सुस्वर बना देते हैं। इस प्रकारका भेद तो देखा जाता है। इसी—तरह यहाँ प्रजाका भी भेद बताना सम्भव है कि जो ब्रम्हके मुखसे उत्पन्न हुए है वे तो ब्राम्हण हैं और अन्य जगहसे उत्पन्न हुए हैं वे ब्राम्हण नहीं हैं। उत्तर देते हैं कि यह भी बात ठीक नहीं है क्योंकि नागबल्लीके पत्र तो जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशोंमें उत्पन्न हुए हैं इसलिए पत्तोंमें भी भेद किया जा सकता है, अथवा जैसे गन्ना बिल्कुल जड़में नीरस होता है मध्यमें सरस होता है तो उस गन्नेके पेड़के भी हिस्से हैं, न्यारे न्यारे कोई जघन्य हिस्सा है कोई उत्कृष्ट। तो जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशोंमें उत्पन्न होनेसे पत्रोंमें, रसोंमें भेद सम्भव है पर ब्रम्हसे उत्पन्न होने वालेमें यह भेद यों सम्भव नहीं कि क्या ब्रम्हके भी जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेश होते हैं। किसी हिस्सेमें ब्रम्ह जघन्य है किसीमें उत्कृष्ट क्या ऐसा अन्तर पड़ा हुआ है। यदि ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्तर पड़ा हुआ है तो कहीं ब्रम्ह जघन्य हो गया कहीं उत्कृष्ट हो गया। तो यह तो एक बड़े दोषकी बात है कि एक व्यापक एक स्वरूप ब्रम्ह किसी हिस्सेमें जघन्य है किसी हिस्सेमें उत्कृष्ट है।

ब्रह्ममें ब्राह्मण्य होने व न होनेके विकल्पोंका विचार—अच्छा फिर यह बताओ कि जैसे ब्रम्हसे उत्पन्न होनेसे ब्राम्हण संज्ञा दी जा रही है तो ब्रम्हमें भी खुद ब्राम्हण्य है या नही? यदि कहो कि ब्रम्हमें ब्राम्हण्य नहीं है तो जो ब्राम्हण्यसे रहित है ऐसे ब्रम्हसे ब्राम्हणकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? जैसे कि जो मनुष्य नहीं है ऐसे किसी भी प्राणीसे मनुष्यको उत्पत्ति तो नहीं घटित होती। इसी तरह ब्राम्हण्य रहित ब्रम्हसे ब्राम्हणकी उत्पत्ति घटित नही हो सकती। यदि कहो कि ब्रम्हमें भी ब्राम्हण्य है तो यह बतलावो कि ब्रम्हके सर्व हिस्सोंमें ब्राम्हण्य है या ब्रम्ह के केवल मुख प्रदेशोंमें ही ब्राम्हण्य है? यदि ब्रम्हके सर्व प्रदेशोंमें ब्राम्हण्य है तो फिर ब्रम्हसे उत्पन्न हुए प्राणियोंके भी भेद भाव न होना चाहिये कि यह अमुक वर्णका है क्योंकि ब्रम्हके सर्व प्रदेशोंमें ही ब्राम्हण्य बसा हुआ है। तब फिर किसी भी प्रदेश से कैसे भी जीव उत्पन्न हुए हों उनमे भेद नहीं हो सकता। यदि कहो कि ब्रम्हके मुख प्रदेशोंमें ही ब्राम्हण्य रहता है अन्य जगह नही रहता तो इसका भाव यह हुआ कि ब्रम्हके मुखमें तो ब्राम्हण्य है और अन्य प्रदेशोंमें उसकी शूद्रता है। जब एक ही ब्रम्ह कहीं शूद्र है कहीं ब्राम्हण है तो फिर इसके पैर आदिक वंदनीय न होने चाहिएँ क्योंकि ब्रम्हके पद तो अब शूद्र हो गए। ब्रम्हका मुख ही मात्र ब्राम्हण रहा। तो जैसे किसी पुरुषके हीन अंग वंदनीय नही होते हैं इसी प्रकारसे इस ब्रम्हके बाद चरणादिक भी वंदनीय न रह सकेंगे, क्योंकि अन्य सब हिस्सोंमें तो यह शूद्र हो गया केवल एक मुख ही ब्राम्हण्यसे युक्त मान लिया तो वह ही वंदनीय रहे याने ब्रम्हके मुखको ही नमस्कार करना चाहिये चरणोंको नही। इससे यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि ब्रम्हसे उत्पन्न होनेके कारण यह ब्राम्हण है इस प्रकारका बोध होता है अथवा यह ब्राम्हण है ऐसी प्रवृत्ति और निवृत्तिमे कारण ब्रम्हसे उत्पन्न होना है।

ब्रम्हमुखसे ब्राम्हणोत्पत्ति माननेके दोनों विकल्पोंमें अन्योन्याश्रय दोष अब यह बतलावो कि ब्रम्हके मुखसे ब्राम्हण उत्पन्न हुआ। इसका तात्पर्य क्या है? क्या ब्राम्हण ही ब्रम्हके मुखसे उत्पन्न हुआ यह अर्थ है या ब्रम्हके मुखसे ही वह ब्राम्हण उत्पन्न हुआ यह अर्थ है? कोई भी पक्ष लो दोनों पक्षोंमें अन्योन्याश्रय दोष होता है। अर्थात् जब ब्राम्हणत्व सिद्ध हो ले तब ब्राम्हणकी ही व ब्रम्हके मुख से ही जन्मको सिद्धि कहलाये और जब ब्रम्हके मुखसे ही जन्मकी सिद्धि हो ले तब ब्राम्हणत्वकी सिद्धि हो। इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होता है। यदि कहो कि जन्म से तो ब्राम्हण्यकी सिद्धि हो जायगी और ब्रम्हके मुखसे ही ब्राम्हणके जन्मकी सिद्धि

Version 1

हो जायगी तब दोष न रहेगा। उत्तर देते हैं कि यह बात सही नही है, क्योंकि ब्राम्हण्यकी सिद्धि ही तो प्रत्यक्षसे प्रतीत नही हो रही है। जैसे कि खण्ड मुण्ड आदि अनेक गाय हैं, उन गायोंमें यह गाय है, यह गाय है ऐसे सदृश परिणामरूप गोत्वकी प्रतीति प्रत्यक्षसे हो जाती है, ये सब गायें हैं इस प्रतीतिकी तरह देवदत्त आदिक अनेक व्यक्ति खड़े हैं उनमें ब्राम्हण जातिकी प्रत्यक्षसे प्रतीति तो नही होती है। हाँ, मनुष्यकी प्रतीति जरूर हो जाती है कि ये सब मनुष्य हैं। तो मनुष्यत्व सामान्यकी तो प्रत्यक्षसे प्रतीति हो जायगी पर ब्राम्हण्यकी प्रतीति प्रत्यक्षसे नही होती।

ब्राह्मण्यकी प्रत्यक्षसे प्रतीति माननेपर संशयज्ञान व गोत्रोपदेश होनेकी असंभवता—यदि प्रत्यक्षसे ब्राम्हण्यकी प्रतीति हो जाती तब फिर यह संशय कभी न होता कि यह ब्राम्हण है अथवा अन्य है। ऐसा संशय भी तो देखा जाता है तो मालूम होता है कि किसी भी पुरुष में ब्राम्हणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व ये सामान्य जातिके पदार्थ नही पड़े हुए हैं। लेकिन लोकमें ही क्रियाके योगसे उस प्रकार का व्यवहार होने लगता है। कोई उस प्रकारको जाति सर्वव्यापक नित्य हो और उसके सम्बन्धसे वे ब्राम्हण क्षत्रिय आदिक कहलाने लगें ऐसी बात वहाँ नही सम्भव है। यदि प्रत्यक्षसे मनुष्यत्वकी तरह ब्राम्हण्यकी प्रतीति होती तो यह ब्राम्हण है अथवा नही, इस प्रकारका संशय न हो सकता था और तब यह ब्राम्हण ही है ऐसा सिद्ध करनेके लिए गोत्र आदिकका उपदेश देना भी व्यर्थ हो जायगा। जैसे मनुष्योंको देखकर जाना जाता है कि इसमें मनुष्यत्व है, ये मनुष्य हैं, तो मनुष्यकी सिद्धि करनेके लिए फिर यहाँ वहाँ कहीं कोई उपदेश तो नही ढूंढा जाता। यह मनुष्य है अथवा गाय है? ऐसा संशय तो नही होता। ऐसा निश्चय करनेके लिए उसके गोत्र आदिकके उपदेशोंकी अपेक्षा तो नही होती। तो मनुष्यको देखकर जैसे मनुष्यत्वका ज्ञान सुगम हो जाता है इस तरहसे तो यदि ब्राम्हणका भी ज्ञान सुगम हो जाय तब फिर उसके लिए उसका गोत्र बताना, माता पिताका कुल बताना यह सब व्यर्थ हो जायगा। जब प्रत्यक्षसे ही ब्राम्हण्य दिख गया तो अन्यकी फिर आवश्यकता क्या रहेगी? किन्तु चलते हैं गोत्रादिकके उपदेश! इससे सिद्ध होता है कि ब्राम्हण्य जाति अलग सत्त्व नहीं रखती। क्षत्रियत्व वैश्यत्व आदिक सभी कुछ अलग नहीं है किन्तु व्यक्तियोंमें ही किसी साधर्म्यसे उनको ब्राम्हण आदिक कहा जाता है।

परोपदेशसहाय प्रत्यक्षसे ब्राम्हण्य प्रतीति माननेकी असिद्धि और विकल्पपृच्छना—यदि ब्राम्हणमें ब्राम्हण्य जाति मोजूद है और उसकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है तब तो उस ब्राम्हणका ब्राम्हण्य समझनेके लिए उसके विषयमें गोत्रादिकका उपदेश करना व्यर्थ रहा क्योंकि ब्राम्हण्य तो प्रत्यक्षसे ज्ञात हो जाता है जैसे कि मनुष्यको देखकर यह मनुष्य है इस प्रकारका निश्चय कहीं किसीके उपदेशकी अपेक्षा नही रखता इसी तरह ब्राम्हणको देखकर यह ब्राम्हण है, ऐसा समझनेके लिए किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के उपदेशकी आकाँक्षा न होना चाहिये। इसपर शंकाकार रहता है कि जैसे स्वर्णादिक दूसरेके उपदेशकी सहायता लेने वाले प्रत्यक्षसे जाने जाते है इसी प्रकार ब्राम्हण्य जाति भी दूसरेके उपदेशका सहाय रखने वाले प्रत्यक्षसे जानी जाती है। शंकाकारका यह कहना है कि यह जो दोष दिया कि ब्राम्हणमें ब्राम्हण्य जाति हो तो ब्राम्हणको देखते ही ब्राम्हण्य जातिका बोध हो जाना चाहिए, इसके उत्तरमें शंकाकारने यह कहा है कि जैसे स्वर्ण ही है ऐसी परके उपदेशकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे जाना जाता है। अथवा कसौटीपर कस करके उसका रंग वर्ण देखकर प्रत्यक्षसे जाना जाता है। तो जैसे स्वर्ण प्रत्यक्षसे तो जाना गया पर कुछ सहायता लेकर, ऐसे ही ब्राम्हण्य प्रत्यक्षसे जाना गया, पर कुछ सहायतासे। उत्तर देते हैं कि यह बात अयुक्त है क्योंकि प्रत्यक्षसे जो कुछ इसमें दिख रहा है याने पीलापन मात्र दिखता है तो पीलेपन मात्रका नाम स्वर्ण नहीं है। यदि प्रत्यक्षसे जो पीलापन दिख रहा है वही स्वर्ण हो जाय तो पीतल आदिक भी स्वर्ण हो जायेंगे पर स्वर्णमें कुछ विशेषता है। जो स्वर्णत्व है वह प्रत्यक्षसे नहीं जाना गया अन्यथा प्रत्यक्षसे ही स्वर्णत्व जान लिया तो फिर उसको पिघलाना, जलाना, छेदना, कसौटीपर कसना ये सब बातें व्यर्थ हो जायेंगी। तो जैसे स्वर्ण करके उपदेशकी सहायता लेकर या कसौटीपर कसना, दाह करना, छेद करना आदिककी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है इस तरहसे ब्राम्हण जातिमें भी कोई इस प्रकारका सहाय हो तो बताओ। यहां प्रसंग चल रहा है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। तो सामान्य तत्त्व और विशेषतत्त्व ये पदार्थके ही धर्म हैं। इसपर शंकाकारने यह कहा था कि सामान्य नामका एक स्वतन्त्र पदार्थ ही है नित्य एक सर्वव्यापक। उसके संबन्धसे पदार्थोंके सामान्यका ज्ञान होता है। उसका निराकरण करनेके बाद अब एक उपसंहार रूपमें यह प्रसंग चला दिया गया है। इसी तरह क्षत्रियमें क्षत्रियत्व जाति ब्राम्हणमें ब्राम्हणत्व जाति आदिक बसी हुई है। यदि इनमें जाति बसी हुई है तो किसी ब्राम्हणको देखते ही झट सबको समझ जाना जाना चाहिए कि यह ब्राम्हण है क्योंकि इसमें जाति पड़ी भई है, लेकिन जानने वाला मनुष्य समझ नहीं पाता है। जानकारी हो उसके सबन्धमें या कोई बताये तब ही ब्राम्हण समझ पाता है। तो इसपर शंकाकार यह कह रहा कि ब्राम्हणको हम प्रत्यक्षसे तो समझ जाते हैं लेकिन उसके संबन्धमें दूसरे उपदेशकी, बतानेकी सहायता लेनी पड़ती है अथवा कसौटीसे कसने आदिककी सहायता लेनी पड़ती है। प्रत्यक्षसे जानकर ऐसे स्वर्ण को जैसे हम दूसरेकी सहायता लेकर जान पाते हैं इसी तरह ब्राम्हणको प्रत्यक्षसे जानकर भी हमें कुछ थोड़ीसी दूससेके पूछताछ की सहायता लेनी पड़ती है। तो यहां शंकाकारसे यह पूछा जा रहा है कि ब्राम्हण्य छातिके परिज्ञानमें जो कुछ सहायता तुम्हें लेनी पड़ रही है वह सहायता तो बताओ कि किसका सहाय लेते हो ? आकारविशेषका सहाय लेते हो या अध्ययन आदिकका।

ब्राम्हण्यप्रत्यक्षसे विकल्पित साहाय्यकी अकिञ्चित्करता—जैसे स्वर्ण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में स्वर्णत्व समझनेके लिए कसौटीकी सहायता ली, जलानेकी सहायता ली । काटनेकी सहायता ली इसी तरह ब्राम्हणको ब्राम्हण समझनेके लिए किसकी सहाय लेनी पड़ती है ? क्या आकार विशेषका सहाय लेना पड़ता है ? यह बात तो गलत है क्योंकि आकार विशेष तो अब्राम्हणमें भी सम्भव है । जो आकार ढांचा आँख कान आदिक जिस प्रकारका ढंग एक ब्राम्हणमें पाया जा सकता वहा दूसरेमें भी पाया जा सकता । इसलिये आकार विशेषकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे ब्राम्हण जाना जाता है यह बात तो युक्त न रही । यदि कहो कि अध्ययन और क्रिया विशेषकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे ब्राम्हणका ब्राम्हण्य जाना जाता है तो यह बात भी युक्त नहीं है। क्योंकि अपनी जातिको छिपाकर कोई शूद्र भी अन्य देशमें ब्राम्हण बनकर वेदका अध्ययन और वेदमें बतायी हुई क्रियावोंको करता है तो वहां यदि फिर हर एक किसीको ब्राम्हण समझें तो ब्राम्हण जाति तो उसमें पड़ी नहीं है तुम्हारे कथनानुसार । और ब्राम्हण कहलाने लगा इससे ब्राम्हण जातिका प्रत्यक्षसे परिज्ञान नहीं होता । और जब ब्राम्हण्य जातिका प्रत्यक्षसे ज्ञान नहीं होता तो जैसे कि शंकाकारके सिद्धान्तमें माना गया है कि ब्राम्हण को ही व्रतबन्धन, दीक्षा देना चाहिए, वेदका अध्ययन कराना चाहिए यह बात कैसे सिद्ध होगी ? जब प्रत्यक्षसे ब्राम्हण भी न समझा गया तो फिर नियम कैसे लागू हो सकेगा ? पता नहीं, न हो वह ब्राम्हण । ब्राम्हण महिलायें भी तो किसी शूद्रादिकसे सम्बन्ध बना सकती हैं । तो उस शूद्रके सबन्धसे उत्पन्न हुई संतान ब्राम्हण कहाँ रही ? और उसमें व्रत वगैरहका नियम कैसे बनेगा ? तो ब्राम्हण जाति कोई स्वतंत्र पदार्थ है नित्य व्यापक और उसका ब्राम्हण में सम्बन्ध है तब वह ब्राम्हण है यह बात युक्त नही है । यह भेद तो क्रियाके आधार पर हैं । उस क्रियासे उस प्रकारके संस्कारको जो लिए हुए है, थोड़ीसी परम्परा भी देख जी जाती है उससे ये संतानें होती हैं जीव पुद्गल आदिककी तरह कोई जाति नामका पदार्थ सत्तावान नित्य व्यापक हो और उससे फिर व्यवस्था बनायी जाती हो ऐसी बात नही है ।

पदत्व हेतुसे ब्राम्हण्य जाति सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयत्न— अब शंकाकार कहता है कि ब्राम्हमें ब्राम्हण्य जातिका अनुमानसे भी साधन बनता है । जैसे अनुमान प्रयोग है उसका ब्राम्हण पद व्यक्तिसे व्यतिरिक्त एक निमित्तके द्वारा अथवा निमित्तरूप जो अभिधेय है उससे सम्बद्ध है क्योंकि पद होनेसे पट आदिक पद की तरह । ब्राम्हण यह एक पद है, शब्द है विशेषणरूप है तो व्यक्तिसे अतिरिक्त एक कोई निमित्त है उसका । जैसे कि ब्राम्हणका निमित्त है ब्राम्हण्य, वही हुआ एक अभिधेय प्रकृतमें कहा गया । उससे सम्बद्ध है याने ब्राम्हण्यसे सम्बद्ध हैं पद होनेसे । जैसे पट पटत्वसे सम्बद्ध है क्योंकि पद होनेसे । इसी तरह ब्राम्हण ब्राम्हण्यसे सम्बद्ध है पद होनेसे । यह हेतु असिद्ध नही है क्योंकि पक्षमें यह हेतु विद्यमान है । जैसे पटमें पटत्व है, ब्राम्हणमें ब्राम्हणत्व है इस कारण यह हेतु असिद्ध नही और विरुद्ध भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नही क्योंकि विपक्षमें पाया नही जाता। अनेकांतिक दोष भी इसमें नहीं क्योंकि विपक्ष में और पक्षमें दोनोंमें पाया जाय ऐसा नही है। पक्षमें पाया जाता, विपक्षमें नही पाया जाता और दृष्टान्त जो दिया है पटका पहिन, उसमें साध्य पाया जा रहा है इस कारण यह भी नही कह सकते कि दृष्टांत साध्यसे रहित है, पटमें पटत्व है, अन्य घटादिक हैं, उनमें उनका सामान्य है। यदि सामान्य जाति न मानोगे तो व्यक्ति तो हैं अनन्त। तब तो अनन्त काल भी व्यतीत हो जाय तो भी संबन्ध ग्रहण न हो सकेगा। और, केवल सामान्य जाति माननेसे संबन्ध ग्रहण हो सकता है। जैसे जितनी गायें हैं वे सब गायें कहलाती हैं। तो गोत्व सामान्य पदार्थ है इससे उन अनगिनते गायों का भी तुमने एक गाय शब्दसे सबन्ध जोड़ दिया। इसलिये गोत्व नामका सामान्य पदार्थ न मानोगे तो अनगिनती गायें हैं उन सबको आप गाय गाय कह नही सकते क्योंकि कब तक जानोगे ? जब सब गायें जान चुको तब उनसे गोत्वका संबन्ध जोड़ा जा सके। इस प्रकार शंकाकारका यह कथन है कि सामान्य होनेसे पदार्थोंकी जाति समझनेकी व्यवस्था बनती है।

पदत्व हेतुसे ब्राम्हयजातिकी असिद्धि – अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि अनुमान प्रयोग करके ब्राम्हणको ब्राम्हण्य निमित्तसे संबद्ध सिद्ध करना युक्त नही है क्योंकि वहाँ पर व्यक्तिसे जुदा कोई एक निमित्त अभिधेय संबन्धित है यह बात प्रत्यक्ष बाधित है। अर्थात् ब्राम्हण पद। अभी तो व्यक्तिकी बात चल रही थी कि ब्राम्हण व्यक्तिमें ब्राम्हण्यका संबन्ध है अब शंकाकार ब्राम्हण पदसे बात चला रहा है। तो प्रथम तो जो ब्राम्हण शब्द है, पद है वह ब्राम्हण्यसे सम्बन्धित है, यह तो प्रत्यक्षबाधित बात है। और, फिर ब्राम्हण व्यक्तियां भी ब्राम्हण व्यक्तिसे व्यतिरिक्त एक ब्राह्मण निमित्तसे सम्बद्ध हैं यह भी बात प्रत्यक्ष बाधित है जिन भी व्यक्तियोंको हम निरखते हैं उनको मनुष्यत्वके रूपमें निरखते हैं। ब्राह्मण्यसे रहित केवल सामान्य रूपसे हम उनको प्रत्यक्षसे जानते हैं। फिर दूसरा दोष है इस अनुमानमें कि जो पक्ष दिया गया है वह ब्राह्मणवाद ब्राह्मण्यसे अभिसंबद्ध है यह अप्रसिद्ध विशेषणवाला पद है क्योंकि शंकाकारके यहां भी और जैन आदिकके वहां भी दृष्टान्तमें व्यक्तिसे व्यतिरिक्त एक निमित्त अभिधेयसे सम्बद्धता नहीं मानी गयी है। क्योंकि व्यक्तियोंसे व्यतिरिक्त सामान्य माना गया है, अर्थात् जैसे गायमें गोत्व है तो वह गोत्व बतलावो गायसे जुदा है या गायसे अभिन्न है ? यदि कहो कि गायसे जुदा है गोत्व तो जैसे गोत्व गायसे जुदा कहा, घोड़ा आदिकसे तो जुदा था ही, तो गोत्व घोड़ासे जैसे जुदा है वैसे ही गोत्व गायसे भी जुदा मान लिया गया है। फिर गोत्वका सम्बन्ध गायमें क्यों लगाते अन्यसे क्यों नहीं लगाते ? यदि गोत्व गायसे अभिन्न है तो एक ही चीज कहलाये। चाहे गाय कहो चाहे गोत्व, व्यक्ति ही कहलाया। इस कारण सामान्य व्यक्तिसे कथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न है। उन शब्दोंके द्वारा भिन्न भिन्न स्वरूप जाने जाते हैं इस कारण तो भिन्न है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मनुष्यत्व शब्द कहकर जो कुछ जाना गया मनुष्यत्व शब्द कहकर उससे विलक्षण तत्त्व जाना गया। चाहे वह किसी भी रूपमें भिन्नता हो। ऐसे भिन्न ज्ञानको उत्पन्न करनेकी क्रिया व्यक्तियोंसे सामान्य भिन्न रहा और सामान्य व्यक्तिसे जुदा निकाल कर रख दें, ऐसा प्रथक किया नही जा सकता इस कारण सामान्य व्यक्तियोंसे अभिन्न रहा ऐसा सभी जगह माना गया है। इससे यह सिद्ध है कि कोई भी व्यक्ति कोई भी पद उस व्यक्तिसे भिन्न किसी निमित्तसे सम्बन्धित हो ऐसी बात नही। व्यक्ति ही स्वयंमें सामान्य विशेष धर्मात्मक है। जो धर्म अनेक व्यक्तियोंके साथ पाये जाते है उन सदृश परिणामोंसे तो सामान्य अनुवृत्त प्रत्ययकी व्यवस्था बनती है और व्यक्तियोंमें जो असाधारण धर्म है वे एकमें पाये जाते हैं अन्यमें नही। उन असाधारण धर्मोंसे विशेष प्रत्ययकी व्यावृत्ति प्रत्ययकी प्रतिपत्ति होती है। यह इससे अलग है। यह ज्ञान कैसे विसदृश धर्मको देखकर किया जाता है इसी प्रकार यह उस के समान है यह ज्ञान भी सदृशधर्मको देखकर किया जाता है। इससे पदार्थोंमें ही स्वयं सदृश विसदृश धर्म है जिसके कारण अनुवृत्त व्यावृत्तका बोध होता है। सामान्य नामका पदार्थ भिन्न हो और इस प्रकार ब्राह्मणमें ब्राह्मण्य जाति कोई भिन्न पदार्थ हो, क्षत्रियमें क्षत्रियत्व कोई भिन्न पदार्थ हो और उसके सम्बन्धसे ये ब्राह्मण आदिक कहलायें यह बात युक्त नही होती है किन्तु वे सब विशेषण सामान्यविशेषात्मक पदार्थके ही हैं जिससे कि अनुवृत्त और व्यावृत्तका बोध हुआ करता है।

जातिको व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तनिबंधनक सिद्ध करनेके लिये दिये गये पदत्व हेतुकी अनैकान्तिता एवं विडम्बना—शकाकारने जो अनुमान बनाया था कि ब्राह्मण पद व्यक्तिसे भिन्न किसी एक निमित्तसे सम्बद्ध है पदत्व पद होनेसे तो इस अनुमानमें जो पदत्व हेतु है वह अनैकान्तिक दोषसे सहित है, क्योंकि आकाशकाल आदि पदमें अथवा अद्वैत अश्वविषाण आदिक पदमें व्यक्तिसे भिन्न किसी निमित्तका पद है नहीं फिर भी यह पद कहलाता है। अनैकान्तिक दोष उसे कहते हैं कि जहाँ हेतु साध्य विरुद्ध पक्षमें रहा करे। हेतु तो रहे और साध्य न रहे उसे अनैकान्तिक दोष कहते हैं। तो देखो! आकाश काल अश्वविषाण आदिक पदोंमें सामान्यका सम्बन्ध नही है लेकिन पद बराबर कहला रहे हैं। यदि इनमें भी सामान्यका निमित्तका संबंध मान लिया जाय तो ये हो गए सामान्य वाले अर्थात् जैसे अद्वैत हुआ सामान्य वाला तो अद्वैत वस्तुभूत बन जायगा, वास्तविक चीज कहलाने लगेगी। अश्वविषाणमें हो गया सामान्य सम्बन्ध क्योंकि पद है ना! क्योंकि जो जो पद होते हैं उनमें सामान्य का सम्बन्ध करना माना है सो घोड़ेके सींगमें सामान्यका सम्बन्ध हो गया तो इसके मायने है कि घोड़ेके सींग भी वास्तविक चीज हो गए। तो इस हेतुसे विरोध ही सिद्ध हो रहा है। और भी देखो! सत्तामें यदि सत्ता व्यतिरिक्त निमित्तका सन्निधान माना जाय, सामान्यका सम्बन्ध माना जाय तो सत्ता सामान्य वाली कहलाने लगी। किन्तु सत्ता सामान्यकी होती ही नही। सत्ता खुद एक धर्म है पदार्थ नहीं। अगर सामान्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाला सत् बन जायगा तो सत्ता भी द्रव्य कहलाने लगेगा। और भी देखो! आकाश तो एक ही है। अब उसमें सामान्यका क्या सम्बन्ध? सामान्य तो उसमें सोचना पड़ता है जहाँ अनेक हों! अनेकमें एकत्वका बोध करानेके लिए सामान्यका प्रयोग होता है? अब आकाश तो खुद एक ही है, उसमें सामान्य क्या सम्भव है? इससे पदत्व हेतु अनेकान्तिक दोषसे युक्त है। साथ ही इस अनुमानमें जो दृष्टान्त दिया गया है वह साध्यसे रहित है। दृष्टान्त दिया गया है पट आदिक पदोंका। किन्तु पटादिक पदोंमें व्यक्तिसे भिन्न कोई एक सामान्य निमित्त होता हो सो नही है। नित्य व्यापक पदार्थकी जब सिद्धि नही है तो उस निमित्तका सम्बन्ध कहना तो अयुक्त बात है।

व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तनिबन्धनक जाति सिद्ध करनेके लिये दिये हुए हेतुका नगरसे व्यभिचार - शंकाकार कहता है कि देखो! वर्णविशेषसे ब्राह्मणकी पहिचान ठीक न हो सकी तो मत होने दो अर्थात् जो मानते हो कि जो गौर वर्णके हों वे ब्राह्मण हैं तो ऐसा कहनेपर व्यभिचार दोष आता है। जो ब्राह्मण नही हैं ऐसे भी लोग गौर वर्णके देखे जाते हैं। अध्ययन भी ब्राह्मणका निर्देशक नही है क्योंकि बुद्धि सबके है, जो चाहे कहीं भी पुस्तक उठाकर अध्ययन करने लगे। आचरण क्रिया काण्ड भी ब्राह्मणत्वके सूचक नही हैं, इनको भी जो चाहे कर सकता है। यज्ञोपवीत किसीको भी पहना दिया गया, उससे ब्राह्मण कहलाये सो भी नही है क्योंकि कोई भी पहिन सकता। तो यों ये अगर ब्राह्मण्य जातिके सूचक नही हैं तो रहें लेकिन वर्ण विशेष अध्ययन आचार यज्ञोपवीत आदिसे व्यतिरिक्त निमित्तके कारण ब्राह्मण यह ज्ञान होता है, क्योंकि ब्राह्मण्यके ज्ञानमें वर्ण विशेष अध्ययन आचार आदिक निमित्तसे होने वाली जो बुद्धि है उससे कुछ विलक्षण ही है यह ब्राम्हणका बोध। तो जैसे जो बात गायमें पायी जाय और घोड़ेमें भी पायी जाय तो उस निमित्तसे गाय सामान्य न कहा जा सकेगा, किन्तु जो उनसे व्यतिरिक्त हों, अश्वादिकमें जो चिन्ह पाये जाते हों उनसे भिन्न किसी एक निमित्तसे गौ जाति कहलाती है। इस शंकाका उत्तर देते हुए कहते हैं कि फिर तो नगर यह भी एक पद है। उस नगरमें व्यक्तिसे भिन्न कोई एक निमित्त बतलावो क्या है? नगर आदिकमें कोई एक निमित्त नही है, सामान्य नही है, कोई नगरत्व नही होता और फिर भी यह नगर है इस प्रकारका पद वैलक्षण्य पाया ही जा रहा है इस कारण वर्ण विशेष आदिकसे व्यतिरिक्त किसी निमित्तके कारणसे ब्राह्मण यह संज्ञा हुई, यह भी अनेकान्तिक दोषसे दूषित हो गया क्योंकि नगर आदिकके ज्ञान करनेमें उस व्यक्तिसे भिन्न अनुवृत्त प्रत्ययका कारणभूत अर्थात् यह भी नगर, यह भी नगर इस तरह अनुवृत्त ज्ञानका कारणभूत कुछ भी बात नही है। नगरमें हुई क्या बात कि काठ, पत्थर, ईंट आदिक कुछ ऐसे विशिष्ट समीपताके ढङ्गसे लगे हुए हैं कि वे महल आदिक कहलाते हैं। और, महल आदिक व्यवहारके कारणसे ज्ञान आदिकका व्यवहार बनता है। तो जैसे ब्राह्मणमें नित्य व्यापक ब्राह्मणत्व सिद्ध करते हो, सिद्ध होता तो नही है, पर जिस हेतुसे सिद्ध करते हो उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हेतुसे नगरमें व्यभिचार बताया गया है। मनुष्यमें मनुष्यत्व तो कुछ बता सकते, धर्म-रूपसे ही सही, पर नगरमें नगरत्व क्या कहलाता है ? इससे तो कोई सामान्य जाति सिद्ध नहीं होती।

प्रत्यक्षबाधित अर्थके अभिधायक आगमकी अप्रमाणता — शंकाकार कहता है कि ब्राह्मण और ब्राह्मण्यका तो आगममें भी बहुत वर्णन है। ब्राह्मणको यज्ञ करना चाहिए ब्राह्मणको भोजन करना चाहिए आदिक बातें आगममें कही हैं और वह भी ऐसे वैसे आगमके नही, अपौरुषेय आगममें। (शंकाकार तो वेदको अपौरुषेय) आगममें ब्राह्मणका आदर बताया है। यज्ञ करना, भोजन कराना आदिक तो उससे ब्राह्मण जाति क्यों न सिद्ध होगी। उत्तरमें कहते हैं कि ये आगम इस ब्राह्मण्य जातिके सिद्ध करनेमें प्रमाणभूत नहीं हैं। ब्राह्मणको यज्ञ करना चाहिए, ब्राम्हणको भोजन करना चाहिए आदिक आगम प्रमाणभूत नहीं हैं ब्राह्मण्य जाति को सिद्ध करने के लिये क्योंकि ये प्रत्यक्ष वाधित अर्थको बतला रहे हैं। और सिद्ध कर रहे हैं कि प्रत्यक्ष वाधित अर्थ है ब्राह्मण्य। ब्राह्मणमें नित्य एक ब्राम्हण्य जाति प्रत्यक्ष वाधित है अब तुम्ही कहो कि और प्रत्यक्ष वाधित अर्थ को जो कहे वह प्रमाण होगा या अप्रमाण ? जैसे कोई कहे कि आग ठंडी है और इसकी सिद्धिके लिये बड़ी बड़ी युक्तियां भी दे फिर भी यह बाद सिद्ध हो ही नहीं सकती क्योंकि प्रत्तक्षवाधित है। और प्रत्यक्षवाधित अर्थसे क्रिया वाले जो वचन हैं वे प्रमाणभूत नहीं है। देखा—सूई की नोकपर १०० हाथी बैठे हैं। अब यहां कोई कहे कि यह तो प्रत्यक्ष वाधित अर्थ है कैसे सूईकी नोकपर १०० हाथी बैठे हैं ? तो प्रत्यक्ष वाधित अर्थको बताने वाले वचन प्रमाणभूत तो नहीं होते। तो इसी तरह जब ब्राम्हण्य जाति कोई प्रत्यक्षसे नहीं मालूम देती, फिर उसको सिद्ध करनेके लिये, प्रत्यक्षवाधित ब्राम्हण्यको सिद्ध करनेके लिये यदि आगम वचन भी बताये जायें तो वे प्रमाण नहीं हो सकते।

क्रिया आचरणसे वर्णाश्रमकी व्यवस्था अब शंकाकार कहता है कि ब्राम्हण्य आदिक जाति मिटा देनेपर वर्णाश्रमकी व्यवस्था कैसे होगी ? जो न भी मानते हों चार तरहके वर्ण तो इतना तो हर एक कोई मानेंगे कि ब्रह्मचारी है, गृहस्थ है, साधु है यों ही वर्ण सही, और वैसे भी वर्ण सही। वर्णाश्रमोंकी व्यवस्था कैसे बनेगी, क्योंकि वर्णाश्रमोंकी व्यवस्था तो ब्राह्मण्य आदिक जातियोंके आधीन है। और फिर वर्णाश्रमके कारणसे वर्णव्यवस्थाके कारण जो तपश्चरण दान आदिकका व्यवहार होता है वह कैसे घटित होता है। ब्राह्मणको दान देना चाहिए तपस्या करना चाहिये, यह बात फिर कैसे घटित होगी ? उत्तर देते हैं कि यह कहना भी तुम्हारा मिथ्या है क्योंकि वर्णाश्रमोंकी व्यवस्था तो उस व्यक्ति विशेषमें बन जायगी जो क्रिया विशेष कर रहा, यज्ञोपवीत आदिक चिन्होंसे युक्त हो रहा, उनमें व्यवस्था

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन जायगी और उनसे व्यवहार बन जायगा ब्राह्मण्य जाति कुछ एक रहती है और वह जिस व्यक्तिमें चिपकी हो वह ब्राह्मण है यह तो सिद्ध नही होता। व्युत्पत्तिसे यह अर्थ निकला कि जो ब्रह्मको जाने सो ब्राह्मण। जो आत्मस्वरूपको जाने ऐसे ज्ञानी को ब्राह्मण कहते हैं। तो अब देखिये—यह क्रिया विशेष आचार ज्ञान इनके आधार से व्यवस्था बनी न कि ब्राह्मण कोई नित्य एक जाति है और उसका कोई सम्बन्ध जुट जाय सो ब्राह्मण कहलाये यह बात न बनी, अन्यथा देखो –परशुरामने इस सारी पृथ्वीको क्षत्रियरहित कर दिया था, फिर किसी ब्राह्मणको वह पृथ्वी दी। अब उस पृथ्वीमें फिर क्षत्रियोंकी उत्पत्ति कैसे हो गयी? जब क्षत्रिय ही न रहे तो जो भी उत्पत्ति होगी वह सब अक्षत्रिय है। लेकिन बादमें क्षत्रिय माने गए और क्षत्रियका व्यवहार चलने लगा। इससे सिद्ध है कि क्षत्रिय माना जाना कोई क्षत्रियत्व जातिके आधारपर नहीं है। जिन्होंने शास्त्राभ्यास किया, प्रजाकी रक्षाका व्रत लिया उन्हें क्षत्रिय बोलने लगे। अथवा जैसे कि परशुरामने इस पृथ्वीको किसी समय क्षत्रिय रहित कर दिया था वैसे ही किसीने इस पृथ्वीको ब्राह्मण रहित कर दिया था उस पृथ्वीको किसी क्षत्रियको ही दी होगी। जब पृथ्वी ब्राह्मणरहित हो गई तो फिर ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति कहांसे हुई? इससे सिद्ध है कि यह किसी नित्य जातिकृत व्यवहार नही है। किन्तु क्रियाविशेष आदिकके कारणसे यह ब्राह्मण्य आदिकका व्यवहार होता है। तो यह आगम वचन प्रमाणभूत नहीं है जो कि प्रत्यक्षबाधित अर्थको बताये।

प्रत्यक्षबाधित अर्थको करने वाले आगमोपदेशमें प्रमाणताका अभाव— प्रत्यक्षबाधित अर्थको बताने वाले आगमकी प्रमाणताको उक्त निराकरणसे यह कहना कि ब्राह्मण्य जातिको सिद्ध करनेमें त्रैवर्णिक उपदेश प्रमाणभूत है। याने आगममें जो वर्णन किया गया है कि त्रैवर्णिककी यह व्यवस्था है तो यदि ब्राम्हण न माना जाय तो यह त्रैवर्ण्य कहांसे आया? उससे भी सिद्ध है कि ब्राम्हण कोई जुदा है यह कहना भी निराकृत हो जाता है, क्योंकि यह भी बात असंगत है, इन वचनोंमें भी निर्दोषता का भाव नहीं है। बहुतसे आदमी ऐसे देखे जाते हैं कि ब्राम्हण तो थे नहीं, कुलसे तो शूद्रादिक थे, पर कुछ क्रिया कलासे, संगतिसे, दूसरे देशमें पहुँचनेसे वे ब्राम्हण रूपसे व्यवहारमें आने लगे। और, तीनों वर्णोंके लोग बिना विवादके उन्हें ब्राम्हण बोलने लगे। इससे सिद्ध है कि त्रैवर्णिक उपदेश निर्दोष तो नहीं हो सकता। यह नही बताया जा सकता कि यह वस्तुतः ब्राम्हण है। जो भी करने लगे क्रियायें, ब्राम्हण नामसे व्यवहार उसका होने लगता है। इस कारण जो जातिकी कल्पना की है कि नित्य है, एक है, सर्वव्यापक है, उस जातिका जिसमें सम्बन्ध होता है उसको उससे बोलने लगते हैं। ऐसी कोई जाति नित्य व्यापक नहीं है। तो सामान्य पदार्थोंकी सिद्धि नही होती और न जातिकी सिद्धि होती है।

जातिसे व्यवहारकी अव्यवस्था—और भी देखिये! यदि कोई जाति

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती तो कोई ब्राम्हणी यदि वेश्यावृत्ति करने लगे तो भी उसकी ब्राम्हण्य जाति न खतम होनी चाहिये और उसकी फिर तो निन्दा भी न की जानी चाहिए। क्योंकि वह ब्राह्मणी तो जन्म पर्यन्त ब्राह्मण्य जातिमें ही रहेगी। तो ब्राह्मण्य जाति माननेपर यह दोष आता है शंकाकारके मन में। जाति तो ज्योंकी त्यों मौजूद है उस ब्राम्हणी में। जैसी जन्ममें थी वैसी अब भी है, शरीर तो वही है। शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली तुम जाति बताते हो और यदि जाति होनेपर भी वेश्याके घरमें रहकर वेश्यावृत्ति करने वाली ब्राम्हणीकी निन्दा होती है तब तो गोत्वसामान्यसे भी वह ब्राम्हण्य जाति निकृष्ट हो गयी, क्योंकि गाय तो अगर किसी चाण्डालके घर चली जाय तो भी वह गाय दान देने योग्य है, दूध देती है, उसका दूध सभी लोग ले जा सकते हैं। तो उस ब्राम्हणीसे यह गाय श्रेष्ठ है जो कि चाण्डालके घर रहकर भी पवित्र रह सकी। इससे सिद्ध है कि यह सब क्रियाविशेषपर आधारित है। जब कोई क्रियासे भ्रष्ट होता है तो उसे ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य आदिक नामोंसे नही बोल सकते। जाति नामक कोई पदार्थ नही है जिसके सम्बन्धसे ब्राम्हण क्षत्रिय आदिक जातियाँ कहलायें। ये जाति ये वर्ण क्रियाविशेषके आधारपर अवलम्बित हैं।

जाति विशिष्टताके कारण क्रिया भ्रष्टताकी भी अशक्यता—यह आपत्ति देनेपर कि ब्राह्मण्य कोई नित्य एक जाति होती तो वेश्याके घरमें रहने वाली ब्राह्मणीसे फिर ब्राह्मण्यका अभाव न होना चाहिए और निन्दा न होनी चाहिये। इस पर शंकाकार कहता है कि क्रिया आचरणके भ्रष्ट हो जानेसे ब्राह्मणी आदिककी वहाँ निन्दा होती है और वह ब्राह्मणी निद्य है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात कैसे बन सकती है क्योंकि तुमने नित्य एक जाति मान ली। तो जब वह जाति वहाँ बराबर मौजूद है तो उस जातिसे विशिष्ट वस्तुका तो निश्चय है ही। अर्थात् ब्राह्मण्य जातिसे विशिष्ट वह ब्राह्मनी तो है ही, फिर जैसे वैश्याघरमें प्रवेश करनेसे पहिले वह ब्राह्मणी निन्द्य नही है, इसी तरह अब भी निन्द्य न होना चाहिए और क्रिया भ्रष्टता भी नही हो सकती है क्योंकि जाति तो सदा है और जाति विशिष्ट वस्तु है तो क्रियाका भ्रंश कैसे हो सकता है, क्योंकि ब्राह्मणत्व जातिसे विशिष्ट व्यक्तिका निर्णय तो क्रिया की परिणतिका निमित्त माना गया है। चाहे वह क्रिया भ्रष्ट भी हो रही न भी हो रही। जब व्यक्तित्व ब्राह्मण जातिसे सहित है तो वहव्यक्तित्व तो अब भी है अर्थात् ब्राह्मण जातिसे विशिष्ट ब्राह्मण जातिका निश्चय तो अब भी है ऐसा तुम मान भी रहे हो फिर क्यों नहि उक्त दोष होगा। इस कारण जाति नामक पदार्थकी सिद्धि नही होती। अब दूसरी बात यह है कि कियाके भ्रष्ट होनेपर यदि जातिकी निवृत्ति मानते हो तो जो नमस्कारही न पुरुष हैं उनमें फिर जातिकी निवृत्ति मान लेना चाहिये, क्योंकि क्रिया भ्रष्टताकी उसमें अविशेषता है अर्थात् जो शूद्रादिकके घरमें नही है, अपने ही घरमें है फिर भी क्रियासे भ्रष्ट है तो जैसे वेश्याके घरमें रहने पर ब्राह्मणी की क्रिया भ्रष्टताकी बात कहकर जातिकी बात कही थी तब फिर घरमें भी रहकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो क्रियासे भ्रष्ट हों ऐसे उन व्यक्तिकोंकी भी जातिकी निवृत्ति हो जायगी। वह जाति न रहेगी। तब नमस्कार हीन पुरुषमें भी जाति न कहलाये, क्योंकि क्रिया भ्रष्टता इसमें भी उस ही की तरह है। अब दूसरी बात सुनिये कि तुमने जातिका कारण क्रिया नही माना है, क्रियाको जातिका कारण और व्यापक भी नही माना है तब फिर क्रियाकी निवृत्ति होनेपर जातिकी निवृत्ति कैसे हो जायगी? क्रियाकी निवृत्ति होनेपर उस जातिकी निवृत्ति तब ही सम्भव है जब कि क्रियामें जातिका कारण हो अथवा जातिका व्यापक हो। यदि कारण अथवा व्यापक हुए बिना एककी निवृत्तिसे दूसरेकी निवृत्ति होने लगे तो घटकी निवृत्ति होनेपर पटकी भी निवृत्ति हो जावे अर्थात् कोई पुरुष कमरेसे घड़ा उठा लावे तो साथमें कपड़ा भी उठ जाना चाहिए। सो जातिका कारण अथवा व्यापक यह कुछ भी न बन सका। और फिर क्रियाका भ्रंश होनेपर जातिमें विकार कैसे आ जायगा? जबकि तुमने जातिको नित्य निरवयव निर्विकार भिन्नोंमें अभिन्न रूपसे रहने वाली मानी है तो भला जो विकृत नही हुआ है उसकी निवृत्ति कैसे सम्भव है? अविकृत जातिकी निवृत्ति मान लोगे, अविकृत पदार्थका अभाव मान लोगे तो आत्मा आकाश आदिक जो कि नित्य अविकृत माने गए हैं उनका भी कभी अभावसे हो जायगा।

जीव, शरीर व उभयमें ब्राह्मण्यका अभाव—अच्छा अब यह बतलावो कि यह जो ब्राह्मत्व है वह तुम किसका मानते हो? क्या जीवका मानते हो या शरीरका या जीव और शरीर दोनोंका? अथवा संस्कारका या वेदके अध्ययनका। अन्य उपाय तो इसमें सम्भव नही हैं। यदि जीवका ब्राह्मणत्व मानते हो तो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादिक जीवोंका भी ब्राह्मण्य मानना चाहिये। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंमें भी जीव हैं यदि ब्राह्मणत्व जीवका मानते हो तो सभी जीवोंमें ब्राम्हणपना आ जाना चाहिए। उन ५ विकल्पोंमें से जीवका ब्राम्हणत्व माननेपर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिक सभीमें ब्राम्हणका प्रसंग आ जायगा क्योंकि जीव ये भी हैं। तो जीवका ब्राम्हणत्व सिद्ध नही हो सकता। यदि शरीरका ब्राम्हणत्व मानते सो तो वह बात तो असम्भव है क्योंकि शरीर है पंचभूतात्मक। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनका जो समूह है तन्मात्र शरीर है। ये पंच भूत प्रत्येक पुद्गलमें पाये जाते हैं। जैसे घट है तो उसमें मिट्टी है ही, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदिक भी किसी न किसी अंशमें मौजूद हैं तो उनमें भी ब्राम्हणपन जानना चाहिए। तो जैसे घट पट आदिकमें ब्राम्हण्य असम्भव है इसी तरह पंचभूतात्मक शरीरमें भी ब्राम्हणत्व असम्भव है। और फिर यह बताओ कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन भूतोंमें अलग अलग, एक एकमें ब्राम्हण्य है या ये सब मिल जायें तब होते हैं? यदि कहो कि एक एकमें वह ब्राम्हण्य है तब जो पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आकाश आदिकमें भी अलग अलगमें ब्राम्हण्य आ जाना चाहिये। और, यदि कहो कि अलग-अलग भूतोंमें तो ब्राम्हण्य नही है किन्तु वे सब भूत जब मिल जाते हैं तब उनमें ब्राम्हण्य आता है। तो घट पट आदिकमें ये सब भूत मिले हुए हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें जब इन भूतोंका समूह मिल गया है तो इसमें ब्राम्हण्य आ जाना चाहिए इमसे शरीरमें ब्राम्हण्त्व माना गया है यह भी सिद्ध नहीं होता। और, जब शरीरमें और जीवमें ब्राम्हण्य सिद्ध न हुआ तो जीव और शरीर दोनोंमें भी ब्राम्हण्य सिद्ध नही हो मकता क्योंकि जो दोष जीवमें दिये गये थे वे ही इस उभयमें आयेंगे। उभय इन दो को छोड़कर कोई अलग तो नही है। जीव और शरीर दोनोंका मिलकर ही उभय कहा गहा है। इससे उभयका ब्राम्हणत्व होता हैं यह भी बात तुम्हारी संगत नही है।

संस्कार व वेदाध्ययनके ब्राह्मण्यका अभाव—यदि कहो कि संस्कारमें ब्राह्मणत्व है याने ब्राम्हणबालकमें उस संस्कारको किया जाय तब उसमें ब्राम्हणत्व आता है यह बात भी युक्त नहीं बैठती। इसका कारण यह है कि संस्कार तो शूद्रके बालकमें भी किये जा सकते हैं यह बात दूसरी है कि ब्राम्हणोंका जोर हो और वे शूद्र बालकमें संस्कार न करें मगर किया जा सकता है कि नहीं ब्राम्हण बालकको यज्ञादिकमें बैठाल कर यज्ञोपवीत देकर ब्राम्हणत्व संस्कार बनाते हैं। यदि शूद्र बालकमें संस्कार के लिये यत्न क्या किया जाय तो किया नही जासकता, और, जब उसमें संस्कार बनाये जा सकते है तो शूद्र बालकमें भी ब्राम्हण्यका प्रसंग आ जायगा। इसी सम्बन्धमें दूसरी बात यह बतलावो कि संस्कारसे पहिले उस ब्राम्हण बालकमें ब्राम्हण्य है या नहीं? जिस क्षण ब्राम्हण बालकमें संस्कार किया जा रहा है उस क्षणसे पहिले भी तो वह बच्चा था तब उसमें ब्राम्हण्य है या नहीं? यदि कहो कि संस्कार किये जानेसे पहिले भी उस बालकमें ब्राम्हण्य है, जन्मसे ब्राम्हण्य है तब संस्कार करनेका कोई मूल्य नहीं यदि कहो कि संस्कारसे पहिले ब्राम्हणके बालकमें ब्राम्हण्य न था तो संस्कार करना व्यर्थ है। जिसमें ब्राम्हण्य नही है उसमें कितने ही सस्कार करें, ब्राम्हण्य न होनेपर भी अर्थात् अब्राम्हणके संस्कार करनेपर ब्राम्हणत्व मानते हो तो शूद्र भी अब्राम्हण हैं। संस्कार करनेसे उसमें भी ब्राम्हणत्व मान लेना चाहिए संस्कार कराया जानेपर शूद्रमें ब्राम्हणका निवारण कौन कर सकेगा? इस तरहसे संस्कारके ब्राम्हणत्व होता है यह भी बात युक्त नहीं है। यदि कहो कि वेदाध्ययनके ब्राम्हणत्व है तो यह भी बात युक्त नही है क्योंकि वेदका अध्ययन शूद्रोंमें भी सम्भव है। कोई शूद्र अन्य देशमें जाकर वेदाध्ययन करता है तो उसे भी ब्राम्हण मान लेना चाहिए, पर शकाकारने वेदाध्ययन मात्रसे ब्राम्हणत्व स्वीकार नहीं किया। किन्तु जातिसे, जन्मसे ही ब्राम्हण्य जातिके सम्बन्धसे ब्राम्हणत्व स्वीकार किया। तो वेदाध्ययनके ब्राम्हणत्व है यह पक्ष भी युक्त नहीं होता।

जाति और तिर्यक सामान्यके सम्बन्धमें निष्कर्षात्मक उपसंहार—उक्त विकल्पोंसे जातिका विचार करनेपर निश्कर्ष क्या निकला कि ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिककी व्यवस्था सदृश क्रिया परिणमन आदिकके कारण है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ब्राम्हणके योग्य जो क्रियायें बताई गयी हैं उन्हें तो करें उनमें ब्राम्हणत्वकी व्यवस्था है। क्षत्रियोंको प्रजाके रक्षणका आचरण करे सो क्षत्रिय है यह व्यवस्था बनती है। वैश्य वे जो व्यापार करें और शूद्र वे जो दूसरोंकी सेवा करें, ऐसी वर्ण व्यवस्था है। तो इसी तरहसे सभी जगह समझ लेना चाहिए कि सदृश परिणाम समानताके ज्ञान का कारण होता है और वही तिर्यक् सामान्य कहलाता है। इस प्रकरणमें मूल बात यह चल रही थी कि प्रमाणका विषय क्या होता है ? तो बताया गया कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है। तो उस सामान्यके भेद किये गए तिर्यक सामान्य और ऊर्द्धता सामान्य। तिर्यक् सामान्य कहते हैं एक कालमें अवस्थित हुए अनेक व्यक्तियोंके सदृश परिणमनको। जैसे अनेक गायें बैठी हैं, उन गायोंमें गाय सामान्य कहा। तो यह समस्त गायोंमें जो धर्म एक समान नजर आ रहा है उस ही धर्मको सामान्य कहते हैं। तिर्यक् सामान्य सदृश परिणामोंसे समझा जाता है, लेकिन ऐसा न मानकर मीमांसक लोग द्रव्य गुण कर्मकी तरह सामान्य नामका भी पदार्थ मानते हैं और सामान्य नामक पदार्थसे ही जातिका बोध कहते हैं अर्थात् जैसे नित्य एक व्यापक जाति भी मानी जाती है जाति भी सामान्यका एक प्रकार है। तो जैसे सामान्य पदार्थोंकी अलग सत्ता सिद्ध नहीं होती इसी प्रकार जातिकी भी सत्ता अलग सिद्ध नहीं होती। जैसे क्षत्रियत्व कोई नित्य एक व्यापक हो और उसके सम्बन्धसे क्षत्रिय कहलाये यह बात सम्भव नहीं है इसी तरह ब्राम्हणत्व एक नित्य व्यापक हो और फिर ब्राम्हणत्वके सम्बन्धसे ब्राम्हण कहलाये यह भी बात युक्त नहीं हो सकती, ये पदार्थ स्वयं सत् हैं। स्वतः सिद्ध हैं, अपने धर्मस्वरूप हैं। अब कुछ विवेचन करने वाले लोग उस पदार्थमेंसे जब यह विवेक करते हैं कि देखो--कुछ धर्म तो यहां ऐसे नजर आ रहे हैं कि अनेक व्यक्तियोंमें पाये जाते हैं। कुछ धर्म ऐसे सिद्ध होते हैं जो केवल उस हीमें हैं अन्य व्यक्तियोंमें नहीं पाये जाते हैं। बस इन्हीं साधारण और असाधारण धर्मोंके परिचयपर सामान्य विशेषकी व्यवस्था होती है। इस प्रकार तिर्यक सामान्यके स्वरूपकी सिद्धि की कि यह सामान्य सदृश परिणामका नाम है। सदृश परिणामको एक दृष्टिमें रखकर जो एकत्वके ज्ञानके निकट लाने वाला भाव है उसका नाम सामान्य है। अब ऊर्ध्वता सामान्यका स्वरूप कहते हैं—

परापरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्ध्वत्ता मृदिव स्थासादिषु ।। ४–६ ।।

ऊर्ध्वता सामान्यका वर्णन—पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें व्यापकर रहने वाला जो द्रव्य है वह ऊर्ध्वता सामान्य है। जैसे कि—घट आदिक पर्यायोंमें रहने वाली जो मिट्टी है उसही प्रकार पूर्वापर पर्यायोंमें रहने वाला जो द्रव्य है उसे उर्ध्वता सामान्य कहते हैं, शंकाकार कहता है ऊर्ध्वता सामान्यका विरोधी शंकाकार कौन हो सकता है, क्षणिकवादी जो पूर्वापर पर्यायोंमें एक द्रव्य न माने ऐसा तो कोई अनित्यवादी ही हो सकता है। तो यहाँ शंकाकार कहता है कि पूर्व और उत्तर पर्यायको छोड़कर दूसरा कोई उन पर्यायोंमें व्यापी द्रव्य हो ऐसी प्रतीति ही नहीं होती है। इस कारण द्रव्य

http://sahjanandvarnishastra.org/

असत् है, फिर सामान्यका यह लक्षण कहना कि पूर्व और उत्तर पर्यायमें व्यापकर जो द्रव्य रहता है वह ऊर्ध्वता सामान्य है, सही लक्षण नही है, क्योंकि पर्यायोंको छोड़कर और कोई द्रव्य है ही नही। उत्तर देते हैं कि यह बात सही नही है, क्योंकि पदार्थोंके अन्वयी रूपसे प्रतीति प्रत्यक्षसे ही हो रही है। पर्यायें बराबर व्यतीत होती जाती हैं और उनमें व्यापकर रहने वाला पदार्थ है कोई, ऐसा प्रत्यक्षसे ही विदित होता है और इन पदार्थोंकी इस तरहसे स्वप्नमें भी प्रतीति नही होती कि ये प्रतिक्षण मूलसे नष्ट हो रहे हैं। बल्कि साधारण जनोंको भी इसके विषयमें ऐसी प्रतीति रहती है और जैसे कि तुम्हें पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें व्यावृत्त प्रत्ययका ज्ञान होता है और एक पर्यायसे दूसरी पर्यायका अभाव प्रतीत हो रहा है इसी तरहसे उन सब पर्यायोंमें रहने वाला जो एक सामान्य द्रव्य है, जैसे मोटे दृष्टान्तमें मिट्टीके अनुवृत्त ज्ञान भी होता है। जैसे हमें यह ज्ञान होता है कि बचपन है सो जवानी नही, जवानी है सो बुढ़ापा नहीं। एक दशामें दूसरी दशाका अभाव है। जैसे हमें इन पर्यायोंमें परस्पर अभाव विदित होता है इसी प्रकार कोई एक जैसे मनुष्यत्व सदा अनुवृत्तिरूपसे प्रतीत होता है इससे द्रव्यकी सिद्धि है और उस ही द्रव्यको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं।

क्षणिकबुद्धि द्वारा त्रिकालव्यापी द्रव्यकी अप्रतीतिकी शंका—अब शंकाकार कहता है कि देखो—एक पदार्थके स्थित होनेका, ध्रुव होनेका अर्थ क्या है, एक पदार्थ व्यापक सदा रहता है इसका अर्थ यही तो हुआ ना कि वे पदार्थ तीन कालमें अनुयायी हैं। याने सब कालोंमें बराबर चल रहे हैं। तो यह बतलावो कि तीन कालमें जो चल रहा है ऐसा जो वह एक है उस एककी इस स्थितिका इस दशाका क्या तुम्हें एक साथ ज्ञान हो गया है या क्रमसे ज्ञान हुआ है ? अर्थात् तीनों दशाओंमें रहने वाला यह एक है उस एकका ज्ञान अर्थात् तीनों कालमें रहने वाला इसका ज्ञान तुम्हें एक ही बारमें हो गया या क्रमसे होता है ? यदि कहो कि एक बारमें ही हो गया तो इसके मायने यह हुआ कि फिर तुमको एक साथ ही जन्मसे लेकर मरण तककी सब घटनाओंका ज्ञान हो गया क्या ? जैसे मनुष्यत्व क्या है कि शिशु अवस्थासे लेकर मरण पर्यन्त तककी जितनी दशायें हैं उनमें जो भी रहता है उसका नाम मनुष्यत्व है। और उस मनुष्यत्वका एक ही बारमें ज्ञान कर लिया इसका अर्थ यह है कि उन १०० वर्षोंकी सारी घटनाओंको तुमने एक साथ जान लिया। तब तो मरण पर्यन्त तककी सारी बातोंका ज्ञान हो जाना चाहिए, पर होता कहां है ? इससे सिद्ध है कि उस एकका ज्ञान नहीं हो रहा है तीनों कालमे, तीनों कालकी सब घटनाओंका ज्ञान हो तब तो कहा जायगा कि तुमने एकका ज्ञान किया। जैसे मालाके १०० दानोंमें एक सूत पिरोया हुआ है तो कहते कि इन १०० दानोंमें पिरोया हुआ जो सूत है हम उसका ज्ञान कर रहे हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि १०० दानोंका एक नजरमें ज्ञान हो गया। १००

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दानोंके बीचमें जितना लम्बा सूत है उस सारेका ज्ञान हुआ तब एक सूतका ज्ञान हुआ समझिये। तो इसी तरह तीन कालमें रहने वाला जो एक द्रव्य है उसका ज्ञान हुआ इसका अर्थ तो यह है कि तीन कालकी सब पर्यायोंका ज्ञान हुआ, फिर उसमें व्यापने वाला यह द्रव्य है यह निश्चय हो सकेगा। पर ऐसा तो है नहीं कि मरणपर्यन्तकी सब बातें किसीके ग्रहणमें है। इस कारणसे एक द्रव्य नहीं है, केवल वह पर्याय शब्द से कहते हो, हम उसे अर्थ पदार्थ शब्दसे कहते हैं। और, यदि उस एककी स्थिति की प्रतीति क्रमसे मानोगे तो भला क्षणिक बुद्धिमें एककी इस स्थितको जाननेमें कोई सामर्थ्य नही है हम आप सबका ज्ञान क्षणिक है। इस समय हो रहा है, अब मिट गया और द्रव्य है तीनों कालकी पर्यायोंमें। तो क्षणिकज्ञान जब उन तीनों कालकी पर्यायोंमें अनुयायी द्रव्यको समझनेके लिए समर्थ नहीं है।

क्षणिक बुद्धिसहाय अक्षणिक आत्मद्वारा पूर्वापरव्यापी द्रव्यकी प्रतीति—शंकाकारकी उक्त शंकाका समाधान देते हैं कि यह कहना अयुक्त है कि तीनों कालमें अनुयायी होनेका नाम है एक पदार्थकी स्थिति है और उसका ग्रहण न क्रमसे होता न अक्रमसे होता, यह बात अयुक्त है, क्योंकि बुद्धि यद्यपि क्षणिक है, ज्ञान जो हम करते हैं वह ज्ञान क्षणिक है तो भी जानने वाला तो क्षणिक नहीं है। आत्मा तो सनातन है, वह तो क्षणिक नही है। तब प्रत्यक्ष, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान आदिक ज्ञानोंकी सहायता लेकर यह आत्मा ही पदार्थोंके उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूपको जानता है, जानने वाला आत्मा है और उसका साधन है क्षणिक बुद्धि, क्षणिक ज्ञान, क्षायोपशमिक ज्ञान। तो भले ही वह ज्ञान क्षणिक रहा, पर जानने वाला जो आत्मा है वह क्षणिक नही है। इस कारण उन क्षणिक बुद्धियोंकी सहायता लेकर आत्मा ही पदार्थोंका उत्पादव्यय-ध्रौव्यस्वरूप जान लेता है। जैसे कि घट और कपालका विनाश और उत्पाद प्रत्यक्षका सहाय लेकर यह आत्मा जाना जाता है इसी प्रकार प्रत्यक्षका सहाय लेकर मिट्टी आदिक रूपसे उसकी स्थितिको भी आत्मा जान लेता है। घटका जैसे विनाश हुआ, खपरियोंका उत्पाद हुआ तो यह विनाश और उत्पाद देखो प्रत्यक्षसे ज्ञानमें आ रहा है ना, तो क्या इस तरहसे विनाश उत्पाद होनेपर भी उन सबमें वही मिट्टी है, वही पिण्ड है, वही स्कन्ध है, क्या ऐसी ध्रुवता भी ज्ञात नही हो रही ? यह भी जाना जा रहा है।

भेदप्रतिभासवत् एकत्वप्रतिभासकी भी समीचीनता—अन्य पदार्थ और बाह्य पदार्थ दोनोंमें भेद ही प्रतिभासमें आता है। एकत्व प्रतिभासमें नहीं आता है। यह बात नहीं कह सकते। अन्तः पदार्थ तो हुए सुख दुःख आदिक बाह्य पदार्थ हुए घट पट आदिक। तो घट पट आदिकमें भेद ही भेद नजर आते हैं। याने क्षण क्षणवर्ती भिन्न–भिन्न पर्यायें ही प्रतिभासमें आती हैं और वहां एकत्व प्रतिभासमें नही आता। इसी तरहसे अन्तः सुख दुःख आदिक ये परिणमन ही प्रतिभासमें आते हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसमें अनुयायी कोई आत्मा प्रतिभासमें नहीं आता, एकत्व ज्ञानमें नहीं होता । यह भी बात नहीं कह सकते, क्योंकि यदि यह हठ बनाओगे कि एकत्व प्रतिभासमें आता ही नहीं है तब फिर क्षणिक सिद्ध करनेका अनुमान देना व्यर्थ हो जायगा । जो यह अनुमान दिया जाता है कि सर्वं क्षणिक सत्वात् । विश्वमें जो कुछ है वह सब क्षणिक है क्योंकि सत्त्व होनेसे, यह क्यों व्यर्थ हो जायगा कि अनुमान तुमने किस प्रयोजनसे दिया ? क्या एकत्वकी प्रतीतिका निराकरण करनेके लिए क्षणिकत्वका अनुमान दिया है या क्षणिकत्व सिद्ध करनेके लिये यह अनुमान बनाया गया है ? एकत्वकी प्रतीतिके निराकरणके लिए ही अनुमान बनाया गया है । देखो क्षणिकत्व सिद्ध करने के लिए अनुमान नहीं बताया गया तुम्हारे सिद्धान्तमें क्योंकि पदार्थकी क्षणिकता प्रत्यक्षसे ही जान ली गई माना है तो जो बात प्रत्यक्षसे जान ली गई उसका फिर कोई अनुमान भी बनता है क्या ? जैसे रसोई घरमें भोजन करने वाला पुरुष धुवां और अग्नि आदिक प्रत्यक्षसे देख रहा है क्या वहां वह यह अनुमान बनाता है कि इस रसोईघरमें आग है क्योंकि धुवां होनेसे ? प्रत्यक्ष सिद्ध बातका अनुमान नहीं बनाया जाता । जो पदार्थ तुम्हारे सिद्धान्तमें प्रत्यक्षसे ज्ञात है तो क्षणिकताके ज्ञानके लिए तो अनुमान बनाया नहीं गया है । एकत्वकी प्रतीतिके निराकरणके लिए बनाया गया है । अर्थात् कोई पुरुष इसको ध्रुव न समझलें, एकत्व न समझले, त्रिकाल व्यापता न समझले इसके लिये अनुमान बनाया है । लेकिन तुम कह रहे, हो कि अंतरंगमें और बहिरंग पदार्थोंमें केवल भेद ही भेद प्रतिभासमें नहीं आता, यह कहना फिर तुम्हारा झूठ हो जायगा ना, देखो—एकत्व प्रतिभासमें आया तब तो तुम एकत्व का निराकरण करो जो बात प्रतिभासमें आया तब तो तुम एकत्वका निराकरण करो, जो बात प्रतिभासमें आती ही नहीं उसका निराकरण क्या किया जायगा ? इससे यह मानना चाहिए कि पदार्थमें केवल भेद ही भेद प्रतिभासमें नहीं आता, केवल पर्याय ही पर्याय प्रतिभासमें नहीं आती । त्रिकाल व्यापी पदार्थ भी प्रतिभासमें आता है ।

अतिव्यवहित पर्यायोंमें अनुमानादिकी सफलता—अब शंकाकार कहता है कि देखो—जब प्रत्यक्षसे ही तुमने झट जान लिया अनन्तर अतीत और अनन्तर अनुगत समयमें रहने वाले क्षणोंको, तब स्मरण प्रत्यभिज्ञान, अनुमान ये प्रमाण बनाना निरर्थक है । उत्तर देते हैं कि नहीं, यद्यपि प्रत्यक्षसिद्धमें स्मरण प्रत्यभिज्ञान अनुमान निरर्थक हैं और जो तत्कालकी पूर्व उत्तर पर्यायें हैं उनके जाननेमें चूंकि प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति है उनमें स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, अनुमान बनानेकी आवश्यकता नहीं, लेकिन जो अति व्यवहित पर्यायें हैं कलकी और बहुत दिनकी, घंटा भर पहिले की जो पर्यायें हैं अथवा जो भविष्यकी पर्यायें हैं उनमें तो स्मृतिज्ञान और अनुमान ज्ञान की बराबर प्रवृत्ति होती है सो ये जो दोष दिए गए थे कि नित्य आत्माको पदार्थका ग्राहक मानते हो तो अपने आपमें रहने वाली बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदिक अव-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थायें और पहिला जन्म, भविष्यका जन्म और सारी पर्यायें इनका एक साथ ज्ञान जाना चाहिए, यह बात तुम्हारी ठीक नहीं है। कारण यह है कि आत्मा जानता तो है अर्थका ग्रहण करने वाला आत्मा ही है मगर ज्ञानकी सहायतासे यह आत्मा जानता है और ज्ञान हमारा नियमित है, क्योंकि ज्ञानपर आवरण करने वाले कर्मका जैसा क्षयोपशम होता है वैसा ही ज्ञानका विकास होता है। प्रतिबंधक कर्म प्रकृतिसे क्षयोपशमका उल्लंघन न करके ज्ञानकी प्रवृत्ति होती। अतः आत्मा जानता है और जैसा ज्ञान पाया उस ज्ञानके माफिक उन पर्यायोंको अतीत अनागत जाना करता है, इस से यह दोष देना कि नित्य आत्मा यदि त्रिकालवर्तीको जाना करता है तो एक ही साथ समस्त पर्यायें जान ली जानी चाहिएँ, यह बात युक्त नहीं बैठती है।

युक्ति अनुमान अनुभवसे भी पूर्वोत्तरपर्यायव्यापी द्रव्यकी प्रतीति— अनेक युक्तियोंसे अनुमानोंसे और प्रमाणोंसे भी यह बात सिद्ध होगी कि पूर्वोत्तर पर्यायव्यापी द्रव्य है। अनुमान भी पुष्ट प्रमाण है। जैसे लोकमें कहते कि यह तो अनुमानकी बात है सच नहीं है तो लोक व्यवहारमें अनुमानको लोक कल्पनाके रूपमें लेते हैं। लेकिन प्रमाणके क्षेत्रमें अनुमानको भी उसी प्रकार प्रमाण माना गया है जिस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष प्रमाणमें जैसे संशय विपर्यय आदिक दोष नहीं होते इसी प्रकार अनुमान प्रमाणमें भी ये दोष नहीं होते। सो अनुमान ज्ञान भी एक विशुद्ध और पुष्ट प्रमाण है। प्रत्यक्षसे भी उस व्यापी द्रव्य को जान लिया जाता है। अनुमानसे भी उस व्यापीद्रव्यको जान लिया जाता है। और लोगोंका विश्वास भी हैं अपने आ.के बारेमें, सत्त्वका सबको श्रद्धान है। तो सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व और उत्तर पर्यायमें व्यापका रहने वाला स्थायी कौन है। और वैसे भी सोच लो जो जिसका उपादान है आधार है, सत्त्व है उसका समूल विनाश कैसे हो सकता है? इससे ध्रुव द्रव्य सिद्ध है। समस्त पदार्थ अनादि अनन्त हैं, प्रतिक्षण उनकी दिशा हो रही है। तो उन सब पदार्थोंमें व्यापकर रहने वाला जो एक द्रव्य है उसको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं।

स्मृतिप्रत्यभिज्ञानादि सहाय आत्मा द्वारा त्रैकालिक द्रव्यकी प्रतितीमें प्रश्नोत्तर— शंकाकार कहता है कि द्रव्यके ग्रहण करनेपर अतीत भविष्यत समस्त पर्यायोंका ग्रहण हो जाना चाहिए क्योंकि अतीत आदिक अवस्थायें पदार्थकी पदार्थसे अभिन्न हैं। उत्तर देते हैं कि यह बात यों सही नहीं है कि अभिन्नपना ग्रहणके प्रति कारण नहीं है, अर्थात् कोई धर्म किसी वस्तुसे अभिन्न हो तो यह अर्थ नहीं है कि जितने भी धर्म हैं वे सब ग्रहणमें आ जाने चाहिएँ उसमें एकके जाननेसे। यदि अभिन्न पना ज्ञानमें कारण मानलोगे तो फिर ज्ञानादिक क्षणका अनुभव होनेपर क्षणिक वादियोंके द्वारा माने गए जो ज्ञानक्षण अर्थक्षण हैं—जैसे ज्ञानाद्वैतवादी मानता है कि केवल एक क्षणिक ज्ञान पदार्थका ज्ञान होता है तो अन्य प्रकारके क्षणिकवादी मानते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं कि क्षणक्षणवर्ती जो पदार्थ हैं उन पदार्थोंका ज्ञान होता है। कैसा भी मानो ज्ञानादिक क्षणका अनुभव होनेपर जैसे सत्का ज्ञान हो जाता है, चेतनका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार उसमें क्षणिकताका ज्ञान हो जाना चाहिए और इसमें स्वर्ग भेजने की शक्ति है आदिक शक्तियोंका भी अनुभव हो जाना चाहिए, क्योंकि अब तो तुम यह मान रहे हो कि अभिन्नपना ज्ञानके प्रति कारण है। जो चीज जिससे अभिन्न हो उस एकके जाननेपर वे सब चीजें ज्ञात हो जाना चाहिए तो यह दोष तो सभीके अभिमतमें आ जायेंगे, अतः तथ्यभूत कथन यह है कि जिस पदार्थमें जितने अंशके ज्ञान–परिणमन के आवरणका अभाव है उस ही पदार्थमें जाननेका नियम है अन्य जगह नही है। जिस पुरुषके जिस पदार्थमें जिस धर्म सम्बन्धी ज्ञानके आवरणका विनाश है उस हीका ज्ञान हो सकता है अन्यका नही हो सकता, और इसी कारण यह कहना बिल्कुल सही है कि प्रत्यक्षका सहाय लेकर आत्मा ही अनन्तर अतीत और भविष्यकी पर्यायोंमें एकत्व को जानता है, प्रत्यक्षकी सहाय लेकर आत्मा अनन्तरकी अतीत और भविष्य पर्यायोंको जानता है अथवा उन पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको जानता है और स्मरण प्रत्यभिज्ञानकी सहायता लेकर यह आत्मा अत्यन्त व्यवहित पर्यायोंमें भी एकत्वको जानता है इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहनेवाले एकत्वको जानने वाला यह आत्मा है। यह आत्मा प्रत्यक्षसे ही जान लेता है पूर्व और उत्तरमें पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको। सो यहाँ एकत्वसे लगी हुई पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको प्रत्यक्षकी सहायतासे जानता है और बहुत व्यतीत हुई अतीत पर्यायोंमें और बहुत आगेकी भविष्य पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको यह आत्मा स्मृति और प्रत्यभिज्ञानकी सहायतासे जानता है। और जैसे कि प्रत्यक्षज्ञानमें प्रामाण्य है इसी प्रकार स्मृतिज्ञान और प्रत्यभिज्ञानमें भी प्रामाण्य है। पहिले ही सिद्ध कर चुके हैं।

स्मृति प्रत्यभिज्ञानको अविषय सिद्ध करनेका शङ्काकार द्वारा प्रयत्न–शंकाकार कहता है कि स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषय क्या है ? पहिले जाने गये पदार्थ ! अर्थात् स्मरण और प्रत्यभिज्ञान पहिले जाने गए पदार्थसे आया करता है। तब तो स्मरण और प्रत्यभिज्ञान उस ही समय उन पदार्थोंको जाने जिस समय कि उन पदार्थोंका दर्शन अर्थात् प्रत्यक्ष होता था, क्योंकि जैसे कि उस समय पूर्वकालमें पदार्थ का प्रत्यक्ष हुआ था तो प्रत्यक्ष उस पदार्थका बराबर विषय कर रहा था और पूरा कारण था। तो इसी तरह जब स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषयभूत वह पदार्थ पहिले था और उस समय प्रत्यक्ष भी हुआ था तो उस ही समय क्यों नहीं प्रत्यभिज्ञान होता ? होना चाहिए ! स्मरणने समझा क्या ? पहिले जाने हुए पदार्थको और प्रत्यभिज्ञानने भी पहिले जाने हुए पदार्थको ही विषय किया। तब तो ये दोनों ज्ञान उस ही समय हो जाने चाहिएँ जबकि वह पदार्थ था, पर ऐसा होता तो नहीं है। इससे सिद्ध है कि स्मरण ज्ञान और प्रत्यभिज्ञान उपलब्ध ज्ञान को विषय नहीं करते। निष्कर्ष यह निकला कि स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषय कुछ है ही नहीं। तब यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कहना कि स्मरण और प्रत्यक्षका सहाय रखते हुए यह आत्मा अत्यन्त व्यवहित पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको जान जाता है, कैसे युक्त है इस सम्बन्धमें यह प्रयोग भी बनता है कि जिसकी सम्पूर्णता होनेपर भी जो बात न हो वह उसको विषय करने वाला नही कहा जाता। जैसे कि सम्पूर्ण रूप मौजूद है किन्तु रूपके विषयमें श्रोत्रविज्ञान नही होता अर्थात् कर्णेन्द्रियसे रूप नही जाना जाता, इससे सिद्ध है कि कर्ण इन्द्रियके ज्ञानका विषय रूप नही है। और स्याद्वादियोंके यहाँ भी पूर्व उपलब्ध पदार्थ अविकल है, सम्पूर्णरूपसे है पर पूर्व उपलब्ध पदार्थमें स्मृति प्रत्यभिज्ञान नही हो रहे हैं क्योंकि अब वे पदार्थ हैं ही नही। जब वे पदार्थ थे तब स्मृति प्रत्यभिज्ञान मान नही रहे हो। स्मृति और प्रत्यभिज्ञानका विषय कुछ है ही नही।

स्मृति और प्रत्यभिज्ञानके विषयका विवरण—उक्तशंकाका उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। शंकाकार कह रहा है कि स्मृति होती है पूर्वकालमें जाने हुए पदार्थके सम्बन्धमें। तो जब वह पदार्थ पहिले था तब ही स्मृति हो जाना चाहिए, क्योंकि स्मृतिका विषयभूत पदार्थ तब ही पूर्णरूपसे था। अब तो वह पदार्थ रहा भी नही। स्मृति किसकी करते हो ? यह बात कहना यों युक्त नही है कि पूर्वकालमें जब पदार्थका दर्शन हुआ था उस कालमें स्मृति और प्रत्यभिज्ञान कारणके अभाव होनेसे उत्पन्न नही हुए, क्योंकि स्मृतिका कारण पदार्थ नही है, किन्तु संस्कार जगना कारण है। शंकाकार इस दृष्टिकोणसे शंका कर रहा है कि जितने भी ज्ञान हुआ करते हैं वे सब ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होते हैं। क्षणिकवादमें यह माना ही गया है ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे हुआ करती है। तो स्मृतिने जिस पदार्थको जाना है वह पदार्थ तो पहिले था, अब तो नही है, क्योंकि पदार्थ क्षणिक ही हुआ करता है। तो स्मृतिका कारण तो पहिले था, इस कारण स्मृति पहिले हो जाना चाहिए। उत्तर यह दे रहें हैं कि स्मृति का कारण पदार्थ नही है किन्तु संस्कारका जगना स्मृतिका कारण है। और, संस्कार कहते हैं कालान्तरमें न भूलना इस प्रकारकी धारणा। सो कालान्तरमें न भूलना इस प्रकारकी धारणारूप संस्कार उस पदार्थके प्रत्यक्षके कालमें न था। जिस पदार्थका प्रत्यक्ष किया गया था उस प्रत्यक्ष किये जानेके समयमें कालान्तरमें न भूलना यह धारणा रूप ज्ञान कब था ? न था, क्योंकि वस्तुको जानकर फिर उसके बाद भविष्य कालमें उसे न भूलना यह तो धारणा कहलाती है। तो स्मरण ज्ञानका कारण अब हो रहा है जब कि स्मरण कर रहा। न कि जिस पदार्थका स्मरण कर रहा उस पदार्थका जब प्रत्यक्ष हुआ था तब कारण स्मृतिका था। सो नही है, जैसे किसी पुरुष ने एक वर्ष पहिले अपने मित्रको देखा था अथवा एक वर्ष पहिले किसीने बहुत बड़ी मित्रता कर लिया था। अब आज उस मित्रका स्मरण किया जा रहा है तो शंकाकार का शंका तो यह है कि आज जो स्मरण ज्ञान हो रहा है वह किस पदार्थके सम्बन्धमें हो रहा है ? जिस पदार्थको एक वर्ष पहिले जाना था तो स्मरण ज्ञान एक वर्ष पहिले जाना था तो स्मरण ज्ञान एक वर्ष पहिले ही होना चाहिये, क्योंकि स्मरण ज्ञानका

Version 1

कारणभूत पदार्थ तो एक साल पहिले था, आज तो नही है. लेकिन ये शंकामें ठीक नही जगतीं क्योंकि स्मरण ज्ञानका कारण पदार्थ नही है, किन्तु काल न्तरमें न भूलने रूप धारणारूप ज्ञान अर्थात् संस्कारका जग जाना स्मृतिका कारण है सो यह कारण एक वर्ष पहिले था ही नही अतः एक वर्ष पहिले उस पदार्थके सम्बन्धमें स्मरण अथवा प्रत्यभिज्ञान हो जाय वह दोष नही आ सकता। इसी तरह प्रत्यभिज्ञान भी पूर्वकालमें ही हो जाना चाहिए, इस प्रकारका दोष दिया नही जा सकता क्योंकि प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति होती कैसे है ? पहिले देखे हुए पदार्थका संस्कार बन गया था और उस संस्कारके जगनेसे हुई स्मृति, उसकी सहायता लेकर जो अब दुबारा कुछ दर्शन हो रहा है, यह कारण पड़ रहा है अर्थात् स्मरण और वर्तमान दर्शनके कारणसे जो संकलनात्मक ज्ञान होता है उसे प्रत्यभिज्ञान कहते है तो यह द्वितीय दर्शन और संस्कार जगना यह पूर्वकालमें हो जानी चाहिए, यह दोष नही आ सकता। निर्विवाद स्मरण और प्रत्यभिज्ञानको विषय करके आत्मामें ज्ञान होता है और स्मरण प्रत्यभिज्ञानका सहाय लेकर यह आत्मा पूर्वोत्तर पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको जानता है और वही एकत्व ऊर्ध्वतासामान्य कहलाता है।

आत्मामें अर्थग्रहणसामर्थ्यका सद्भाव व अभावके विकल्पोमें स्मृति आदि ज्ञानोंको निरर्थक सिद्ध करनेकी शंका - अब शंकाकार कहता है कि आत्मा तो केवल ही है अर्थात् प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोंकी सहायता न लेकर अतीत भविष्यत अर्थके ग्रहण करनेका सामर्थ्य रख रहा है तब तो स्मरण आदिक ज्ञानोंकी अपेक्षा करना व्यर्थ हो जायगा। और यदि आत्मा केवल अतीत और भविष्य अर्थ को जाननेकी सामर्थ्य नहीं रखता तब तो स्मरण आदिककी अपेक्षा रखना बिल्कुल ही व्यर्थ है अर्थात् यहां दो विकल्प किए जा रहे हैं कि आत्मा अकेला ही अतीत और भविष्यके पदार्थोंको जाननेकी सामर्थ्य रखता है या नहीं ? यदि अकेला आत्मा अतीत भविष्यत कालके पदार्थोंको जाननेकी सामर्थ्य रख रहा है तब तो उसे स्मरण आदिक ज्ञानोंकी सहायता अपेक्षा लेना आवश्यक नहीं रहा बिल्कुल व्यर्थ हो गया। जब अकेला आत्मा ही अतीत और भविष्यके पदार्थोंको जाननेका सामर्थ्य रख रहा है तब स्मरण आदिक ज्ञानोंकी क्या जरूरत ? और यदि अकेला यह आत्मा भूत भविष्यके पदार्थोंके जाननेकी सामर्थ्य नहीं रख रहा तो जब इस आत्मामें भूतभविष्य के जाननेमें सामर्थ्य ही नहीं है, तब स्मरण आदिक ज्ञानोंकी सहायता लेकर भी नहीं जान सकते। जैसे कि चक्षु इन्द्रियजन्य ज्ञान गंधके ग्रहणमें असमर्थ है तो चाहे कितनी भी स्मृतियां हों, उनकी सहायता मिले तो भी चक्षुरिन्द्रिय जन्य ज्ञान गंधको ग्रहण करनेमें समर्थ नही हो सकता है। इसी तरह आत्मा यदि नहीं जाननेकी सामर्थ्य रखता तो स्मरण आदिक ज्ञानोंकी भी सहाय लेकर कोई भी भूत भविष्य पर्यायको जान नही सकता ? यह शंका है। अब उसका समाधान करते हैं।

आत्माके ज्ञानसामर्थ्य और छद्मावस्थामें प्रतिनियत ज्ञानकी सिद्धि—

http://www.jainkosh.org

शंकाकारका यह कहना अयुक्त है कि आत्मा केवल यदि भूतभविष्य पदार्थोंको जानने है में सामर्थ्य रख रहा है तो उसे स्मरण आदिककी अपेक्षा व्यर्थ है, क्योंकि भूतभविष्य को जाननेकी स्वयं सामर्थ्य पड़ी हुई है और यदि कहो कि आत्मामें भूत भविष्यको जाननेकी स्वयं सामर्थ्य नहीं पड़ी हुई है तो स्मरण आदिक और भी बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। ऐसी शंका करना क्यों युक्त नहीं है कि पहिले तुम आत्माके वर्तमान सामर्थ्यका स्वरूप तो समझलो। स्मरण आदिकके रूपसे, आत्माकी परिणति होना इसका ही नाम भूत भविष्यत्के पदार्थोंके ग्रहण करनेका सामर्थ्य कहा गया है। इस कारणसे स्मरण आदिक ज्ञानोंकी उपेक्षा करना कैसे व्यर्थ हो सकता है? और जो दृष्टान्त दिया था कि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञान तो गंधके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते तो चाहे स्मरण करें पर चक्षु गंधको नहीं जान सकते। और भी चाहे किसी भी तरह का जोड़ मिलाये पर चक्षुरिन्द्रिय गंधका ज्ञान नही कर सकती। सो दृष्टान्तकी बात देकर प्रकृत बातको बिगाड़ना युक्त नही है क्योंकि चक्षुरिन्द्रियमें गंधको ग्रहण करनेका परिणाम ही नहीं है। तब स्मरण आदिकका सहाय लेकर भी चक्षुरिन्द्रिय में गंध ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं हो सकती पर आत्मामें तो जाननेका परिणाम है, स्वभाव है, स्वरूप है, परिणति है तब वह क्षायोपशमिक स्मरण प्रत्यभिज्ञान आदिक ज्ञानोंकी सहायता लेकर अतीत पदार्थोंको जान लेता है।

पूर्वोत्तरक्षणमध्यस्वरूप तत्त्वकी सिद्धिमें प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि पूर्व और उत्तर क्षणोंके न जाननेपर, उनका विशद बोध न होनेपर फिर कैसे ध्रुवताकी प्रतीति हो सकती है? उत्तरमें कहते हैं कि यह बात उक्त निराकरणसे स्वयमेव निराकृत हो जाती है। अरे, आत्माके द्वारा पूर्वउत्तर क्षणका ग्रहण सम्भव है अर्थात् पूर्वोत्तर पर्यायोंको आत्मा जानता है। प्रत्यक्षसे जाने, अनुमानसे जाने, युक्तिसे जानें। पूर्व और उत्तर पर्यायोंको आत्मा जान लेता है। जरा आप अपनी ही बात बताओ—पूर्व और उत्तर क्षणोंको न जाननेपर उसके बीच रहने वाला जो क्षण है पदार्थ है उसमें क्षणिकताकी प्रगति कैसे हो जायगी? जैसे शंकाकार नित्यवादियोंसे कह रहा है कि पूर्व और उत्तर पर्यायोंके जाने बिना उनके मध्यमें रहनेवाला एक द्रव्य है, ऐसे नित्य द्रव्यका ज्ञान कैसे किया जा सकता है? तो यही बात शंकाकारसे भी पूछी जा सकती है कि क्षणिकवादियो! पूर्वक्षण और उत्तरक्षण अर्थात् पूर्वपर्याय और उत्तरपर्यायका ज्ञान न होनेपर उसके बीचमें रहने वाला जो मध्यक्षण है, पदार्थ है, वह क्षणिक है, यह प्रतीति कैसे हो जायगी? यदि कहो कि क्षणिकताकी प्रतीति इस तरह हो जायगी कि पहिले जो देखा था पूर्वक्षणको, उससे जो संस्कार प्राप्त किया था उसके कारण मध्यक्षणको देखनेसे पूर्वक्षणकी स्मृति हो जाती है और पूर्वक्षणकी स्मृति होनेसे फिर वर्तमान क्षणमें याने मध्यम क्षणमें "वह यहाँ नहीं है" ऐसी अस्थिरताकी प्रतीति हो जाती है। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे नित्यताका भी ज्ञान हो जायगा। पूर्वपर्यायको देखनेसे जो संस्कार प्राप्त हुआ है उसके बलसे जब वर्तमान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायकी स्मृति हो जाती है और फिर उस स्मृतिसे यह ज्ञान होता कि वही चीज यहाँ द्रव्यरूपसे बराबर है, तो यों नित्यताकी भी प्रतीति प्रमाणसिद्ध है। यहाँ क्षण शब्द का प्रयोग शंकाकारके मतके अनुसार है। जिसको पूर्वपर्याय कहते हैं उसे वे पूर्व क्षण कहते हैं क्योंकि पर्याय शब्दसे उन्हें चिढ़ है। पर्याय कह देनेपर फिर द्रव्य मानना पड़ेगा। क्षणिकवादी स्थिर द्रव्य मानते नहीं, तो उनका क्षण क्षण पूरा ही पदार्थ है। तो उस क्षणकी बात कही जा रही है कि पूर्वक्षण ज्ञात न होनेपर वर्तमान क्षणको कैसे कह सकते कि यह क्षणिक है? "वह न रहा" ऐसा जाननेपर ही तो कहा जायगा कि क्षणिक है। तो इसके उत्तरमें जो कुछ यह जवाब देगा कि पूर्व क्षणको जाना था। उससे संस्कार बना था। उसके बलसे अब इस उत्तरक्षणको या मध्य क्षण को जानते हुए की हालतमें यह ज्ञान हो रहा है कि वह यहाँ नहीं है। इस तरहसे नित्यता नहीं है यह जान लिया जाता है तो यही बात नित्यके बोधकी भी समझ लेना है। पूर्व पर्यायके बोधसे जिसने सस्कार बना लिया उसे वर्तमान पर्याय दिखती है तो वहाँ यह ज्ञान कर लेते हैं उस स्मरणके बलसे कि यह वही द्रव्य रूपसे है, जो पहिले था वह अब भी द्रव्यरूपसे है। यों स्थिरता, नित्यता, ध्रुवताकी प्रतीति हो जाती है।

स्थास्नुताकी सिद्धिमें प्रश्नोत्तर—अब शंकाकार कहता है स्थास्नुता का अर्थ है पूर्व और उत्तर क्षणोंमें मध्यक्षणका अभाव होना या पूर्व क्षणका उत्तर क्षणका मध्यक्षणमें अभाव होना, जैसे सामने तीन क्षण हैं तो पहिले क्षणका और तीसरे क्षणका द्वितीय क्षणमें अभाव होना इसका ही नाम क्षणिकपना है अथवा उस मध्य क्षणमें द्वितीय क्षणमें पूर्व और उत्तर क्षणका अभाव होना तो यह अभाव तदात्मक है। जो मध्यक्षणमें पदार्थ है उसके भावरूप है इस कारण मध्यक्षणके ग्रहण करनेसे ही पूर्वक्षण और उत्तर क्षण ग्रहणमें आ जाते हैं। अथवा उस मध्य क्षणके ग्रहण करनेसे क्षणिकताका ज्ञान हो जाता है। उत्तर देते हैं कि यह बात सारहीन है। जब पूर्व और उत्तर क्षणकी प्रतीति नहीं है तो पूर्व और उत्तर क्षणोंमें मध्य क्षणका अभाव कहना या मध्य क्षणमें पूर्व और उत्तर क्षणका अभाव कहना यह तो असम्भव है। जैसे कि किसीने घटको नहीं जाना तो उस पुरुषको यह प्रतीति तो नहीं होती कि यहाँ घड़ा नहीं है। घड़ेके अभावकी प्रतीति उस पुरुषको हो सकेगी जिसे घटका ज्ञान है। तो पूर्व और उत्तर क्षणोंका मध्य क्षणमें अभाव है, ऐसा ज्ञान उसको ही तो होगा कि जिसको पूर्व उत्तर क्षणोंका बोध हुआ है और जब बोध हुआ है तो इस तरह फिर स्थिरताकी प्रतीति कैसे न होगी? और, इस ही प्रकार हम नित्यताके सम्बन्धमें भी कह सकते हैं कि स्थास्नुता नाम है पूर्व और उत्तर क्षण के बीचमें कथंचित् द्रव्यरूपसे सद्भाव होना। और, उस मध्यका पूर्व और उत्तर पर्यायमें द्रव्यरूपसे सद्भाव होना और यह मध्य क्षणका सद्भाव तदात्मक ही है। द्रव्यरूपसे मध्यक्षणात्मक ही है इस कारणसे मध्यक्षणके ग्रहण करनेसे ही पूर्व और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्तर क्षणोंका ग्रहण हो जाता है। तो यों नित्यताकी भी सिद्धि हो जाती है।

वस्तुमें स्वभावतः नित्यताका सिद्धान्त—अब शंकाकार कहता है कि पदार्थोंका चिरकाल तक ठहरना इसका नाम है नित्यता। तो यह नित्यता तीनों कालकी अपेक्षा रखती है। तीनों कालका बोध हो अब ही कह सकते हो कि पदार्थ में नित्यता है। यदि तीनों कालका बोध नहीं है तो तीनों कालकी अपेक्षा रखकर जो नित्यताका ज्ञान हो सकता है वह अब न हो सकेगा। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नहीं है क्योंकि नित्यता तो वस्तुका स्वभाव है वह अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता। तो अन्यकी अपेक्षा न रखने वाले स्वभावभूत नित्यताकी प्रतीति प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से सिद्ध है। देखो इस जीवनमें ही हम वही महल देखते चले आ रहे जो बीस वर्ष पहिले देखा था। कुछ वे ही पुरुष नजर आ रहे जिनको अनेक वर्ष पहिले देखा था जिनसे हमारा परिचय रहा आया था। जिनके हृदयको, जिनके आशयको हम बराबर समझते आ रहे हैं, फिर क्यों न नित्यताकी प्रतीति प्रत्यक्षसे मान ली जायगी ? तो वस्तुमें नित्यता होना वस्तुका स्वभाव है। यदि स्वयं वस्तु नित्यतासे रहित है तो तीनों कालके द्वारा भी इसकी नित्यता नही की जा सकती, वस्तुमें जो नित्यपना है वह कालकी अपेक्षासे नही है कि तीनकालमें रहता है इस कारणसे नित्य है, नहीं। वस्तु स्वभावसे नित्य है तीन कालके सम्बन्धसे नित्य नही। तीन काल भी चीज है जैसे हम आकाशमें रहते हैं—मोटे रूपसे कहा जायगा कि हम आकाशमें रहते हैं, हमारा रहना आकाशकी अपेक्षा रखता है मगर वास्तविकता तो यह नही है। हमारा रहना आकाशकी अपेक्षा नही रखता। हमारे स्वरूपकी ही बात है कि हम रह रहे हैं, इसी तरह वस्तु नित्य है तो यह तीनों कालके प्रसादसे नित्य नही, किन्तु अपने स्वभावसे ही यह वस्तु नित्य है। यदि वस्तुमें नित्यताका स्वभाव न हो तो त्रिकालके द्वारा भी यह नित्यता नही की जा सकती है, जैसे कि अनित्यताका स्वभाव न हो वस्तुमें तो कालके द्वारा अनित्यता नही की जा सकती। जैसे कि कोई कह सकता है कि वस्तुमें अनित्यता वर्तमान कालके कारण हैं वर्तमान काल में रहती हैं इस कारण वस्तु अनित्य है। तो वस्तुकी अनित्यता वर्तमान कालके द्वारा नहीं की जाती क्योंकि अनित्यवादियोंने भी स्वयं वर्तमान कालका भेद नही किया यदि ये वर्तमान मान लें तो भूत भविष्य ये भी तो बोलने पड़ेंगे। और, क्षणिकवादियोंने वर्तमान कालका सत्त्व यों नही माना कि सत्त्व मान लोगे तो उस कालकी अनित्यता भी तो सिद्ध करनी होगी। जैसे कि पदार्थ क्षण यह सत् है और यह क्षणिक है और इसमें क्षणिकताका कारण मान लो काल तो कालकी अनित्यता किसके द्वारा की गई। जैसे समस्त वस्तुवोंकी अनित्यता तो कालके द्वारा बना दी गई और कालकी अनित्यता यदि कहोगे कि अन्य कालके द्वारा किया जायगी तो अनवस्था दोष हो जायगा फिर उस अन्य कालकी अनित्यता किसी अन्य कालके द्वारा की जायगी। इस कारणसे जैसे स्वभावसे पूर्व और उत्तर क्षणोंसे विच्छिन्न अलग भेद किए गए क्षण उत्पन्न होते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं और क्षणिक माने गए हैं शंकाकारके यहां, और कालसे निरपेक्ष बताया गया है उसी तरहसे नित्यपना भी स्वभावसे है काल निरपेक्ष है. पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें अन्वयरूपसे रहने वाला है। यों पदार्थमें जैसे भेद सिद्ध हैं, परिणति सिद्ध है इसी प्रकार पदार्थोंमें एकत्व अभेद अन्वयरूपता भी सिद्ध होती है।

अन्य अतीतादि कालसम्बन्धसे कालका अतीतत्वादी सिद्ध न होनेसे कालसम्बन्धिनी नित्यताकी असिद्धिकी शंका—अब शंकाकार पूछता है कि अक्षणिकत्वका अर्थ क्या है ? नित्य होनेका अर्थ यही तो है ना कि पदार्थ अतीत-काल और अनागत कालका सम्बन्ध बनाये हुए है। तो पदार्थोंमें जो अक्षणिकता है वह अतीत अनागत कालके सम्बन्धपना होनेसे है और अतीत अनागतपना भी सिद्ध होता ही नहीं है। नित्यता तो नाम इसका है कि भूत और भविष्य कालमें वह सम्बन्धित रहता है पर भूतकाल और भविष्य काल ही सिद्ध नहीं है, क्योंकि भूत भविष्यकी सिद्धि आप किस तरह करेंगे ? भूत भविष्य कालके सम्बन्धसे पदार्थोंमें नित्यता सिद्ध की और कालमें भूत भविष्यपना कैसे सिद्ध करोगे ? अगर अन्य भूत भविष्यकालके सम्बन्धसे सिद्ध करोगे तो इसमें अनवस्था दोष आयगा। फिर उस द्वितीय भूत भविष्यको सिद्ध करनेके लिये तृतीय भूत भविष्यकाल मानें और उन दोनोंमें अगर एक दूसरेसे परस्पर सिद्ध करनेकी बात कहोगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा अथवा पदार्थ क्षण अतीत अनागत है उसे तीनों कालसे अतीत अनागत मानोगे तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष है। जब इस तरह अतीत अनागत सिद्ध हो ले तो काल अतीत अनागत बने और जब काल अतीत अनागत सिद्ध होले तब कालमें अतीत अनागतपन सिद्ध हो सके। इससे यह नहीं कह सकते कि अतीत अनागत कालके सम्बन्ध होनेसे पदार्थोंके अतीत अनागतपनेका ज्ञान हो जाता है।

पदार्थक्रियाकी अतीतानागततासे कालकी अतीतानागतताकी असिद्धि का शंकाकारका द्वितीय विकल्प—शंकाकार दूसरा विकल्प रख रहा है कि पदार्थों की नित्यताका अर्थ है कि पदार्थ अतीत और अनागत कालके सम्बन्धसे अतीत और अनागत रहें पर कालकी भूतभविष्यता कैसे सिद्ध करोगे ? क्या अतीत अनागत पदार्थकी क्रियाका सम्बन्ध है उस कालसे इस तरहसे कालको अतीत अनागत सिद्ध करोगे ? पदार्थोंकी क्रियाके सम्बन्धसे कालको अतीत अनागत सिद्ध करना संगत नहीं है। शंकाकार ने ये दो विकल्प किए थे कि काल अतीत और अनागत है यह तुम किस तरह सिद्ध करोगे ? क्या दूसरे अतीत अनागत कालका सम्बन्ध है इससे काल अतीत अनागत बन जायगा या अतीत अनागत पदार्थोंकी क्रियाका सम्बन्ध कालमें जोड़ा गया है इसलिए काल अतीत अनागत सिद्ध हो जायगा ? विकल्पका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत कालके सम्बन्धसे पदार्थमें भूत भविष्य पर्याय कहलाते हैं या पदार्थोंके भूत भविष्य परिणतिके सम्बन्धसे काल भूत भविष्य कहलाता है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस आधारको लेकर विकल्प किया गया है अथवा अब यह दूसरा विकल्प नहीं कह सकते कि पदार्थकी क्रियाके सम्बन्धसे कालमें भूत भविष्यपना आया है क्योंकि इसमें यह तो पूछा जायगा कि पदार्थोंकी क्रियायें अतीत अनागतपना कहाँसे आ गया ? यदि कहो कि अन्य अतीत अनागत पदार्थोंकी क्रियाके सम्बन्धसे आया है तो यहाँ अनवस्था दोष हो जायगा कि अब उस अतीत अनागत पदार्थ क्रियाकी अतीतता अनागतता सिद्ध करनेके लिए अन्य अतीत अनागत पदार्थ क्रिया माननी होगी। यदि कहो कि अतीत अनागत पदार्थ क्रियाका अवगम अतीत अनागत कालके सम्बन्धसे हुआ है तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष हो जायगा। अर्थात् जब पहिले काल अतीत अनागत क्रिया सिद्ध होगी और जब पदार्थोंकी अतीत अनागत परिणति सिद्ध हो तब कालका अतीत अनागतपना सिद्ध होगा। इससे यह दूसरा विकल्प भी संगत नहीं है।

स्वतः कालकी अतीतानागततासे पदार्थक्रियाकी असिद्धिका शंकाकारका तृतीय विकल्प शंकाकार अब तीसरे विकल्प द्वारा शंका कर रहा है कि पदार्थोंकी जो नित्यता आयी है वह आयी है कालके अतीत अनागतपनेके सम्बन्धसे तो यह बतलावो कि कालमें अतीतता और अनागतता कैसे आ गयी ? यदि कहो कि स्वतः आ गयी तब तो पदार्थमें भी स्वतः ही अतीत अनागतपना मान लो, फिर भूत भविष्यके सम्बन्धकी बात क्यों करते हो ? जैसे काल स्वयं अतीत अनागत हो जाता है इसी तरह पदार्थकी परिणतियाँ भी स्वयं अतीत अनागत मान लो। फिर त्रिकाल व्यापक है और त्रिकालमें व्यापक बतानेके ढंगसे द्रव्यको नित्य सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है ? इस तरह शंकाकारने तीन विकल्पोंसे अतीत और अनागतताकी असिद्धि की।

कालकी अतीतानागतताके द्वारा पदार्थ परिणतिकी अतीतानागतता सिद्ध न होनेकी शंकाका समाधान—अब इस उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन कहना सब बिना विचारे है हम तो अतीत समयकी अतीतता स्वरूपसे ही मानते हैं। अतीतका अर्थ क्या है ? जहाँ वर्तमानत्वका अनुभव कर लिया है उस समयको अतीत कहते हैं और जिसका वर्तमानपना अनुभव किया जायगा उसको अनागत अथवा भविष्यतकाल कहते हैं। और ऐसा अतीत अनागतकालका सम्बन्ध होनेसे पदार्थोंमें अतीत और अनागतपना सिद्ध होता है। कालकी तरह पदार्थोंमें भी स्वरूपसे अतीत और अनागतपना कहना युक्त नहीं है, क्योंकि एकका धर्म अन्य पदार्थों में संयोजित नहीं किया जा सकता है। यदि एकका धर्म दूसरे पदार्थमें संयुक्त कर दिया जाने लगे तो नीमका कड़वापन गुड़में संयोजित कर दिया जाय। अथवा ज्ञानका धर्म है स्वपर प्रकाशकता, वह घटपट आदिक पदार्थोंमें भी घुस जायगी अथवा घटपट आदिक पदार्थोंका धर्म है जड़ता सो वह जड़ता ज्ञानमें भी प्रविष्ट हो जायगी। किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एकका धर्म किसी अन्तमें बाँटा नही जा सकता। काल अतीत है और अनागत है और उस अतीत अनागत कालके समयमें जो पदार्थकी परिणति हुई है उस पदार्थको भी हम अतीत अनागत कहते हैं। अथवा जाने दो। जिस कालमें स्वयं अतीत और अनागत होते हैं ऐसे पदार्थोंकी परिणतियाँ भी स्वयं अतीत और अनागत रहती है, पर उनका अतीत और अनागतपनेकी संज्ञा कालके सम्बन्धसे की जा सकती है।

विशेषप्रतिभाषकी अनुवृत्तप्रत्ययबाधकताका निराकरण–अब शंकाकार कहता है कि पदार्थोंका नित्यत्व धर्म अनुवृत्ताकार ज्ञानके उपलम्भसे ही तो सिद्ध किया जा सकता है, अर्थात् पदार्थ ज्योंका त्यों बराबर चल रहा है ऐसा ज्ञान बने तब तो पदार्थोंकी नित्यता सिद्ध हो लेकिन अनुवृत्ताकार ज्ञान तो असिद्ध है क्योंकि बाधित होनेसे। क्षणिकवादी लोग समानताको भ्रम समझते हैं। कैसे चीजें सब एक एक हैं, वे मिली भई नही हैं, अब उन एक एक चीजोंमें भिन्न भिन्न चीजोंमें जो एकत्वका बोध किया जाता है, वह वही है इस तरहका जो ज्ञान किया जा रहा है वह भ्रम है, वास्तविक नही है। ऐसा क्षणिकवादका सिद्धान्त है। और उसके अनुसार ये क्षणिकवादी कह रहे हैं कि अनुवृत्ताकार ज्ञान असिद्ध हैं क्योंकि वे बाधित हो जाते हैं। अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि ऐसी शंका मिथ्या है क्योंकि शंकाकार लोग अनुवृत्ताकार ज्ञानका बाधक विशेष प्रतिभासको मानते हैं, अर्थात् पदार्थोंमें जो भिन्नताका प्रतिभास होता है उस प्रतिभाससे अनुवृत्ताकोर, सामान्य ज्ञान, समानताका बोध बाधित होता है, ऐसा कहते हैं, लेकिन विशेषका प्रतिभास अनुवृत्ताकोरके ज्ञानका बाधक नही है, विशेषका भी प्रतिभास हो रहा है और समानताका भी प्रतिभास हो रहा है। दोनों बातें अलग–अलग हैं। उसमें यह नही कहा जा सकता कि अनुवृत्ताकार ज्ञान होनेसे विशेष प्रतिभास असत्य है या भेद प्रतिभास होनेसे अनुवृत्त ज्ञान असत्य है। क्यों यह नही कहा जा सकता यों कि पदार्थका किसी भी रूपमें प्रतिभास हो रहा है। अन्यथा शंकाकार यह बतलाये कि यह जो विशेष प्रतिभास है जिसे अनुवृत्ताकारका बाधक बताया जा रहा है सो अनुवृत्ताकारके जान लेनेपर अर्थात् जाने हुए अनुवृत्ताकारका विशेष प्रतिभास बाधक है या अज्ञात अनुवृत्ताकारका विशेष प्रतिभास बाधक है? विशेष प्रतिभासका अर्थ है ये इससे जुदा हैं, ये भिन्न हैं, ये न्यारे–न्यारे हैं इस तरहके प्रतिभासको कहते हैं विशेष प्रतिभास। और, यह वही है, यह उसके ही समान है, यह एकस्वरूप है, इस तरहके एकत्वके प्रतिभासका नाम है अनुवृत्त प्रतिभास। तो उसमें यह बतलावो कि जाने हुए अनुवृत्त प्रतिभासमें विशेष प्रतिभास बाधा देता है या न जाने हुए अनुवृत्त प्रतिभासमें विशेष प्रतिभास बाधा देता है। यदि कहो कि जाने हुए अनुवृत्ताकारमें विशेष प्रतिभास बाधा देता है तो यह बतलाओ कि अब यहाँ तक बात होगई सामने अनुवृत्त प्रतिभास और विशेष प्रतिभास जाने गए दोनोंके दोनों। अब इन दो प्रतिभासोंमें हम विशेष प्रतिभाषकी बात पूछ रहे हैं। क्या यह विशेष प्रतिभास अनुवृत्तप्रतिभासात्मक है या अनुवृत्त्य प्रतिभास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से जुदा है ? यदि कहो कि विशेष प्रतिभास अनुवृत्त प्रतिभासमय है तो जब तुम अनुवृत्त प्रतिभासको मिथ्या बता रहे हो तो विशेष प्रतिभास भी मिथ्या हो जायगा, क्योंकि अब विशेष प्रतिभासका तुमने अनुवृत्त प्रतिभासात्मक माना है। फिर यह मिथ्या प्रतिभास अनुवृत्त प्रतिभासको कैसे बाधक होगा ? यदि कहो कि अनुवृत्त ज्ञान से विशेष प्रतिभास वाला ज्ञान जुदा है अर्थात् यह वही है इस प्रकारका होने वाला अनुवृत्त ज्ञान और यह ये नहीं हैं, बिक्कुल न्यारे न्यारे हैं। ये सब इस तरहका ज्ञान करने वाले विशेष प्रतिभास हैं। ये दोनों परस्परमें भिन्न हैं। अनुवृत्तज्ञान और विशेष ज्ञान ये दोनों जुदे हैं तो अनुवृत्ताकार प्रतिभासके बिना विशेष प्रतिभासका संवेदन नहीं हो सकता तब विशेष प्रतिभास अनुवृत्त प्रत्ययका कैसे बाधक होगा ? अथवा जब ये दोनों भिन्न भिन्न हैं तो एक दूसरेके बाधक कैसे होंगे, हिमालय पर्वत क्या विन्ध्याचल पर्वतका बाधक है ? अरे जो अत्यन्त न्यारी न्यारी चीजें हैं वे एक दूसरेकी बाधक कैसे हो सकती हैं ? और फिर अनुवृत्त प्रतिभासके बिना विशेष प्रतिभास नहीं बन सकता। क्योंकि सामान्यका कोई संकल्प हो, भीतरमें कुछ कल्पना हो तब तो उसका प्रतिपक्षी जो विशेष है वह समझमें आयगा। तो अनुवृत्ताकारको ज्ञान न होने पर विशेष प्रतिभास ही सम्भव नहीं है। फिर विशेष प्रतिभास अनुवृत्त प्रत्ययका बाधक कहना कैसे युक्त हो सकता है ? इससे यह बात निर्णयमें लेना चाहिए कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है।

पदार्थकी स्वयं सामान्यविशेषात्मकता—यहां स्वयंकी स्वयंमें सामान्य विशेषात्मकताकी बात कही जा रही है। अनेक पदार्थोंमें समानताकी बात नहीं कहीं जा रही है। पदार्थ द्रव्यरूपसे सदा अपने आपमें रहते हैं और परिणतिके रूपसे पदार्थ जिस कालमें जिस रूपसे परिणमता है उस परिणमनरूप उस हीं कालमें रहता है। तो पर्यायदृष्टिसे तो पदार्थमें भेद और विशेष सिद्ध होता है और द्रव्यदृष्टिसे पदार्थमें अभेद और नित्यता सिद्ध होती है। तो नित्यानित्यात्मक पदार्थका कारण है द्रव्यत्व और पर्याय द्रव्यपर्यायात्मक है। न केवल पर्याय पर्याय ही पदार्थ है और न केवल पर्याय शून्य ही कुछ द्रव्य हो सकता है। पदार्थोंकी यह नित्यानित्यात्मकता प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है, युक्तिसे भी सिद्ध है। जैसे वह एक जीव है इस जीवमें जीवत्व जीवका सत्त्व अनादि अनन्त है, उस अनन्त सत् जीवका प्रतिसमयमें व्यक्तरूप बनता जा रहा है उस व्यक्तरूपको पर्याय कहते हैं। जैसे कोई अंगुली टेढ़ी सीधी हो रही है तो टेढ़ी सीधी दोनों दशाओंमें रहने वाली अंगुली तो एक ही है। तो फिर कैसे कहा जायगा कि अब टेढ़ी मिटकर सीधी हुई है। तो यों समस्त पदार्थोंमें नित्यता भी है और अनित्यता भी है। और नित्यताका साधन ऊर्द्धता सामान्य है और अनित्यता का साधन ऊर्द्धता विशेष है। तो ऊर्द्धतासामान्यकी दृष्टिसे पदार्थमें अनुवृत्ताकारका ज्ञान होता है और उस अनुवृत्ताकार ज्ञानकी उपलब्धि होनेसे पदार्थ नित्य है इस बातकी प्रबल पुष्टि हो जाती है। हां उसमें विशेष धर्म भी है और साधारण धर्म यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। पर विशेष धर्म सामान्यका बाधक हो, सामान्य फिर विशेषका बाधक हो ऐसी बात नहीं है। पदार्थ स्वयं सामान्य विशेषात्मक होता है।

प्रत्यक्षसे पदार्थ क्षणिकत्वकी व्यवस्थाका अभाव—शंकाकारने यह कहा था कि पदार्थोंमें जो अनुवृत्तिका ज्ञान होता है वह विशेषज्ञानके द्वारा बाधित हो जाता है, अर्थात् किसी भी पदार्थमें यह वही है, यह वही है ऐसा जो एकत्वका ज्ञान होता है वह तो भ्रम है और प्रतिक्षणमें जो स्वलक्षण है उसका जो अनुभव है वह परमार्थ है। तो पदार्थमें एकत्वका ज्ञान विशेष प्रतिभाससे बाधित होता है। इस सम्बन्धमें शंकाकारसे यह कहा जा रहा है कि बाधक प्रमाण तो उस हीको कहते हैं ना जो विपरीत अर्थकी व्यवस्था करे। जैसा कुछ समझा है हमने किसी वस्तुके बारेमें उनसे विपरीत अर्थकी जो व्यवस्था बताये ऐसे ज्ञानको बाधक ज्ञान कहेंगे। जैसे कि पहिले जाना रस्सीको साँप। अब साँपके ज्ञानसे विपरीत ज्ञान है रस्सीका ज्ञान तो रस्सीके ज्ञानकी व्यवस्था करे प्रमाण। तो जिस प्रमाणसे यह दृढ़ बात बन जाय कि यह रस्सी ही है तो उस ज्ञानको बाधक ज्ञान कहेंगे। अर्थात् पहिले जो सर्प भ्रमका बाध था वह बाधित हो जाता है इसी प्रकार यहाँ हम लोग समझ रहे हैं कि पदार्थ नित्य है, वही रह रहा है" तो इससे विपरीत अर्थ अर्थात् एक ही क्षण रहता है पदार्थ दूसरी क्षण नही रहता है इसकी कोई व्यवस्था बनाये ऐसा ज्ञान ही बाधक बन सकता है। तो ऐसा बाधक ज्ञान आपके यहाँ कौन हो सकता है? क्षणिकवादमें केवल दो ही ज्ञान माने हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थकी व्यवस्था करनेके रूपसे माना गया प्रत्यक्ष ज्ञान क्या पदार्थोंके अनुवृत्ताकार प्रत्ययका बाधक है अथवा अनुमान ज्ञान अनुवृत्त प्रत्ययका बाधक है। पदार्थमें यह वही है इस प्रकारका जो अन्वयी ज्ञान है उसे अनुवृत्त प्रत्यय कहते हैं प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंके अतिरिक्त अन्य तो आगम अथवा स्मृति आदिक कोई प्रमाण नही माने गए क्षणिक वादमें। तो इन दो विकल्पोंमेंसे प्रत्यक्ष ज्ञानसे विपरीत अर्थका व्यवस्थापक नही कह सकते क्योंकि प्रत्यक्ष के द्वारा प्रतिक्षण नष्ट हो ऐसा पदार्थ प्रतिभासमें नही आता। किसीको भी प्रतिक्षण नष्ट हो रहे ऐसी मुद्राको धारण करने वाले पदार्थ प्रत्यक्षमें नही प्रतिभासित होते हैं किन्तु प्रायः सभीके इस ही रूपसे पदार्थ ज्ञानमें आ रहे हैं कि यह स्थिर है। स्थूल है और साधारण रूप है। अन्य प्रकारका प्रतिभास अन्य प्रकारके पदार्थोंकी व्यवस्था करने वाला नही बन सकता। पदार्थोंके सम्बन्धमें प्रतिभास तो हो रहा है ऐसा कि यह स्थिर है, स्थूल है और साधारण है, सामान्यरूप है, जो था सो अब है, इस तरह का तो हो रहा है प्रतिभास प्रत्यक्ष और उससे व्यवस्था बनायें प्रतिक्षण नष्ट होनेवाले वाले पदार्थकी, तो यह नही हो सकता। यदि कुछ प्रतिभास हो और कुछ अर्थका ज्ञान किया जाय ऐसी अटपट वृत्ति हो तो बड़ी आपत्तियां आयेंगी। हम कपड़ेका तो ज्ञान करें और घड़ेकी व्यवस्था उससे बन जाय यह कैसे हो सकता है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणक्षयवादमें भेदवादके आधारपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारोंके भेद का सिद्धान्त—क्षणिकवाद भेदवादके सिद्धान्तपर आधारित है। याने सर्वप्रकारसे भेद करना चाहिए। पदार्थोंका द्रव्य भेद अर्थात् निरंश द्रव्यको पदार्थ माना तभी तो एक एक अणु ही क्षणिकसिद्धान्तमें पदार्थ है। उन अणुवोंका स्कंध होना मेल होना, यह सब कोरा भ्रम है। स्वप्नवत् बताया गया है। क्षेत्र भेद प्रदेश रूप प्रत्येक अर्थ एक प्रदेशी ही होता है। कोई भी अर्थ दो प्रदेशोंको नहीं घेरता क्षणिकवाद सिद्धांत में और तभी जो कुछ ये पिण्डरूप नजर आ रहे हैं ये पदार्थ नहीं है किन्तु इनमें रूप क्षण, रसक्षण, गंधक्षण स्पर्श क्षण ये हैं पदार्थ। कहीं रूप, रस, गंध स्पर्श वाला पिण्डात्मक पदार्थ नहीं हुआ करता, पदार्थ निरंश होता है। इसी प्रकार काल भेदमें एक समयमें जो भी हो, बस वह पदार्थ है अगले समयमें वह पदार्थ नहीं है, कोई नया ही सत् उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार भावभेदमें भी शक्ति समूह रूप पदार्थ नहीं है किन्तु निरंश निरन्वय निरवयव जो कुछ भी भाव हैं तन्मात्र पदार्थ हैं। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारका भेद न करके इन चारों की दृष्टिसे निरंश पदार्थ माने गये हैं लेकिन उनमें प्रसिद्धि है कालभेदकी। पदार्थ क्षणिक हैं। यहां ऊर्ध्वता सामान्यका विरोधी सिद्धान्त क्षणिकवाद है। इसलिये उन चार भेदोंमेंसे कालभेदकी दृष्टिसे पूर्वपक्षमें क्षणिकवादकी बात लायी गई है।

नित्यत्वैकान्तमें द्रव्य क्षेत्र काल भाव इन चारोंमें अभेदका सिद्धान्त—जैसे भेदवादियोंने द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव इन चारोंमें अभेद किया है। ऐसे ही नित्यत्ववादियोंने इन चारोंमें अभेद किया है। द्रव्यका अभेद अर्थात् जितने समस्त विश्व हैं वे समस्त विश्व हैं वे समस्त एक ब्रह्म रूप हैं। यह हुआ द्रव्यका अभेद। अलग अलग कुछ द्रव्य ही नहीं। सारी उस ब्रह्मकी तरंग है। है सब कुछ एक ब्रह्मरूप तो यह हुआ द्रव्यका अभेद। क्षेत्रका अभेद वे सब एक हैं, सर्वव्यापक हैं यों मानकर वहां न्यारा क्षेत्र निरखनेका अवकाश ही नहीं रहने दिया। कालका अभेद पदार्थ है, उसमें भूत भविष्यकी कोई योजना नहीं है। वह तो अपरिणामी तत्त्व है। उस ब्रह्म का कोई परिणमन ही नहीं है। जिससे कोई अतीत अवस्था अथवा भविष्यत अवस्था बतायी जा सके। इस तरह कालमें भी वह ब्रह्म अद्वैत अभेद है इसी प्रकार भावमें भी अभेद हैं। सर्व कुछ एक सत् वही मात्र एक शक्ति है। इस तरह सर्वथा नित्यवादियोंने इन चारमें अभेद माना है। सभी प्रकारके दार्शनिकोंके मंतव्योंकी यदि समीक्षा की जाय तो सबका आधार यह चतुष्टय पड़ता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इस ही चतुष्टयके भेदमें जहां कहीं कोई भ्रम हो, भूल हो कि एकान्त हो जाता है। शंकाकारके द्वारा बाधक प्रमाणकी चर्चा चलाई गई थी कि जो अनुवृत्त ज्ञान होता है उस ज्ञानका बाधक विशेष प्रतिभास है। तो विशेष प्रतिभास बाधक तब बने जब विपरीत अर्थकी व्यवस्था करने वाला हो। वह क्या प्रत्यक्ष है अथवा अनुमान? प्रत्यक्षसे तो स्थिर स्थूल, साधारण रूपसे विपरीत अर्थात् अस्थिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निरंश और भेद अभेद मात्र पदार्थकी सिद्धि नही होती। क्षणिकवादमें पदार्थको स्थिर नहीं माना क्योंकि वह फिर त्रिकालव्यापी बन बैठेगा, क्षणिकताके खिलाफ जायगा। इसी तरह क्षणिकवादमें स्थूल पदार्थ नहीं माना। भींट, चौकी, शरीर आदिक जो कुछ भी दिख रहे हैं ये सब भ्रमजाल हैं। अन्य पदार्थ हैं ही नहीं क्योंकि क्षेत्रसे, निरंशको ही पदार्थ माना गया है और स्थूल बहुतसे प्रदेशोंमें व्यापकर रहेंगे, तभी तो स्थूल कहलायेंगे, पर बहुप्रदेशता पदार्थमें मानी गई है नहीं, इस कारण स्थूल कुछ नही है। इसी तरह साधारणरूप भी कुछ नही है। साधारणरूपका अर्थ यह है कि एक साथ वर्तमान अनेक व्यक्तियोंमें धर्मकी सदृशता देखकर उनमें सदृशता का बोध करना यह भी क्षणिकवादमें नही माना है। लेकिन प्रत्यक्षसे तो सब कुछ स्थिर स्थूल और साधारणरूप पदार्थ विदित हो रहा है इस कारण प्रत्यक्ष विपरीत अर्थकी व्यवस्था करने वाला नही हो सकता, जिससे कि अनुवृत्त ज्ञानमें बाधा आये।

स्थिर स्थूल साधारणरूपके प्रतिभासको भ्रान्त कहनेकी शंका—अब शंकाकार कहता है कि पदार्थ स्थिर स्थूल साधारण रूपका प्रतिभास हो रहा है तो भी यह तो सदृश नवीन नवीन पदार्थोंकी उत्पत्ति जो हो रही है उसमें भ्रम हो गया है एकताका। हैं ये सब क्षणिक किन्तु सब समान–समान उत्पन्न हो रहे हैं तो उनमें एकत्वका भ्रम बन गया है और जैसे कि पदार्थका वास्तविक अनुभव हो जाता है पदार्थके वर्तमान कालमें उस तरहका निश्चय नही हो पा रहा। इसी कारणसे ये पदार्थ स्थिर हैं, स्थूल हैं, साधारण हैं, इस प्रकारसे भ्रान्त निर्णय होता है लोगोंको वास्तविकता तो यह है कि जब जो पदार्थ उत्पन्न हुआ उस ही समयमे ज्ञानक्षणका अनुभव हो जाता है। ज्ञानक्षणका ही नाम लोगोंने आत्मा रखा है। जो एक समयका ज्ञानात्मक पदार्थ है उसे ज्ञान क्षणमें पदार्थका जो अनुभव होता है परमार्थ भूत तो वह है लेकिन वह वक्तव्य नही हो पाता। और वासनाकी वजहसे सविकल्प ज्ञानमें पदार्थ स्थिर जचने लगता है। तो स्थिर स्थूल देखना यह भ्रम है और प्रतिक्षण पदार्थ बिनाशीक है। क्षणिक है यह बात परमार्थकी है।

प्रत्यक्षप्रतीत स्थिर स्थूल साधारणरूपको भ्रान्त माननेकी शंकाका निराकरण—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना तुम्हारा ठीक नही है क्योंकि जिसकी इन्द्रियां निर्मल हैं, जिसकी इन्द्रियां अपहृत नहीं हुई हैं, इन्द्रियमें कोई दोष नही है, ऐसे निर्मल इन्द्रिय वाले पुरुषको यदि अन्य प्रकारसे पदार्थके निश्चयको कल्पना करा दी जाय, निर्दोष इन्द्रिय वाला पुरुष जिसे जो कुछ जान रहा है वह भ्रम है, यदि ऐसी बात ली जाय तो कभी भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नही हो सकती। फिर तो जो कोई जो कुछ कहेगा उसीको ही भ्रम कह देंगे, फिर किसी पदार्थकी व्यवस्था ही न हो सकेगी। फिर तो नील क्षण अनुभव हो रहा है उस कालमें पीत कृष्ण, श्वेत आदिक किसीके निश्चयकी उत्पत्तिकी कल्पना कर डालो। क्योंकि निर्दोष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रिय वाले पुरुषको जो कुछ भी ज्ञान हो रहा है उसे आप भ्रम बता देते हैं तो जब नील क्षणका अनुभव हो रहा है तब उससे पीत पदार्थका ज्ञान कर बैठो। यों तो फिर किसी भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती है। और फिर यह कहना भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती है। और फिर यह कहना भी तुम्हारा व्यर्थ हो जायगा कि जिस ही पदार्थमें बुद्धिको उत्पन्न करे उस ही पदार्थमें इसकी प्रमाणता होती है। क्षणिकवादमें ज्ञानकी व्यवस्था यह मानी गई है कि जिस पदार्थ से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थको जानता है और उस ज्ञानसे उस पदार्थके विषयमें प्रमाणता आती है। तो यों कल्पित भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती। यद्यपि ऐसा नहीं है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हो और फिर उस पदार्थकी व्यवस्था मानी जाय, लेकिन थोड़ी देरको तुम्हारा ही सिद्धान्त मान लें तो इस प्रसंगमें जो शंकाकार यह कह गया कि जो कुछ ये स्थिर स्थूल सदृश दिख रहे हैं वे सब धोखा हैं। तो जब जो स्पष्ट नजर आ रहा है उस प्रतिभाससे निश्चय कर बैठें कि पदार्थ अस्थिर है, निरंश है और पदार्थ अतीत भिन्न है तो प्रतिभासमें आये कुछ निश्चय करायें आप कुछ, तो इसका अर्थ यह होगा, उसमें आपत्ति यह आयगी कि प्रतिभास तो होवे नीलक्षणका और निश्चय बन जायगा पीत आदिकका। फिर यह भी बात न रह सकी जो सिद्धान्तमें बता रहे हो कि जिस पदार्थसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थके सम्बन्धमें प्रमाणता स्वीकार कराता है, क्योंकि अब तो ज्ञानकी अटपट व्यवस्थायें बनी। इसी कारण प्रत्यक्षसे जो कुछ प्रतीत हो रहा है कि ये समस्त पदार्थ स्थिर हैं। फिर उसके विरुद्ध कल्पना करनेमें क्या विवेक है ? स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है ये पदार्थ स्थूल हैं और उनका व्यवहार भी कर रहे हैं, उन का उपयोग भी करते हैं तिसपर भी एक निरंशकी कल्पना और निश्चय कराये तो यह क्या विवेक है ? जिन जीवोंको देखकर सदृशताका ज्ञान होता है तो क्या उन जीवोंमें भी तुम अनिभितत्तकाका ज्ञान अथवा निश्चय कर लोगे ? प्रत्यक्षसे तो स्थिर स्थूल पदार्थ विदित होते हैं अतः प्रत्यक्षको आप अनुवृत्त ज्ञानका बाधक नहीं कह सकते। यह जो ज्ञान हो रहा है। यह वही मनुष्य है, यह मेरा पिता है, यह मेरा पुत्र है, जन्मसे जब तक जीवित हैं, जब तक जो एक निश्चय बन रहा है या वस्तुके स्वरूपमें क्या यह व्यवस्था अथवा निश्चय गलत है। तो अनुवृत्ताकार प्रत्यक्षसे ऊर्द्धता सामान्यकी सिद्धि होती है जिस सामान्यसे तन्मय पदार्थ हुआ करता है। इस तरह पदार्थ ही प्रमाणका विषय हुआ करता है।

प्रत्यक्ष ज्ञानमें क्षणिकत्वग्राहकताका अभाव—ऊर्ध्वता सामान्यके विरोधमें क्षणिकवादीका यह कहना था कि जो पदार्थ स्थिर स्थूल और सदृश नजर आ रहे हैं वे सब भ्रान्त ज्ञान हैं। इसपर यह उत्तर दिया गया था कि जिसकी इन्द्रियाँ निर्मल हैं ऐसा पुरुष जब इन पदार्थोंको स्थिर स्थूल सदृश देख रहा है और इस ज्ञानको तुम मिथ्या कहते हो तो तुम्हारे इस ज्ञानसे प्रतिनियत पदार्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती। इससे

Version 1

यह बात माननी चाहिए कि जिस प्रकारके पदार्थका निश्चय करने वाला ज्ञान है उसी प्रकारके अर्थको अनुभव ग्रहण करता है अर्थात् प्रत्यक्षसे उस ही प्रकारका ज्ञान मानना चाहिए। जैसे पदार्थका निश्चय किया जा रहा है, शंकाकार कहता है कि पदार्थ तो प्रतिक्षण विनाशीक है और प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थकी सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ जो प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षको पदार्थका यह रूप ही अनुकरण करना चाहिये अर्थात् पदार्थ जैसा है वैसा जानना चाहिए। शकाकारका भाव यह है कि पदार्थ तो है प्रतिक्षण विनाशीक और ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है पदार्थसे तो प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थसे उत्पन्न प्रत्यक्ष ज्ञान विनाशीक पदार्थको ही जानेगा। इसका समाधान स्पष्ट है कि ऐसा कहनेमें इतरेतराश्रय दोष आता है। जब पदार्थोंको क्षणक्षयी सिद्ध कर लो तब तो यह कहना बनेगा कि उन क्षणक्षयी पदार्थोंकी सामर्थ्यका अविनाभावी प्रत्यक्ष प्रमाणमें क्षणक्षयीरूपका अनुकरण करले और जब पदार्थकी सामर्थ्यके बलसे उत्पन्न हुए प्रत्यक्षसे पदार्थके क्षणक्षयी रूपका अनुकरण बन जाय तब पदार्थोंका क्षणिकपना सिद्ध होगा। यह तो परस्पर आश्रयकी बात हुई। स्पष्ट तो प्रतिभास होता है कि यह पदार्थ देखो अनेक वर्षोंसे है और इतने आकारमें है स्थूल है और अनेक पदार्थोंमें यह समानता पायी जा रही है ऐसा जो प्रत्यक्षसे स्पष्ट बोध हो रहा वह भ्रांत नहीं कहा जा सकता। इस तरह प्रत्यक्षसे तो पदार्थकी अक्षणिकताका ग्रहण हुआ।

प्रत्यक्षाधिगत अविनाभावके आश्रय बिना अनुमानकी असिद्धि होनेसे क्षणिकत्वके अनुमानकी असिद्धि—यदि कहो कि अनुमान प्रमाण पदार्थोंकी क्षणिकता ग्रहण कर लेगा सो पदार्थोंकी क्षणिकताके लिए जो भी हेतु दोगे, कैसा भी अनुमान बनाओगे, उस अनुमानमें इतनी बात अवश्य होनी चाहिये कि साध्य और साधनका अविनाभाव प्रत्यक्षसे समझा गया हो, क्योंकि साधनके अविनाभावको प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति न होनेपर अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनसे। यह अनुमान तब ही बन पाता है जब धूम साधनकी प्रत्यक्षसे जानकारी है। प्रत्यक्षसे जाने गए अविनाभावका आश्रय करके ही हेतुका पक्षमें रहना समझा जाता है। जब तक हेतु प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्ध न हो तब तक हेतुका पक्षमें बताना कैसे युक्त हो सकता है? और प्रत्यक्षसे जो विषय नहीं होता उससे अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती। हेतु प्रत्यक्षसिद्ध हो, अनुभवसिद्ध हो तब तो अनुमानकी प्रवृत्ति होती है। तो कुछ भी अनुमान न बनावेंगे आप पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करनेमें सो उसमें सर्वप्रथम यह आपत्ति आयगी कि पहिले साध्यसाधनका अविनाभाव तो सिद्ध कर लो। वह सिद्ध होता नहीं, इस कारण क्षणिकत्वको ग्रहण करने वाला कोई अनुमान नहीं हो सकता।

क्षणिकत्वसाधक हेतुमें स्वभावहेतुता व कार्यहेतुताकी असिद्धि—जैसे अनुमान बनाया क्षणिकसिद्धान्तमें कि सर्व पदार्थ क्षणिक हैं सत्व होनेसे तो यह

बतलावो कि क्षणिकत्वको सिद्ध करनेमें जो यह हेतुका व्यापार बना रहे हो वह हेतु स्वभावहेतु है या कार्यहेतु है ? स्वभावहेतुका व्यापार है क्षणिकत्वकी सिद्धिमें तो यह भी कह नही सकती, क्योंकि किसी भी पदार्थका क्षणिक स्वभावरूपसे निश्चय नहीं किया जा सका है क्योंकि क्षणिकत्व प्रत्यक्षके अविषय भूत है। स्वभावहेतु तो उसीमें घटाया जायगा जो प्रत्यक्षसिद्ध हो। जैसे यह वृक्ष है क्योंकि सीसमका पेड़ होनेसे। तो सीसमका व्यवहार वृक्षत्वका व्यवहार जो कुछ भी किया गया, जो भी स्वभाव बताया गया तो जब प्रत्यक्षसे दिख रहा है उस हीमें तो स्वभाव स्थापित किया जाता है किसी भी पदार्थमें आप स्वभाव बतायें। पदार्थ तो जाना हुआ हो तब तो स्वभाव सिद्ध करो। तो जब क्षणिकत्व जाना हुआ हो तब तो उसमें स्वभावकी बात बताओ पर क्षणिकत्व तो प्रत्यक्षके विषयभूत है ही नही तो उसमें स्वभाव हेतु की बात नही कह सकते। उसका व्यवहार ही नही बन सकता।

अनुमानसे क्षणिकत्वके ग्रहणकी एक आशंका—अब शङ्काकार कहता है कि इस अनुमानसे पदार्थ क्षणिक है यह सिद्ध होगा। जगतके समस्त पदार्थ विनाशीक स्वभावमें नियत हैं क्योंकि विनाशके प्रति ये दूसरेकी अपेक्षा नही करते। जो जिस बातके लिये दूसरोंकी अपेक्षा नहीं रखता वह उस स्वभावमें नियत हुआ करता है। जैसे किसी कार्यके उत्पन्न करनेमें अंतिम जो कारणसामग्री है सब कुछ योग जुट कर सारे निमित्त जुटकर जो अंतिम कारण सामग्री है वह अपने कार्यके उत्पन्न करनेमें किसीकी अपेक्षा नही रखती। तो ये पदार्थ भी विनाशके लिये किसी दूसरेकी अपेक्षा नही रखते इस कारण ये सभी पदार्थ विनाश स्वभावमें नियत हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना भी कथनमात्र है क्योंकि कहीं भी यह नही देखा जा रहा कि अन्यकी अपेक्षा बिना ये दृश्य पदार्थ विनष्ट होते हों ? जैसे डण्डा मुग्दर आदिककी अपेक्षा बिना ये घट पट आदिक कहां विनष्ट हो पाते हैं ? किसीने डण्डा मारा। घड़ेको फोड़ दिया। तो घड़ेका विनाश डण्डेकी अपेक्षा रखकर ही तो हुआ। किसी भी अन्य प्रकारके अघातकी अपेक्षा रखे बिना घटका विनाश तो नहीं हुआ अर्थात् यह कहना कि ये सब पदार्थ विनाशके प्रति दूसरेकी अपेक्षा नही रखते, यह हेतु असिद्ध है।

विनाशके प्रति अन्यानपेक्षत्व हेतुकी क्षणिकत्व साध्यमें असिद्धि—अब यह बतलावो कि जो यह हेतु दिया है कि विनाशके समयमें अन्यकी अपेक्षा नही रखते तो अन्यानपेक्षत्वहेतुका क्या यह भाव है कि अन्यानपेक्षत्व मात्र या यह भाव है कि विनाश स्वभाव होनेपर फिर अन्यकी अपेक्षा नहीं रखते ? अन्यानपेक्षत्व हेतु में दो विकल्प किए गए। क्या सामान्य अन्यानपेक्षत्व इतना ही अर्थ है याने यह पदार्थ विनाशके प्रति अन्यकी अपेक्षा नही रखता इतना ही मात्र अर्थ है अथवा अन्यानपेक्षत्वका अर्थ क्या यह किया जा रहा है कि क्षणिक स्वभाव होनेपर फिर यह अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता। इस कारण पदार्थमें विनाश स्वभाव नित्य सिद्ध किया

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाय। यदि प्रथम पक्ष हाँ मानोगे कि विनाशके प्रति ये पदार्थ किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखते उतना ही मात्र हेतु है तो यव आदिके बीजके साथ अनेकान्तिकता सिद्ध हो जायगी। कैसे ? धानका अंकुर उत्पन्न करनेके लिए खेत, पानी, ऋतु समय आदिक सब साधन जुटा दिए गए पर बोये गए जौ तो क्या उससे धान्यके अकुर उत्पन्न हो सकेंगे ? न उत्पन्न होंगे। तो धान्यके अंकुरकी उत्पत्तिके सभी निमित्त जो जुट गए फिर भी धान्यके अंकुर पैदा होनेका नियम नहीं बन रहा। तो यह कहना अन्यानपेक्षत्व मात्र हेतु है जिससे हम पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध कर रहे हैं। यह बात संगत न बैठी। यदि कहो कि हम दूसरा अर्थ मानेंगे अर्थात् क्षणिक स्वभाव होनेपर फिर विनाशके प्रति अन्यकी अपेक्षा नही रखी जाती है इस कारण पदार्थ विनाश स्वभावमें नियत है। यों क्षणिक स्वभाव होनेपर अन्यानपेक्षत्व हमारा हेतु मानोगे तो अब इस हेतुमें दो अंश आ गए। क्षणिकस्वभाव होनेपर एक तो यह और दूसरा अन्यकी अपेक्षा न रखना, इन दो अंशोंमें क्षणिक स्वभाव होनेपर यह तो हुआ विशेषण और अन्यकी अपेक्षा न रखना यह हुआ विशेष्य। तो इस हेतुमें विशेष्य असिद्ध है, क्योंकि मान भी लें कि क्षणिक स्वभाव है फिर भी विनाशमें अन्यकी अपेक्षा न रखना, यह बात सिद्ध नही होती। जैसे कि अन्तिम कारण सामग्री अर्थात् कार्यको उत्पन्न करनेमें जितने कारण जुटाने चाहिएँ जुटाते जुटाते अंतिम जुटावो। अपने कार्यको उत्पन्न करनेका स्वभाव रख रहा है तो भी जब तक दूसरा क्षण न आयगा तब तक वह कार्यको उत्पन्न नही करती। क्षणिक सिद्धान्तमें भी एक ही क्षणमें कोई कार्यको उत्पन्न नही करता। तो देखो सब चीजें जुटी हों फिर भी दूसरा क्षण न आये तो कार्य नहीं कर पाता। कारणको देखो—उस कारणको दूसरे क्षण की अपेक्षा तो करनी पड़ी। अग्निका स्वभाव है दाह उत्पन्न करनेका सो ठीक है पर जब तक करतल या लकड़ी आदिकका संयोग नहीं मिलता तब तक दाह तो नही उत्पन्न करती। तो देखो—अग्निको लकड़ी आदिककी अपेक्षा करनी पड़ी तब दाह उत्पन्न कर सकी। तो यह कहना कि क्षणिक स्वभाव होनेपर फिर अन्यकी अपेक्षा नही रखी जाती, इस कारणसे पदार्थ विनाश स्वभावके नियत है यह असिद्ध है, क्योंकि अन्यानपेक्षत्व सिद्ध नही होता है। विनाश किसी कारणको पाकर हुआ करता है। और, कुछ कारण न मानो तो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जब दूसरा समय आये तब वह नष्ट होता है। तो कालकी अपेक्षा रखी। अन्य कारणोंकी न सही तो अपेक्षा किए बिना विनाश नही होता है। तो इस हेतुमें विशेष्य असिद्ध है। साथ ही इस हेतुमें जो विशेषण है, क्षणिक स्वभाव होनेपर यह विशेषण भी एक देश असिद्ध है। कैसे ? कोई पदार्थ अन्यान्यपेक्ष भी हो और क्षणिक स्वभाव रखे तब तो विशेषण भी सिद्ध कहलायेगा तो जैसे हिरण आदिकके सींग हैं। उन सींगोंमें जो सलवटें उत्पन्न हो जातीं है वे क्षणिक स्वभाव तो नहीं रखती। जिन्दगी भर बनी रहती हैं और वे अन्यान्यपेक्ष्य हैं। किसी दूसरकी अपेक्षा न रखकर होती हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यो अन्यान्यपेक्ष्य होकर भी क्षणिक स्वभाव नहीं पाया जा रहा इस कारण विशेषण की असिद्धि हुई तो यह बताना पदार्थोंको क्षणिक क्षण स्वभाव होनेपर अन्यकी अपेक्षा न रखना वह हेतु असिद्ध है।

उत्पत्तिके अनन्तर ही विनाशकी असिद्धि—और भी सुनो ! मान लो कि अहेतुक ही विनाश है, किसी अन्यके कारण बिना सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तो भी इतना तो हर एक कोई देख रहा है कि मुदगर आदिकके व्यापारके बाद ही घड़े का विनाश होता है। आप हम अपनी अहेतुकताकी हठपर डटे रहें, मगर लोगोंको यह सब दिख रहा है कि डंडा आदिक मारे गए ना, तब घड़ेका फूटना हुआ तो घड़ेका विनाश उसी समय मानो जब कि डंडाकी चोट लगी हो। उससे पहिले घटका विनाश ही नहीं मानो। चाहे अहेतुक मानो पर अहेतुक भी विनाश तब मानो जब डंडा मुदगर आदिकका व्यापार हो। उत्पत्तिके तुरन्त अनन्तर व्यापार माननेका सिद्धान्त ठीक नहीं बैठता। क्षणिकवादमें उत्पत्तिके तुरन्त ही अनन्तर विनाश माना गया है। यह जो स्पष्ट विदित हो रहा है कि डंडा आदिकके व्यापारके अनन्तर ही घटका विनाश हुआ, उससे पहिले न हुआ तो उससे पहिले घड़ेका विनाश होता नहीं दिख रहा है। इससे कमसे कम समय तो लम्बा कर दो, उत्पत्तिके बाद तुरन्त ही नष्ट हो गया ऐसा किसी की दृष्टिमें आ ही नहीं रहा, तो इतनी स्थिरता तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी इस कारण पदार्थ स्थिर स्थूल है इसका अपलाप नहीं किया जा सकता है।

उत्पत्त्यनन्तर पदार्थका ध्वंस माननेकी शंकायें व समाधान—शंकाकार कहता है कि घड़ेपर डंडे आदिकके व्यापारके बाद घड़ेका विनाश पाया जाता है तो इसी कारण डंडे आदिकके व्यापारसे पहिले भी घड़ेका विनाश मान लेना चाहिए अर्थात् डंडा मारनेपर घड़ेका अभाव देखा गया है तो यह भी मान लेना चाहिए कि डंडा लगनेसे पहिले भी घटका अभाव हो जाया करता है। उत्तर देते हैं कि यह तो बेतुकी उत्तर है। इस तरह तो हम यह भी कह सकेंगे कि डंडा आदिकके व्यापारसे पहिले पूर्व क्षणमें घटके अभावकी अनुपलब्धि थी, अर्थात् घटका विनाश न था तो डंडे आदिक की चोटके बाद भी घटके विनाशका अभाव रह जाय मुद्गर आदिक व्यापारसे पहिले घड़ेका अभाव तो न था, तो व्यापारके बाद भी घड़ेका अभाव मत रहे। जिस प्रकार का शंकाकारने उत्तर दिया था उस ही ढंगमें यह समाधान किया जा रहा है। शंकाकार यह भी नहीं कह सकता कि अन्तमें तो आखिर पादर्थका क्षय ही देखा जाता है, विनाश ही देखा जाता है, तो आदिमें भी विनाश मान लेना चाहिए। यह बात यों नहीं कह सकते कि इस युक्तिका संतानके साथ अनेकान्त दोष आता है अर्थात् किसी भी बातकी संतान अन्तमें नष्ट होती है तो यह नियम तो न बनेगा कि जो चीज अन्तमें नष्ट होती है उसको आदिमें भी नष्ट मान लिया जाय। जैसे दीपककी संतान आधा घंटा तक रहती है तो आखिर दिया बुझेगा अभाव तो होगा ही। तो क्या कहा जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता कि इस संतानका जब बादमें अभाव होता है तो इसके प्रथम ही क्षणमें अभाव मान लो। तो यों संतानसे अनैकान्तिक दोष होनेके कारण यह भी नहीं कह सकते कि अन्तमें क्षय हुआ करता है इससे आदिमें ही क्षय मान लो।

उत्पत्त्यनन्तर क्षणमें पदार्थका ध्वंस सिद्ध करनेमें प्रमाणका अभाव—अच्छा, अब शङ्काकार यह बताये कि पदार्थकी उत्पत्तिके ही अनन्तर पदार्थको ध्वंसी मान लेना यह तुम किस बातसे निश्चित् करते हो? इसको साबित करनेकी तुम्हारे पास क्या युक्ति है? क्या पदार्थकी उत्पत्तिके बाद पदार्थ तुरन्त ही नष्ट हो जाता है यह क्या इस बातसे निश्चित् करते हो कि जैसे मुदगर आदिक साधनके द्वारा घटादि का विनाश होता है तो उसमें यह विकल्प किया जाय कि बताओ घड़ेका वह विनाश क्या डंडेसे भिन्न है या अभिन्न है? अथवा डंडेके द्वारा किए गए घड़ेका विनाश क्या घड़ेसे भिन्न है या अभिन्न? अगर घड़ेसे भिन्न है तो विनाश ही क्या किया गया? यदि घड़ेसे अभिन्न है तो विनाश क्या? मायने घड़ा ही क्या? क्योंकि घड़ेका विनाश अभिन्न माना तो यों भिन्न और अभिन्न रूप विकल्पोंके द्वारा मुदगर आदिकसे घड़ेका ध्वंस सिद्ध नहीं किया जा सकता इस कारण क्या उदयके ही बाद, पदार्थकी उत्पत्तिके ही बाद पदार्थका नष्ट होना निश्चित् करते हो या किसी अन्य प्रमाणसे? अन्य प्रमाणसे निश्चय करनेकी बात तो असिद्ध हैं। प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणों के द्वारा यह प्रतीत नहीं होता कि ये पदार्थ उत्पत्तिके बाद ही तुरन्त नष्ट हो गए। यदि कहो कि उन भिन्न अभिन्न विकल्पोंके द्वारा हम यह सिद्ध करेंगे कि मुदगर आदिकके द्वारा घड़ेका अभाव नहीं किया गया तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कहनेपर तो यह सिद्ध हुआ कि घड़ेका विनाश मुदगर आदिककी अपेक्षा नहीं रख रहा। जिस ही भिन्न अभिन्नके विकल्प करके मुदगरमें घड़ेका ध्वंस नहीं हुआ यह सिद्ध कर रहे हो तो उससे मात्र इतना ही सिद्ध होगा कि मुदगर आदिककी अपेक्षा रखे बिना ही ध्वंस हो गया। यह तो सिद्ध नहीं होता कि उत्पत्तिके बाद ही पदार्थ नष्ट हो गया। यह नियम नहीं बन सकता कि जो अहेतुक हो वह उत्पत्तिके बाद ही हो। अहेतुक मानते हो तुम विनाशको तो अहेतुक पदार्थकी उत्पत्तिके बाद तुरन्त अहेतुक विनाश हो ही जाता है यह नियमकी बात नहीं कही जाती है। देखो ना अहेतुक हैं घोड़ेके सींग। अच्छा बताओ घोड़ेके सींग क्या सहेतुक है? घोड़ेके सींग भी उत्पन्न होते हैं क्या किसी हेतु से? तो सहेतुक तो न रहा। सहेतुक न रहे इसका ही अर्थ है निर्हेतुक। तो क्या निर्हेतुक सींग घोड़ेकी उत्पत्तिके बाद देखा गया? नहीं तो यह नियम नहीं बन सकता कि पदार्थकी उत्पत्तिके बाद तुरन्त उसका अहेतुक विनाश हो ही जाता है।

पदार्थका उदयानन्तर ध्वंस सिद्ध करनेमें दिये गये अहेतुकत्त्व हेतुकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि पदार्थका ध्वंस होना अहेतुक है। पदार्थके स्वभावमें ही स्वरूप पड़ा हुआ है कि पदार्थका ध्वंस हो जाय। स्याद्वादी लोग भी तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मानते हैं कि पदर्थमें उत्पाद व्ययका स्वभाव पड़ा हुआ है, तो इसी तरह सिद्ध हुआ ना कि पदार्थमें ध्वस्तादिक होनेको स्वभाव पड़ा हुआ है और वह स्वभाव अहेतुक है, तो ध्वंस होना अहेतुक है इस कारण ध्वंस हमेशा हो सकता है अतः ध्वंसमें काल आदिककी अपेक्षा नहीं होती। मुद्गर डंडा आदिककी भी ध्वंसमें अपेक्षा नहीं होती क्योंकि ध्वंस है अहेतुक। जैसे पदार्थका व्यय अहेतुक है इस कारण पदार्थकी उत्पत्तिके अनन्तर ही ध्वंस हो जाया करता है उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह अहेतुक होनेके कारण ध्वमका यदि सद्भाव मानते हो अर्थात् ध्वंस होना चूंकि अहेतुक है इसलिए वह सदा होता रहता है उसमें कालको या मुद्गर आदिककी अपेक्षा नहीं होती। तो ऐसा माननेपर फिर तो प्रथम क्षणमे ही ध्वंस मान लो ना। उत्पत्तिके अनन्तर समय में क्यों ध्वंस मानते। जो अनपेक्ष होता है वह अहेतुक होता है, सो वह कभी तो हो और किसी जगह हो यह बात नहीं बन सकती। जो बात अनुपेक्ष है और अहेतुक है वह तो सभी जगह होगी और सदा होगी। ध्वंस होना अहेतुक माना है और अनपेक्ष माना है। ध्वंस यदि काल मुद्गर आदिक साधनोंकी अपेक्षा नहीं रखता तो वह प्रध्वंस सदाकाल होना चाहिए। यह क्यों हो कि पदार्थकी उत्पत्ति प्रथम क्षणमें होगी उसके बाद द्वितीय क्षणमें पदार्थका ध्वंस होगा। प्रथम क्षणमें ही ध्वंस हो बैठे। यदि कोई बात कभी हो किसी समय हो, ऐसी प्रकृति रखता है तो उसका अर्थ यह होगा कि वह सापेक्ष है। जो पर्याय परिणति कभी हो, किसी समय हो तो उसमें यह निश्चय है ना कि यह किसी निमित्तकी अपेक्षा रखता है। जैसे आत्मामें क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक किसी प्रकारके विशिष्ट परिणमन कभी कुछ होते हैं, किसी समय कुछ होते हैं किसी सन्निधानमें होते हैं तो इसके मायने यह है कि वे क्रोधादिक कषायें परकी अपेक्षा करके होती हैं, आश्रय मिले, कर्मोदय हो तब वे विभावपरिणतियाँ होती हैं। तो यों ही यदि पदार्थका ध्वंस पदार्थकी उत्पत्तिके क्षणमें ही नहीं हुआ, पदार्थको उत्पत्तिके क्षणके बाद द्वितीय क्षणमें हुआ तो इसके मायने हैं कि वह सापेक्ष हो गया और जो सापेक्ष होता है वह सहेतुक हुआ करता है। सापेक्ष बात अहेतुक नहीं हुआ करती क्योंकि सापेक्षता चीजकी व्याप्ति सहेतुकपनेसे है, अहेतुकपनेसे नहीं है।

भावहेतुसे अभाव माननेकी असंगतता—अब शंकाकार कहता है कि वाह यदि पदार्थकी उत्पत्तिके समयमें ही याने प्रथम क्षणमें ही पदार्थका ध्वंस मान लिया जाय तो सत्त्व ही सम्भव न रहा। पहिले समयमें पदार्थ उत्पन्न होता है और उस ही पहिले समयमें यदि कह दिया जाय कि पदार्थ नष्ट होता है तो सत्व क्या रहा? फिर सत्त्वकी प्रच्युतिका नाम है ध्वंस, तो जब सत्त्व ही न हो पाया तो फिर ध्वंस क्या हुआ? इस कारणसे यह मानना चाहिए कि पदार्थ ध्वंसस्वभावी अपने हीं हेतुसे हुआ करता है अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होते हैं, पदार्थका सत्त्व बनता है तो उसी पदार्थ की उत्पत्तिके कारणसे ही ध्वंस भी हो जाया करता है। उत्तर देते हैं कि यह तो बिना विचारे हीं सुन्दर जचता है, पर इसपर विचार किया जाय तो इसकी असंगतता

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध होती है, क्योंकि यदि उत्पत्तिके कारणसे ही पदार्थका ध्वंस मान लिया जाय अर्थात् जिस कारणसे पदार्थकी उत्पत्ति होती है उसी कारणसे पदार्थका ध्वंस मान लिया जाय तो यह बतलाओ कि क्या एक क्षण रहने वाले भावहेतुसे, उत्पत्तिकारणसे सत्ताका विनाश हुआ या कालान्तरमें रहने वाले भावहेतुसे सत्ताका नाश हुआ ? शंकाकारका इस समय यह कथन था कि जिन कारणोंसे पदार्थ उत्पन्न होता है उन्हीं कारणोंसे पदार्थका ध्वंस भी होता है तो उसी सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि क्या वे उत्पत्तिके कारण एक ही क्षण रहते हैं जिससे कि ध्वंस माना है या कुछ काल तक टिकते हैं पदार्थकी उत्पत्तिके कारण जिससे कि ध्वंस मानते हो ? यदि कहोगे कि एक क्षण ही रहने वाले भावहेतुसे पदार्थका ध्वस भी हो जाता है तो यह बात असिद्ध है। भावका हेतु उत्पत्तिका कारण या कुछ भी पदार्थ एक क्षण रहा करता है यही बात तो सिद्ध नही हो पा रही है। फिर उस उत्पन्न उत्पत्तिके कारणसे पदार्थकी सत्ताका ध्वंस कर दिया गया यह कैसे सिद्ध हुआ ? यदि कहो कि वह उत्पत्तिके कारण जिससे पदार्थ उत्पन्न हुआ है, वही पदार्थका ध्वंस कर देता है ऐसा वह भावहेतु कालान्तर स्थिर रहता है, क्षणस्थायी नही है, उस काल तक रहता है तो इससे सिद्ध हो गया कि कुछ काल तक भी रहने वाली बात है कुछ। पदार्थ है स्थायी ? फिर क्षणिकता तो न रही। इससे यह मानना चाहिए कि पदार्थ जैसे क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पर्यायोंसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है इसी तरह पदार्थमें स्थायित्व भी है। जैसे द्रव्यकी पर्यायें उत्पन्न होती हैं वे द्रव्य कालन्तर स्थायी हुआ करते है।

अपेक्षा दृष्टिसे उत्तरक्षणमें क्षय माननेकी विशेषता—ये क्षणिकवादी ऐसा मान रहे हैं कि जिस कालमें पदार्थ उत्पन्न होता है उस हीके अनन्तर द्वितीय समयमें पदार्थका ध्वंस हो जाता है। इस बातको यदि स्याद्वादकी रीतिसे देखें तो अयुक्त नहीं कहा जा सकता। जैन शासनमें भी माना गया है कि पदार्थमें प्रति समय पर्यायें उत्पन्न होती है और प्रतिसमय पूर्व पर्याय विलीन होती है और उसमें तो यहां तक भी माना गया है कि एक ही क्षणमें उत्पाद है और उस ही क्षणमें विनाश एक क्षणमें है। नवीन पर्यायकी उत्पत्ति और पूर्व पर्यायका व्यय यों है एक साथ न कि उस ही पर्यायकी उत्पत्ति और उस ही पर्यायका विनाश एक क्षणमें है। और, फिर यह भी बात जानी गई है कि नवीन पर्यायकी जो उत्पत्ति हुई है उसका दूसरे क्षणमें ही विनाश होना। क्योंकि दूसरे क्षणमें नवीन पर्यायकी उत्पत्ति होगी। तो क्षणिक वादियोंका यह कहना असंगत तो नहीं है लेकिन वे पर्यायको ही द्रव्य मान लेते। पूरा पदार्थ इतना ही है फिर उसकी उत्पत्ति और उसका ध्वंस मानना यह असंगत है। द्रव्य है स्थायी और उसमें पर्यायें प्रतिसमय नवीन बनती हैं। पुरानी विघटती हैं ऐसा माननेमें कोई दोष नही है।

भावहेतुसे विनाश माननेपर तीन विकल्पोंमें शंकाका निराकरण—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अब क्षणिकवादियोंसे पूछा जा रहा है कि पदार्थोंकी उत्पत्तिमें कारण यदि पदार्थों के विनाशके कारण बनते हैं तो पदार्थोंकी उत्पत्तिका कारण क्या पदार्थकी उत्पत्ति से पहिले ही पदार्थोंके अभावको कर देता है या उत्पत्तिके उत्तर कालमें अभाव उत्पन्न करता है अथवा उस ही कालमें पदार्थकी उत्पत्तिका कारण पदार्थके विनाशको उत्पन्न करता है ? ऐसे ये तीन विकल्प किए। पहिला पक्ष माननेपर याने पदार्थकी उत्पत्तिका कारण पदार्थको उत्पत्तिका कारण पदार्थकी उत्पत्तिसे पहिले ही उसका अभाव कर देता है तो वह अभाव प्रागभाव रूप रहा, प्रध्वंसाभाव रूप न रहा। यदि कहो कि भावहेतु ने पदार्थकी उत्पत्तिके समयमें अभाव न किया बादमें किया तो पदार्थ की उत्पत्तिके समय पदार्थका विनाश न करनेके कारण विनाशका कारण, भाव हेतु न कहलायेगा क्योंकि जब भावहेतु था जिससे कि भावकी उत्पत्ति हुई उस कालमें तो विनाश माना नहीं, उत्तरकालमें विनाश कह रहे हो तब फिर भाव हेतु अर्थात् पदार्थकी उत्पत्तिका कारण उत्तरकालमें होने वाले विनाशका कारण कैसे कहलायेगा और भावकी उत्पत्तिके समयमें जिसके कारणसे भावकी उत्पत्ति हुई उस ही समयमें उस ही कारणसे उस भावका प्रध्वंस भी हो ऐसी बात बनती तब तो दोनोंका कारण एक कहा जाता। किन्तु अब तो द्वितीय पक्षमें यह मान रहे हो कि पदार्थकी उत्पत्तिके बाद विनाश किया जाता है और कदाचित ऐसी कल्पना करो कि घटकी उत्पत्तिके दूसरे क्षणमें भी तो कुछ बनेगा ना, उस भावका जो हेतु है। वह घटका ध्वंस करता है। तो इस तरह उत्तरोत्तर कालमें होने वाले भावोत्पत्तिकी अपेक्षा रखकर यह भी भावका विनाश, घटका विनाश कैसे उत्पत्तिके अनन्तर कहलाया ?

यदि तीसरा पक्ष कहोगे अर्थात् पदार्थकी उत्पत्तिका कारण उत्पत्तिके ही समयमें पदार्थके विनाशको कर देता है तब तो भावकी उत्पत्तिके समान कालमें ही भावका विनाश हो, तो लो अब विनाश और भावकी सत्ता और पदार्थका विनाश जब दोनों एक साथ रह गए, दोनोंके एक साथ रहनेमें कोई विरोध न रहा तो फिर पदार्थको कभी नष्ट न होना चाहिए, क्योंकि पदार्थका सत्त्व और पदार्थका विनाश जब दोनों साथ बनकर एक ही समय रह सकते हैं तब फिर भावके नष्ट होनेका प्रसंग ही क्या ?

और, जो बात सीधी स्पष्ट देख रहे हैं कि दंड आदिकके घातके अनन्तर ही घटका विनाश देखा जा रहा तो क्यों नहीं मान लिया जाता कि दंड आदिकके चोटके कारण घटका विनाश हुआ है। दंड आदिकसे व्यापारके बाद घटका प्रध्वंस देखा गया इतनेपर भी यदि मुदगर आदिकके व्यापारके कारण घटका प्रध्वंस नहीं माना तब फिर पदार्थकी उत्पत्तिके कारणके साथ भी पदार्थकी उत्पत्तिका अन्वयव्यतिरेक नहीं बन सकता है। जब दंड चक्र, कुम्हार आदिकके व्यापार होनेपर घटकी उत्पत्ति देखी गयी और उन कारणोंका व्यापार न होनेपर घटकी उपलब्धि न पायी गई तो उससे सिद्ध है ना कि उन कारणोंसे घटकी उत्पत्तिका अन्वयव्यतिरेक है। इसी प्रकार मुदगर आदिक व्यापारोंसे घटका अभाव देखा गया और मुदगर आदिक व्यापारके

अभावमें घटका अभाव न देखा गया तो कैसे न सिद्ध होगा कि डंड आदिके व्यापार का घटके अभावके साथ अन्वयव्यतिरेक है।

एक कारण द्वारा उत्पादव्यय कहनेका मर्म —इस प्रकरणमें क्षणिकवाद में उसके सिद्धान्तसे वस्तुके उत्पादव्ययका सूक्ष्म स्वरूप समझनेमें बड़ा सहयोग मिलता है। बात जो क्षणिकवादियोंने कही वह सब पदार्थकी जो सूक्ष्म प्रति क्षण होने वाले उत्पाद व्ययको समझनेमें बहुत सहायक हैं। अन्तर यह हो गया कि क्षणिकवादी लोग यदि पर्यायका ही उत्पादव्यय स्वीकार करते तब तो उनकी बात कोई असंगत न थी। उनका यह कहना कि जो उत्पत्तिका कारण है वही विनाशका कारण है। इस समय उनके सिद्धान्तकी मीमांसा चल रही है। तो अब देख लीजिए कि उस ही सम्बन्धमें कहीं नवीन पर्यायका उत्पाद है पूर्व पर्यायका विनाश है तो देखो—उत्पत्ति और विनास का कारण एक ही पड़ा ना। जिस कारणसे नवीन पर्या को उत्पत्ति हुई उस ही कारणसे तो अनन्तर पूर्व पर्यायका नाश हुआ। तब भावहेतु प्रध्वंसका ही कारण बन गया। अब इसमें दो बातोंकी त्रुटि करनेपर यह सिद्धान्त गलत हो जाता है। एक तो यह माननेपर कि उस ही एक उत्पत्तिके कारण द्वारा उस ही पर्यायकी उत्पत्ति हुई और उस ही पर्यायका विनाश हुआ यह तो असंगत बात होगी। और एक पर्याय न मानकर समूचा द्रव्य अर्थ मान लिया जाय कि उस अर्थकी उत्पत्ति हुई उस अर्थका विनाश हुआ तो यह भी असंगत हो गया, किन्तु उत्पत्तिका कारणभूत पदार्थ नवीन पर्यायका उत्पाद कर रहा है और पूर्व पर्यायका व्यय कर रहा है इसमें कोई असगत बात नही है।

कारणोंसे भावकी उत्पत्ति बताकर अभावको अहेतुक बतानेका असफल प्रयास – अब शंकाकार कहता है कि मुद्गर डंडा आदिकका जो व्यापार हुआ सो वह खपरियोंकी संततिके उत्पन्न करनेमें ही हुआ अर्थात् डंडा आदिककी चोटने घटका विनाश नहीं किया किन्तु खपरियोंकी उत्पत्ति इसका समाधान देते हैं कि मुदगर आदिकके व्यापारने खपरियोंकी उत्पत्तिकी तो क्या उस समय घट अपने स्वरूपसे अविकृत रहा ? अर्थात् घटके स्वरूपमें कोई बाधा नही पहुचती। क्योंकि त्यों ही घट का स्वरूप बना रहा तो पहिलेकी तरह मुदगर आदिककी चोट लगनेपर भी घटकी उपलब्धि होनी चाहिए। जब यह मान रहे हो कि मुदगर आदिकके लगनेसे घड़ा नही फूटा, किन्तु खपरियाँ उत्पन्न हुई तो खपरियाँ उत्पन्न हो जायें और घटका विनाश न हो तो घटका स्वरूप तो ज्योंका त्यो रहना चाहिए, पर कहाँ रहता है ? शंकाकार कहता है कि जिस समय मुदगर आदिकका सन्निधान हुआ मुदगर आदिक व्यापारके समयमें घड़ेका स्वयं ही अभाव हुआ, मुदगर आदिक व्यापारके कारण नहीं हुआ। अभाव तो अहेतुक होता है किन्तु भाव सहेतुक होता है। जो खपरियां उत्पन्न हुई वह तो सहेतुक हैं। खपरियोंको तो मुदगरोंने उत्पन्न किया लेकिन उस कालमें घड़ेका

स्वयं अभाव हो गया इस कारण उस समयमें घड़ेकी उपलब्धिका प्रसंग नहीं आता। उत्तरमें कहते हैं कि देखिये मुदगर आदिकके व्यापारके समय ही घड़ेका अभाव पाया गया और उस व्यापारसे पहिले घड़ेका अभाव नही पाया गया, इससे सिद्ध हुआ कि घड़ेका अभाव मुदगर आदिकके व्यापारका कार्य है। यहाँपर शंकाकारकी दृष्टि यह है कि कारण कूट किसी बातको उत्पन्न किया करता है और किसी पदार्थकी उत्पत्ति होनेके समय फिर जो चीज नही रहा करती वह स्वयमेव नही रहती। तो पूर्वके अभावको उत्तर भाव स्वरूप माननेपर यह बात तो घटित हो जायगी लेकिन अभाव को भाव स्वरूप न माननेपर यह बात घटित नही होती। भाव स्वरूप माननेपर दोनों ही बातें बन गई पूर्व पर्यायका व्यय उत्तर पर्यायके सद्भावरूप है। तो उस समय यह कहना कि उत्तर क्षणका उत्पाद हुआ उसका ही अर्थ यह बन जाता है कि पूर्व क्षणका विनाश हुआ।

घटक्षणमें क्षणान्तरको उत्पन्न करते रहनेके सम्बन्धमें प्रश्न और उत्तर

अब शंकाकार कहता है कि घट ही विनाशके कारण रूपसे प्रसिद्ध मुदगर आदिककी अपेक्षा रखकर समान्त क्षणान्तरके उत्पन्न करनेमें असमर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है अर्थात् घट जिस क्षणमें है वह तो कहलाया घटक्षण और उसके बाद जो दूसरा समय आयगा वह कहलाया क्षणान्तर। तो घटक्षण ही क्षणान्तरको उत्पन्न करता है यह मूल बात कही जा रही है। लेकिन वह क्षणान्तर कैसा है जो घटक्षण के बाद हो अर्थात् दूसरे समयकी पर्याय, वह क्षणान्तर कैसा है कि घटक्षणके समान अपनी वृत्ति उत्पन्न करनेमें असमर्थ है अर्थात् दूसरी क्षणमें पहिले क्षणकी बात नही है। लेकिन उस दूसरे क्षणकी बातको इस पहिली क्षणने ही उत्पन्न किया है। तो घड़ा ही मुदगर आदिककी अपेक्षा करके क्षणान्तरको उत्पन्न करता, नई बातको उत्पन्न करता जो क्षणान्तर पहिली क्षणके समान नही है। अर्थात् समान क्षणान्तरकी उत्पत्ति करनेमें असमर्थ है याने घटक्षण घटक्षणको ही उत्पन्न नही करता। जो भी पदार्थ नया बनेगा, (जो पर्याय नई बनेगी) उस क्षणान्तरको उत्पन्न करता है और फिर वही घट उस क्षणान्तरकी अपेक्षा करके अन्य असमर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है फिर वह तृतीय क्षणान्तरकी अपेक्षा करके फिर असमर्थ चतुर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है। इस तरह घट ही उन क्षणान्तरोंको उत्पन्न करता जा रहा है। कब तक? जब तक कि घटकी संतति टूट नहीं जाती। जिसमें हम घट है, घट है ऐसा भ्रम किया करते हैं वह सतति जब तक मिट नही जाती तब तक हो क्या रहा है कि यह घड़ा ही क्षणान्तरको उत्पन्न करता जा रहा है। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि मुदगर आदिक के व्यापारने अभाव नही किया। अभाव तो स्वयं हुआ, पर उसकी अपेक्षा करके मुदगर आदिक कारणोंकी अपेक्षा करके घट ही क्षणान्तरको उत्पन्न करता है। इस शंका के समाधानमें कहते हैं कि जरा यह तो बतलावो कि आपके इस कथनमें जो यह कहा गया कि घटक्षण असमर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है। मुदगर आदिककी अपेक्षा

Version 1

करके तो बताओ वहाँपर मुदगर आदिकके द्वारा घटक्षणकी सामर्थ्यका घात किया गया या नही ? यदि कहो कि घटकी सामर्थ्यका घात किया गया है तब फिर अभाव को अहेतुक क्यों कहते हो ? तब तो अभाव सहेतुक हो गया। मुदगर आदिकके कारण ने घटकी सामर्थ्यको फोड़ दिया, नष्ट कर दिया तो इसका अर्थ है कि मुदगर आदिक के द्वारा घटका अभाव कर दिया गया, और यदि यह कहो कि मुदगर आदिकके द्वारा घटकी सामर्थ्यका घात कर दिया गया तो मुदगर आदिकके पटक देनेपर घटक्षणको उत्पन्न करते रहनेके स्वभावका घात जो हुआ नही तब तो समान क्षणान्तरको ही उत्पन्न करना चाहिए अर्थात् घट घटको ही बनाये रहे क्योंकि अब तो समर्थ क्षणान्तर को उत्पन्न करनेका स्वभाव सिद्ध हो गया। जब मुदगर आदिकके द्वारा घटकी सामर्थ्य का घात नही किया गया तब तो घट क्षणिक न रहा, स्थायी हो गया।

विनाशव्यापार होनेपर हुए अभावसे सुख दुख होनेके कारण अभाव की सहेतुकताकी सिद्धि—घटादिकका अभाव मुदगर आदि किसी कारणसे होता है यह तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि देखो किसी पदार्थकी उत्पत्तिसे पहिले उसके सद्भावके अभावका निश्चय है ना। जैसे घड़ा बनता है कुम्हार तो उसे मृत्पिण्डमें घड़ेके अभावका निश्चय है ना, तभी तो यह घड़ा बनानेका उद्यम करता है। तो घटकी उत्पत्तिसे पहिले घटके सद्भावके अभावका निश्चय होनेपर घट के उत्पादक कारणोंका जोड़ना करना आदिक किया जाता है और जब घट बन गया तो उसके उत्पन्न होनेपर व्यापार समाप्त कर दिया जाता है। घड़ा बननेके बाद फिर कौन हाथ चलाता है, चक्का चलाता है ? अब इसके बाद देखिये कि घड़ा बन गया, घड़ा यदि बुरा लग रहा है। अच्छा नहीं बना तो अनिष्ट हो गया घड़ा और अच्छा बन गया तो इष्ट हो गया। अब अच्छा न लगा तो अनिष्ट हुआ ना। तो उस बनाने वाले या देखने वालेकी इच्छा होती है कि इसको नष्ट कर दिया जाय तो उस घटके विनाशके लिए डण्डा आदिक मारे जाते हैं तो वह नष्ट हो जाता है। तो अनिष्ट घड़ा नष्ट हुआ तो सुख हुआ कि नहीं ? क्योंकि अनिष्ट लग रहा था उससे उसे कुछ वेदना हो रही थी। उसे नष्ट कर दिया तो हुआ उसे सुख। और, जो घड़ा अच्छा था, इष्ट लग रहा था और किसी कारणसे वह गिर पड़े या कोई दूसरा डण्डा मार दे। वह घड़ा फूट जाय तो उससे होता है दुःख। अब देखो—जो सुख और दुःख होते हैं वे सद्भावसे हुए कि अभावसे ? अनिष्ट घड़ेका विनाश होने का दुख हुआ तो विनाश करने वाले कारणोंके व्यापारके बाद अनिष्टके नष्ट होनेपर सुख हुआ और इष्टके नष्ट होनेपर दुःख हुआ ऐसा अनुभव किया जाता है। सो यहां देखो कि उस इष्ट या अनिष्ट घड़ेका सद्भाव सुख दुःखका कारण नही होता इस तरह का किन्तु उनका विनाश हुआ, सुख दुःखका कारण हुआ। इससे सिद्ध है कि घटसे व्यतिरिक्त अभाव मुद्गरके द्वारा किया गया है ऐसा जानना चाहिए।

घटके अभावको घटसे अर्थान्तर न माननेपर अभाव (प्रध्वंस) के विषयमें

http://www.jainkosh.org

तीन विकल्प — इस सम्बन्धमें अब और भी बतलावो कि यदि अभावका उस घटसे अर्थान्तर नहीं मानते तो क्या घट ही प्रध्वंस कहा जाता है या घट और कपालसे भिन्न कोई पदार्थान्तरको ध्वंस कहते हैं। प्रध्वंस नाम है किसका क्या घटका या खपरियों का अन्य किसी चीजका, यदि कहो कि घटका नाम प्रध्वंस है तो नाम एक रहा। घट के स्वरूपका ही नाम आपने प्रध्वस रख दिया तो रखदें प्रध्वंस नामपर घटका स्वरूप तो अब अचलित हो गया। केवल प्रध्वंस नाम धर देनेसे तो न मिट जायगा। घटका प्रध्वंश जब एक मान लिया तो घटका स्वरूप तो अविचलित रहा तो वह नित्य ही रहा। फिर क्षणिकता कहां आयी ? यदि कहो कि एक क्षण ही ठहरने वाला जो घटका स्वरूप है उस हीका नाम प्रध्वंश है। अर्थात् प्रध्वंसाभाव कोई अलग चीज नही किन्तु एक क्षणमें ही ठहरनेका नाम है प्रध्वंसाभाव। उत्तर देते हैं कि यह बात ठीक नहीं है क्योंकि एक क्षण भी कौन चीज ठहरती है ? सभी चीजें एक क्षणके बाद नहीं रहती, यह बात अब तक भी सिद्ध न हो सकी। उस हीका तो प्रसंग चल रहा है। इस कारण घट हीका नाम प्रध्वंस है वह कहना ठीक नहीं। यदि कहो कि खपरियोंका नाम ही प्रध्वंस है तो जब तक वे खपरियां उत्पन्न नहीं हुई। कपाल नहीं बना उससे पहिले पहिले तो घटकी स्थिति रहती है ना। तब सिद्ध हो गया ना कि पदार्थ कालान्तरमें भी अवस्थित रहता है। यद्यपि ऐसा कहना युक्त है कि कपालोंका ही नाम घटका प्रध्वंस है क्योंकि अभाव भावस्वरूप ही होता है। घट फूट गया, कपाल हो गया तो कपालोंका उत्पाद और घटका अभाव एक ही समयमें होता है। और कपालोंके उत्पादका ही नाम घटका प्रध्वंस है और घटके प्रध्वंसका ही नाम कपालोंका उत्पाद है लेकिन ऐसा कहने वाला यह क्षणिकवाद सिद्धान्त तो यह मान रहा है कि प्रत्येक पदार्थ एक ही क्षणमें स्थित होता है। कपालोंका नाम घटका अभाव है ऐसा कहनेसे भी यही बात तो आयी ना कि जब तक खपरिया न बनी थीं तब तक घट बराबर बना हुआ था। तो घड़ा अब एक क्षणस्थायी तो न रहा। यह १०-५ वर्ष भी टिक सकता है उसके बाद खपरियां बनी। तो फिर पदार्थका कालान्तरमें ठहरना यह बराबर बन गया। क्षणिकता अब न रही।

"वह नहीं" इन दो शब्दोंकी परस्पर भिन्नता व अभिन्नताका विकल्प अब यह बतलाओ कि खपरियाँ बननेपर कपालके समयमें जो यह कहा जाता कि जो घड़ा था वह न रहा, तो इसमें जो दो शब्द हैं—"वह, न" तो इन शब्दोंका क्या एक ही अर्थ है या न्यारे-न्यारे अर्थ हैं ? इसमें वह और न इन दोनों शब्दोंका अर्थ भिन्न-भिन्न है अथवा अभिन्न अर्थ है ? यदि कहो कि भिन्न अर्थ है तो फिर अभाव पदार्थान्तर बन गया और वह "न" शब्द के द्वारा कह दिया गया। "वह" और "न" इनका अर्थ जुदा है ना ! तो जो वहका अर्थ है वह न का नही। जो न का अर्थ है वह वहका अर्थ नहीं। तो "वह" तो हुआ भाव रूप और "न"

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुआ अभाव रूप। तब अभाव रूप पदार्थान्तर जो 'न' शब्दके द्वारा कहा गया है वह बराबर सत्य रहा कि नही ? यदि कहो कि "वह, नही" इन दोनों शब्दोंका अर्थ अभिन्न है, एक ही अर्थ है तो जब एक ही अर्थ है तो पहिले क्यों ना 'न' का प्रयोग बन बैठे ? घडेके प्रध्वंस होनेपर ही अब क्यों कहते हो कि वह नही'। जब प्रध्वंस नही हुआ था उससे पहिले भी उसमें न का प्रयोग करते। क्योंकि 'वह, न' इन दोनों का अब अर्थ अभिन्न कह रहे हो ! शङ्काकार कहता है कि पहिले कैसे 'न' का प्रयोग कर दिया जाय ? जब अनुपलम्भ हो, चीज न मिले तभी तो न' का प्रयोग किया जायगा ? उत्तर देते हैं कि यह बात तुम इस प्रसंगपर नही कह सकते क्योंकि देशकाल आदिकका व्यवधान जब नही हो रहा है तब अपने स्वरूपसे च्युत न होने वाला जो अर्थ है अर्थात् घड़ेका स्वरूप है—बीचमें मोटा रहना, नीचे ऊपर सकरा रहना आदि, उस स्वरूपसे न गिरा हुआ जो पदार्थ है—जैसे उदाहरणमें घट, उसके अभावकी अनुत्पत्ति है। अभाव तो तभी बनता जब देशका व्यवधान हो अथवा कालका व्यवधान हो ? कालमें कोई चीज नही आ रही थी, बीच कालमें न रही और अब हो गई तभी तो अनुपलम्भ कहा गया कि नही पाया गया। अथवा इस तरहका कोई देशकी अपेक्षा व्यवधान हो जाय, अभी इस देशमें था, अब न रहा, अब फिर आ गया तो अनुपलम्भ बन सकता है। यहाँ यह पूछा जा रहा है कि शंकाकार जो यह कहता है कि वह नही याने वह घड़ा नही रहा तो वह घड़ा और नही, इन दोनोंका अर्थ तो है अभिन्न लेकिन पहिले न का प्रयोग इसलिए नही होता कि जब घड़ा अनुपलम्भ न था, तो इस संबंधमें पूछा जा रहा है कि तुम जिसका अनुपलम्भ कह रहे हो वह घड़ा स्वरूपसे च्युत होकर अनुपलम्भमें आ गया या स्वरूपसे च्युत न होकर आ गया ? यदि स्वरूपसे च्युत नही हो रहा है, अपने स्वरूपको ठीक बनाये हुए है तो उसमें अनुपलम्भ कह नहीं सकते। यदि स्वरूपसे च्युत हो रहा है तब ठीक हो गया कि कपालके कालमें मुदगर आदिकके कारण कोई भावान्तर हुआ, अभाव हुआ। घटके अतिरिक्त कुछ चीज और हुई उसी का नाम अच्युति है। तो यों अभाव है कुछ और जिसका अभाव होता है वह पदार्थ अनेक कालोंमें रहता है। इससे पदार्थको तुम क्षणिक सिद्ध नही कर सकते।

प्रमाणका विषय सामान्यविशेषात्मक अर्थ बतानेका प्रकरण – यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि प्रमाणका विषय है सामान्यविशेषात्मक पदार्थ। न केवल सामान्य रूप कुछ प्रमाणका विषय होता, न केवल विशेषरूप कुछ प्रमाणका विषय होता, क्योंकि सामान्यरहित विशेष कुछ नही, विशेष रहित सामान्य कुछ नही। यों सामान्यविशेषात्मक पदार्थमें मानते समय क्षणिकवादियोंने यह कहा कि पदार्थ तो केवल विशेषात्मक हुआ करता है, भेदात्मक, इसके अतिरिक्त सामान्य कुछ नही। तो ऐसे भ्रमको मिटानेके लिए सामान्य तत्त्वकी सिद्धि चल रही है। सामान्य दो प्रकारका होता है—एक तिर्यक सामान्य और दूसरा ऊर्ध्वता सामान्य। तिर्यक सामान्य कहते हैं एक ही कालमें ठहरे हुए बहुतसे व्यक्तियोंको सदृश परिणामसे निरखनेको और एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यक्तिमें एक पदार्थकी अनेक पर्यायें होती हैं उन पर्यायोंमें अवस्थित एक द्रव्यका देखना स्थायी वस्तुका निरखना यह है उर्ध्वता सामान्य। तो ऊर्ध्वता सामान्यके प्रकरणमें ऊर्ध्वता सामान्यका निराकरण करनेके लिए क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि कोई पदार्थ दो क्षण ठहर ही नही सकता। प्रत्येक पदार्थ एक क्षण रहता है, दूसरे क्षणमें उसका अभाव हो जाता है तो इस क्षणभंगको निराकृत करनेके लिए ये सब प्रश्नोत्तर चल रहे हैं।

घट और कपालसे व्यतिरिक्तप्रध्वंस माननेकी मीमाँसा—यहाँ शंकाकार कहता है कि घट और कपाल इनसे भिन्न कोई घट प्रध्वंस हुआ करता है। जो प्रध्वंस है वह न घटस्वरूप है, न कपाल स्वरूप है, किन्तु घट और कपाल इनसे भिन्न कोई भावान्तर है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो यहां प्रध्वंसके साथ घट रह गया। क्योंकि व्यतिरिक्त अनेकों पदार्थ सदैव रहते हैं सो प्रध्वंसके साथ घट रह जाने के कारण एक साथ उभय अवस्थित हो गया, घट भी रहा आया, प्रध्वंस भी हो गया। तो फिर प्रध्वंस ही क्या कहलाया ? घटके रहते हुए भी घटका प्रध्वंस माना जाय तो घटकी उत्पत्तिके समय भी घटका प्रध्वंस मान लेना चाहिए और उत्पत्तिके कालमें घटका प्रध्वंस मान लेनेपर घटकी उत्पत्ति ही न कहलायेगी। जब प्रध्वंस हो गया तो घटकी उत्पत्ति कहाँसे हो ? तो यह कहना युक्त नही कि घटका प्रध्वंस घट और कपालसे कोई जुदी चीज है। इस प्रसंगमें थोड़ा यह समझ लेना चाहिए कि उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिका नाम पूर्व पर्यायका व्यय है। अब उसको किसी भी शब्दसे कह लो जब उत्तर पर्यायकी उत्पत्ति कारणोंसे होती है तो पूर्व पर्यायका व्यय भी कारणों से होगा। तो जैसे उत्पत्ति अहेतुक नही है ऐसे ही अभाव भी अहेतुक नही होता। और देखो जब वस्तुका प्रध्वंस होता उससे पहिले वस्तु बहुत काल तक बनी रही ना, इस लिए सर्वथा क्षणिक मानना असंगत है।

अन्यानपेक्ष होनेसे स्थितिकी अहेतुकताकी सिद्धि—क्षणिकवादी लोग विनाशको अहेतुक सिद्ध करनेके लिए अन्यानपेक्षताका हेतु दे रहे हैं कि चूँकि विनाश किसी अन्यकी अपेक्षा नही रखता, इस कारण स्वतः ही होता है और अहेतुक है। और जो अहेतुक है वह किसी कारणकी अपेक्षा न रखनेसे कभी हो कभी न हो ऐसा नहीं है। अहेतुक तो सदा होता है और इसी कारण पदार्थकी उत्पत्तिके अनन्तर ही विनाश हो जाता है। यों अन्यानपेक्षता बता कर स्वभावसे ही अभावकी सिद्धि बताने पर उनसे यह कहा जा सकता है कि इस तरह यदि विनाशको अहेतुक मानते हो तो इस तरह स्थिति भी स्वभावसे अहेतुक क्यों न हो गयी ? पदार्थ में तीन धर्म हैं—उत्पाद व्यय और स्थिति जिसमें व्ययको तो अहेतुक मानते हो, अन्यको नहीं, तो अन्यानपेक्ष होनेसे जैसे व्ययको अहेतुक मान लिया इसी तरह स्थिति भी अन्यानपेक्ष होनेसे स्वभावसे रहेगी और स्थिति सदा बनी रहेगी।

Version 1

क्योंकि वहाँ भी ऐसा कहा जा सकता है कि कालान्तरमें स्थायी रहने वाला भाव अर्थात् ध्रौव्य अपने हेतुसे ही उत्पन्न होता हुआ स्थितिके सद्भावके लिये भावान्तरकी अपेक्षा नही करता । जैसे अग्नि उष्णत्वके लाभके लिए किसी अन्य पदार्थकी अपेक्षा तो नही करती क्योंकि अग्निका स्वभाव उष्णता है और कोई भी पदार्थ अपने स्वभावको रखनेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा नही किया करता है । तो इस तरह स्थितिको भी अहेतुक कहा जा सकता अन्यानपेक्ष कहा जा सकता । फिर तो सदा स्थितिका सद्भाव रह जाना चाहिए ।

स्थिति स्थितिवानमें भिन्न अभिन्न किये जानेके विकल्पों द्वारा स्थिति की अहेतुकताके निराकरणका निष्फल प्रयास—यदि कहो कि स्थिति और स्थितिवानमें भिन्न और अभिन्नके विकल्प करके निराकरण किया जा सकता है जैसे कि विनाशको सहेतुक माननेपर वहां कहा जा रहा था कि हेतुवोंके द्वारा पदार्थका जो विनाश किया गया वह विनाश पदार्थसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? यदि विनाश पदार्थसे भिन्न है तो पदार्थका क्या किया । वह तो ज्योंका त्यों रहेगा क्योंकि विनाश तो भिन्न हो गया । यदि कहो कि विनाश पदार्थसे अभिन्न है तो हेतुने विनाश किया इसका अर्थ क्या ? इसका अर्थ यह निकला कि हेतुने पदार्थ ही कर दिया तो ऐसी बात तो स्थितिमें भी कही जा सकती है । हेतुके द्वारा यदि स्थितिवान पदार्थको स्थिति की गई हो तो यह बतलावो कि वह स्थिति स्थितिवानसे भिन्न है अथवा अभिन्न ? यदि भिन्न है तो हेतुने सत्तावानमें क्या किया ? कुछ भी नही किया । और यदि अभिन्न कहोगे तो हेतुवोंने स्थिति क्या की ? स्थितिवान पदार्थ को ही किया । तो इस तरह स्थितिमें भी कह सकते तब हेतु सिद्ध न हो सकेगा स्थितिका । तब तो स्थिति भी अन्यकी अपेक्षा न रखनेसे अहेतुक मान लेना चाहिये क्योंकि हेतुके द्वारा जो स्थिति बतावोगे वह क्या वस्तुसे भिन्न स्थिति है ? वस्तुसे भिन्न स्थिति नहीं की जाती स्थितिके हेतुके द्वारा, क्योंकि स्थिति यदि वस्तुसे भिन्न है तो फिर वस्तुका किया ही क्या ?

स्थितिके सम्बन्धसे स्थास्नुता होनेकी शंकाका समाधान—वस्तुमें जो स्थास्नुताकी स्थिति है वह स्थितिके सम्बन्धसे की जाती है । उत्तर यह कहना भी अयुक्त है, क्योंकि स्थिति और स्थितिवानका सम्बन्ध क्या बनेगा । जब स्थितिवान पदार्थमें और स्थितिको भिन्न मान लिया तो भिन्न-भिन्न रहते वाले स्थितिवान पदार्थोंमें और स्थितिमें सम्बन्ध क्या जुटाया जायगा ? भिन्न पदार्थोंमें तादात्म्य सम्बन्ध तो असंगत है । तादात्म्य सम्बन्ध माना ही नही जा सकता है । जैसे घड़ा और कपड़ा ये भिन्न भिन्न पदार्थ है, तो क्या इनमें तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता । इसी तरह ये दोनों भिन्न ही भिन्न हैं तो उनमें तादात्म्य सम्बन्ध नही बन सकता । यदि कहोगे कि व्यतिरिक्त पदार्थोंमें कार्य कारण सम्बन्ध बन जाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करता है जैसे अग्नि और धूम ये भिन्न भिन्न पदार्थ हैं । तो इनमें कार्य कारण सम्बन्ध बना हुआ है । तो इसी प्रकार स्थिति और भावका सम्बन्ध बन जायगा, यह भी बात अयुक्त है क्योंकि स्थिति और स्थितिवान ये दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं तुम्हारे सिद्धान्तसे और भिन्न पदार्थ एक साथ हुआ करते हैं जैसे जगतमें अनेक भिन्न भिन्न पदार्थ पड़े हैं कि एक साथ हैं तो ऐसे ही स्थिति और स्थितिवान ये दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं तो एक साथ रह सकते हैं । और जो एक साथ रह सकते हैं और स्थिति स्थितिवान एक साथ रहते ही हैं तो उनमें कार्य कारण भाव नहीं बन सकता । यदि कहो कि स्थिति और स्थितिवान पदार्थ ये एक साथ नहीं रहते तो एक साथ न रहें तो स्थितिसे पहिले भी स्थितिका कारणभूत स्थितिवान पदार्थ हो गया, यह अर्थ हुआ ना । याने स्थिति और स्थितिवान पदार्थ ये दोनों एक साथ नहीं रहते तो इसका भाव यह बनेगा कि स्थितिवान पदार्थ पहिले हैं । स्थिति बादमें होती है या स्थिति पहिले है । स्थितिवान पदार्थ बादमें होता है । इन दोनों बातोंमें कुछ भी मानोगे तो उसीमें दोष है । जब वह मानोगे कि स्थितिसे पहिले स्थितिवान पदार्थ है तो स्थितिवान पदार्थमें स्थिति तो है नहीं । तो अर्थ यह हुआ कि वह अस्थिति उसमें क्या रही ? और, यदि ऐसा विकल्प लावोगे कि स्थितिवानसे पहिले स्थिति हो गई तो स्थितिका कोई आधार ही नहीं है तो अनाश्रय रहा ना । बिना आश्रयके स्थिति क्या ? और फिर वह उत्तरकालमें भी किसीका आश्रय न कर सकेगा । क्योंकि अपना कारण तो क्षणभंगुर हैं । वह तो नष्ट हो गया । इससे असद्भाव भी कहीं कह सकते । तो यों वस्तुसे भिन्न स्थिति किसी हेतुके द्वारा किया जाता है यह कहना असंगत हुआ । अब यदि यह कहोगे कि वस्तुसे अभिन्न है वह स्थिति जो कि हेतुके द्वारा किया जाता है तो जब स्थितिसे अभिन्न हुई अर्थात् स्थितिवान स्वयं ही अपने स्वरूपसे स्थितिको लिए हुए है तब उस स्थितिको उत्पन्न करनेके लिये यह सिद्ध हो गया कि स्थिति स्वभावके प्रति अन्यानपेक्ष है अर्थात् पदार्थ अपना ध्रौव्य रखनेके लिये किसी अन्यकी अपेक्षा नही करता और जब पदार्थ अपना ध्रौव्य कायम किए रहनेके लिये किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं करता है तो इसके मायने हुआ अहेतुक हुआ और वह फिर सदा रहेगा । इससे वस्तु स्थिति बन गया । उसे क्षणिक कहना व्यर्थ है । वस्तु पर्याय दृष्टिसे तो उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है किन्तु द्रव्यदृष्टिसे वह स्थिर रहता है ।

विनाशके अहेतुक माननेपर उत्पादके भी अहेतुकपनेका प्रसङ्ग— अब और भी बात सुनो ! विनाशको अहेतुक मान लेनेपर उत्पादको भी अहेतुक कहा जा सकेगा क्योंकि जितने विनाशके हेतुके पक्षमें विकल्प उठाये गए थे वे सब विकल्प उत्पादके पक्षमें भी उठाये जा सकते हैं । जैसे कि ऐसा माननेपर कि वस्तुकी उत्पत्तिके कारण हुआ करते हैं और वे कारण वस्तुको उत्पन्न किया करते हैं । क्षणिकसिद्धान्त इन दो बातोंका पोषण करता है कि वस्तुकी उत्पत्ति तो कारणसे

Version 1

होती है किंतु विनाश स्वयं होता है। विनाशमें कारणकी आवश्यकता है इसी कारण उत्पत्ति होनेके बाद भी वस्तुका विनाश होता है. यों विनाशको अहेतुक मान लेनेपर जो बात विनाशको अहेतुक सिद्ध करनेके लिये कहते हो वह ही बात उत्पादको अहेतुक सिद्ध करनेके लिए कही जा सकती है। जैसे यह बतलावो कि उत्पत्तिका कारणभूत पदार्थ स्वभावसे उत्पन्न हो रहे पदार्थको उत्पन्न करता है या न उत्पन्न हो रहे पदार्थको उत्पन्न करता है ? वस्तुकी उत्पत्तिका कारणभूत जो भी पदार्थ माना जाय जैसे घटकी उत्पत्तिके लिए कुम्हार दण्ड, चक्र आदिक कारण माने गए हैं तो ये कारण स्वभावसे ही उत्पन्न होने वाले घटको उत्पन्न करते हैं या उत्पन्न हो रहे घटको उत्पन्न करते हैं और या फिर न उत्पन्न हो रहे घटको उत्पन्न करते हैं ? यदि कहोगे कि स्वभावसे ही उत्पन्न हो रहे घटको उत्पन्न करते हैं वे दंड, चक्र आदिक कारण, तो इनमें हेतु निष्फल हो गया, क्योंकि स्वभावसे ही जब उत्पत्ति मान ली गयी तो अब कारणकी क्या आवश्यकता रही ? स्वभावसे उत्पन्न हो रहे कार्यको पदार्थको कारण किया करता है, ऐसा माननेमें यह तो पहिले ही स्वीकार कर लिया कि पदार्थ स्वभावसे ही तो हो रहा है तो ऐसे उत्पन्न हो रहे पदार्थके लिए कारणकी कुछ जरूरत नहीं है। यदि कहो कि उत्पन्न हो रहे पदार्थकी उत्पत्तिके लिए कारणकी आवश्यकता है तो भिन्न यदि कारण उत्पन्न हो न हो रहे पदार्थको उत्पन्न करदे तो आकाशका फूल, गधेके सींग आदिकको भी उत्पन्न कर बैठें। क्योंकि वे उत्पन्न न हो रहे को ही कारण उत्पन्न किया करता है। तब तो आकाशपुष्प आदिक को भी उत्पन्न कर देनेका प्रसंग आ जायगा। यदि कहोगे कि अपने कारणके सन्निधान होनेसे ही उत्पन्न हो रहे पदार्थका उत्पाद माना गया है अर्थात् पदार्थ तो वही उत्पन्न किया जा सकता है जो कि उत्पन्न हो रहा है लेकिन उत्पत्तिके कारणोंकी सन्निधिसे ही वह उत्पाद हुआ करता है। यदि ऐसा कहोगे तो यह बात विनाशके सम्बन्धमें भी घटित होती है। अर्थात् विनाश होता है विनष्ट हो रहे पदार्थका, लेकिन विनाशके हेतुके सन्निधिसे ही विनाश माना जा सकता है तो यह बात जो कि उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है, विनाशके सम्बन्धमें भी घटित हो जाती है।

कार्यकारणके उत्पादविनाशमें सहेतुकाहेतुकपनेकी असिद्धि—उक्त विचार-विमर्षके बाद यह निष्कष निकाला कि कार्य और कारणका उत्पाद व विनाश सहेतुक अहेतुक सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् कार्यका उत्पाद तो होता है सहेतुक और कारणका विनाश होता है अहेतुक, यह बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि बाह्य कारणके अनन्तर उत्पाद और विनाश एक साथ पाया गया है रूपादिककी तरह। शंकाकारके सिद्धांतमें कहा भी है कि विनाश और उत्पाद दोनों एक साथ होते हैं। जैसे कि तराजूके पलड़ोंमें एक पलड़ेका ऊँचा होना और दूसरे पलड़ेका नीचा होना। जैसे कि एक पलड़ा ऊँचा होता है तो तत्काल ही दूसरा पलड़ा नीचा होता है, तो जैसे

उनका ऊँचा नीचा होना एक साथ है उसी तरहसे कार्यकारणका होना एक साथ है। तब उनमें कोई सहेतुक कोई अहेतुक है यह बात सिद्ध नही होती। इससे यह मानना होगा कि वस्तु त्रिधर्मात्मक है—वस्तुमें उत्पाद व्यय और स्थिति ये तीनों धर्म पाये जाते हैं। उनमें स्थिति तो अहेतुक है, किन्तु उत्पाद और व्यय ये दोनों पर्यायें संबंधित हैं और ये सहेतुक हैं। सो केवल व्ययकी बात कहकर पदार्थको क्षणिक कहना बिल्कुल असंगत बात है।

कारणान्तर सहभाव हेतुमें अनेकान्तिक दोषका अभाव—शंकाकार कहता है कि जो यह अनुमान बनाया है कि कार्यकारणका उत्पाद विनाश सहेतुक नहीं है क्योंकि कारणके अनन्तर एक साथ दोनों पाये जाते हैं रूपादिककी तरह। इस अनुमानमें द्रव्यस्वरूपके साथ अनेकान्त दोष आता है। देखो जैन सिद्धान्तमें पर्यायके साथ द्रव्यको भी माना गया है अर्थात् द्रव्य पर्याय एक साथ रहा करते हैं। पर द्रव्यको तो माना अहेतुक। तो सहेतुक पर्याय साथ रहनेसे द्रव्य अहेतुक न रहा। किन्तु माना है यह कि द्रव्य अहेतुक है और पर्यायके साथ रहता है। इसके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह अनेकान्त दोष नही लग सकता, कारण कि हेतुमें कारणान्तर, यह विशेषण दिया हुआ है अर्थात् कारणके बाद जो एक साथ हों उनमें यह बात नही कही जा सकती कि यह तो सहेतुक है और यह अहेतुक है। द्रव्य तो कारणके अनन्तर नहीं होता। वह तो अनादि अनन्त अहेतुक ही है। कारण जुटनेके बाद जो दो चीजें एक साथ हुई उनमें यह छटनी नही की जा सकती कि यह तो अहेतुक है और यह सहेतुक है। जैसे कि क्षणिकवादमें दंड मुदगरकी चोटके कारण कपालकी उत्पत्ति हुई और घटका विनाश हुआ। अब उनमें यह कहना कि कपालकी उत्पत्ति तो मुदगर आदिक कारणोंसे हुई है और घटका विनाश अकारण हुआ। यहाँ द्रव्य और पर्यायमें पर्याय तो सहेतुक है। कोई कारण पाकर हुआ है किन्तु द्रव्य सहेतुक नही, क्योंकि वह कारणके बाद हुआ हो सो नही। वह तो अनादि अनन्त है। इस कारण इस हेतुमें अनेकान्त दोष नही दे सकते।

कारणानन्तर होने वाले कार्योंमें अहेतुकताकी असिद्धि—और भी देखिये ! जो हेतु दिया गया है "कारणके अनन्तर एक साथ होनेसे" उससे कोई सहेतुक हो कोई अहेतुक हो यह विभाग नही होता। यह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि दण्ड मुदगर आदिक व्यापारके बाद जैसे कपाल आदिककी उत्पत्ति प्रतीत होती है इस ही प्रकार कपालका कारणभूत घटका विनाश भी देखा जाता है और दोनों प्रकारके व्यवहार लोग करते हैं कि घट नष्ट हुआ और खपरियाँ उत्पन्न हुई। तो खपरियोंका उत्पन्न होना जैसे कारणपूर्वक है इसी प्रकार घटका नष्ट होना भी कारणपूर्वक होता है। इस अनुमानमें जो उदाहरण दिया गया है वह साध्यविकल नही है। उदाहरणमें भी साध्य बराबर है। उदाहरण दिया गया रूप रस आदिकका। जैसे रूप, रस होते

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं तो उनमें यह कहना कि एक सहेतुक है और एक अहेतुक है यह बात नही बनती। कारणभूत रूप आदिक केवल कार्यभूत रूपका ही कारण हो और रस आदिकका कारण न हो ऐसी प्रतीति नही होती। तो उदाहरण साध्य विकल नही है। [और, इसी तरह उदाहरण साधनविकल भी नही है। देखो ना! रूप, रस आदिकका एक साथ सद्भाव पाया जाता है तो इसी प्रकार प्रध्वंस अहेतुक बने और उत्पाद सहेतुक बने यह व्यवस्था नही बनती और इसी कारण जो पहिले हेतु दिया गया था क्षणक्षय सिद्ध करनेके लिये कि सब पदार्थ क्षणध्वंसी हैं क्योंकि विनाश स्वभाव होनेपर अन्य की अपेक्षा नही रखते। यह हेतु क्षणक्षयको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है।

सत्त्वकी क्षणिकतासे व्याप्ति न होनेसे क्षणक्षयकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि क्षणक्षयको सिद्ध करनेमें विनाश स्वभाव होनेपर अन्यकी अपेक्षा नहीं रखते हैं यह हेतु भले ही साध्यको सिद्ध नहीं कर सके, लेकिन सत्त्व नामक हेतु तो साध्यको सिद्ध कर देता है अर्थात् सारा विश्व क्षणिक है सत्त्व होनेसे तो यहां सत्त्व नामक हेतु देखो सर्व पदार्थोंमें पाया जाता है और सब क्षणिक हैं। तो सत्त्व हेतुसे पदार्थके क्षणिकपनेका निर्णय हो जायगा। उत्तर देते हैं कि सत्त्व हेतु से भी पदार्थका क्षणक्षयपना सिद्ध नहीं होता। इसका कारण यह है कि सत्त्वका और क्षणिक होनेका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। जो जो सत् हों, वे वे क्षणिक ही हों ऐसा प्रतिबन्ध नहीं बनाया जा सकता। शंकाकार कहता है कि देखो—बिजली आदिक अनेक पदार्थोंमें सत्त्व है और क्षणिकपना है ये दोनों बातें प्रत्यक्षसे ही सिद्ध हो रही हैं तब तो इसका सम्बन्ध सिद्ध हो गया ना कि जो जो सत् हो वे वे क्षणिक हैं। जैसे बिजली। मेघोंमें जो बिजली चमकती है वह चमक कर तुरन्त नष्ट हो जाती है। जो सत् है विद्युत् और देखो नष्ट भी हो गयी तुरन्त, तो जो सत् होता है वह क्षणिक होता है ऐसा प्रतिबंध सिद्ध हो जाता है। और जब विद्युत आदिकमें सत् और क्षणिकपनेका प्रतिबन्ध सिद्ध हो गया, अविनाभाव नियम सिद्ध हो गया तो घट पट आदिक पदार्थोंमें भी जब सत्त्व पाया जा रहा तो वह सत्व क्षणिकपनेको सिद्ध कर ही देता है। समाधानमें कहते हैं कि यह समानता देना युक्त नहीं है कारण यह है कि विद्युत् आदिकमें भी सत्व और क्षणिकपनेका प्रतिबन्ध सिद्ध नही है। बिजली आदिकमें भी मध्यमें स्थिति जो दिखती है वह पूर्व परिणमनको और उत्तर परिणमनको सिद्ध करती है। ऐसा नहीं है कि बिजली आदिक ये पदार्थ बिना उपादानके उत्पन्न हो गए। बिजली जो दिखी वह यह सिद्ध कर देती है कि इससे पहिले भी उस का कोई स्वरूप है और इसके बाद भी उसका कोई स्वरूप रहेगा। बिजली भी बिना उपादानके उत्पन्न हुई नही है। यदि विद्युत आदिक पदार्थोंको बिना उपादानके उत्पन्न हुआ मान लिया जाय तब तो जो वर्तमान चेतन है वह भी बिना उपादानके उत्पन्न हो बैठेगा। अर्थात् मनुष्यमें या पशुमें जो जन्म होता है तो जन्म समयमें जो प्रथम चेतनका दर्शन है वह भी बिना उपादानके मान लिया जाय और उस चेतनको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि बिना उपादानका मान लिया जायगा तो परलोकका अभाव हो जायगा । जब उसके पहिले कुछ उपादान था ही नहीं, तो उसका परलोक क्या ? क्योंकि जैसे बिजली आदिकका उपादान दृष्टिमें न आया उसी तरह प्रथम चेतनका भी उपादान दृष्टिमें तो न आया । यदि कहो कि जन्म समयमें जो प्रथम चेतनका दर्शन हुआ है वह तो अनुमानसे जान लिया जाता है सो उस चेतनका उपादान अनुमानसे सिद्ध है, तो यही बात विद्युत आदिमें भी लगाना चाहिये । इसका भी उपादान अनुमानगम्य है उक्त कथनका तात्पर्य यह है कि बिजली जिन परमाणु स्कंधोंमें परिणमित हुई है वे परमाणुस्कंध इस समय प्रकाश स्वरूप हो गए और तुरन्त ही फिर वे अप्रकाशस्वरूप हो गए अर्थात् सामान्य रूप रस आदिकमय रह गए । इस प्रकार जो परमाणुस्कंध प्रकाशस्वरूप नजर आया उससे पहिले भी वह परमाणु स्कंध था, हाँ, वह प्रकाशरूप परिणमनमें न था तो उपादान पहिले भी था और आगे भी रहेगा । बिना उपादानके बिजली आदिककी उत्पत्ति नहीं हुई तब यह दृष्टान्त देना क्षणक्षयकी सिद्धिके लिए ठीक नहीं बैठता कि देखो बिजलीमें सत्त्व है और क्षणिकपना है । क्योंकि विद्युत् आदि स्कंधोंमें भी सत्त्व तो है, मगर क्षणिकपना नहीं है । और जिसको तुम क्षणिक कह रहे हो वह तो अवस्था है, पदार्थ क्षणिक नहीं है ।

निरन्वय सन्तानव्युच्छेद माननेपर क्षणोंकी अवस्तुताका प्रसंग—शंकाकार कहता है कि बिजली चमकी और मिट गई । अब यह बिजली उत्तर पर्याय में अविनाभाव नहीं रखती । अर्थात् यह आगे कुछ न रही, उसकी कोई अवस्था न रहेगी । तो यों इसकी आगे संतान न चलेगी । उसका अन्वय मिट गया । उसका सिलसिला खतम हो गया । उत्तरमें कहते हैं कि यदि बिजलीकी संतान अब न रही, वह निरन्वय हो गई । उसका सिलसिला खतम हो गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि चरमक्षण अकिञ्चितकर बन गया अर्थात् जिस क्षण बिजलीके बाद वहां कुछ न रहा तो वह अन्तिमक्षण कहलाया । उसके बाद फिर उसकी कोई दुनिया नहीं । तो अब अन्तिमक्षण कुछ न कर सका । जैसे क्षणिकवादमें मानते हैं कि प्रत्येक क्षण क्षणान्तरको उत्पन्न करते हैं, प्रत्येक पर्याय नवीन पर्यायको उत्पन्न करती है इन शब्दोंसे उनमें आशय जल्दी समझ लेंगे । प्रत्येक क्षण क्षणान्तरको उत्पन्न करते हैं तो अब ये अन्तिमक्षण जिसे मान रखा है कि इसके बाद अब अन्वय न चलेगा । अब संतान न चलेगी तो वे अन्तिमक्षण तो अकिञ्चितकर हो गए । और, जो अकिञ्चितकर है वह अवस्तु कहलाता है, तो चरम क्षण अकिञ्चितकर होनेसे अवस्तु बन गयी और जब चरमक्षण अवस्तु बन गई तो उसके पूर्व पूर्वक्षण भी अवस्तु बन जायेंगे, क्योंकि अब तो क्षणोंमें अवस्तु बननेका माद्दा ही बन गया । यदि अन्तिम क्षणमें अवस्तुपना आ जायगा तो उसके पूर्व क्षणोंमें अवस्तुपना आ जायगा और फिर तो कहीं भी कुछ भी संतान हो ही न सकेगा समस्त संतानोंका अभाव हो जायगा क्योंकि अन्तिम क्षण तो अर्थक्रियासे रहित मान लिया, इसके बाद संतान और अन्वय न चलेगा वह अंतिम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षण अर्थ क्रिया रहित हो गया ना। क्योंकि क्षणोंका काम तो यह है कि नवीन क्षण को उत्पन्न करदें। तो अन्तिम परिणति जब अर्थक्रियासे रहित हुई तो उसका असत्त्व हो गया और जब अन्तिमक्षणका असत्त्व हो गया तो उसका पूर्व क्षण भी अर्थक्रिया रहित होनेसे असत् हो जायगा और इस ही कारण उसका पूर्वक्षण भी असत् हो जायगा। तो यों फिर जगतमें कुछ भी नही रहा। सर्वशून्य हो गया। कोई भी पदार्थ अर्थक्रियाकारी न रहा, सब अकिञ्चित्कर हो गए। तो इस तरह फिर दुनियामें संतान नामक कुछ बात ही न रही, क्योंकि संतान तो नाम है पूर्व और उत्तर क्षणों का समूह। उनके बीचमें जो कुछ एक एक क्षण है, जो कुछ अन्वय रूप है वह संतान ही होता है। अब सारे क्षण जब अवस्तु हो गए, अर्थक्रिया शून्य हो गए तो संतानकी कल्पना ही क्या हो सकती ?

निरन्वय संतानव्युच्छेदकी मान्यतापर विचार—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि विद्युत आदिक पदार्थ सजातीय आदिक कार्यको नही करते इसलिए तो अकारण है बिजली प्रकाशरूपी अन्य बिजलीको नही उत्पन्न करती अर्थात् प्रकाश मिट गया इस तरहसे तो सजातीय कार्यका अकारण रूप है बिजली, लेकिन योगियोंके ज्ञानका कारण है, यह भी बिजलीसे उत्पन्न हुआ है योगियोंका ज्ञान। क्षणिकवादमें जितने भी ज्ञान माने गए हैं वे सब पदार्थसे उत्पन्न हुए माने गए हैं तो योगियोंको तो सारे विश्वका ज्ञान रहता है। तो उनके ज्ञानके कारण तो सभी पदार्थ हैं। तो बिजली भी उनके ज्ञानका कारण है। तो बिजली किसी ज्ञानका कारण न रही यह बात तो न रही। वह सजातीय क्षणको उत्पन्न नही कर सकती, इस कारण सजातीय क्षणोंके कार्यके करनेमें विद्युत समर्थ नही है, इस कारण वह अकारण है लेकिन योगियोंके ज्ञानका तो कारण है इसलिए अवस्तु नही कह सकते। जो किसी भी कार्यको न कर सके उसका ही नाम तो अवस्तु है। बिजली यद्यपि बिजलीकी संतानको न बना सकी लेकिन योगियोंके ज्ञानको तो बना डालती है, इस कारण विद्युत आदिमें अवस्तुपना नही आता। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे तो हम यह भी कह सकेंगे कि जो रूप-क्षण है काला पीला आदिक कोई सामग्रीरूप कार्य है वह रूप उपादान तो पूर्वरूप आस्वाद्यमान रसके समयमें रहने वाला है, जिस कालमें जिस आमका रस स्वादमें लिया जा रहा है अंधेरेमें सही, उस कालमें जो रूप पड़ा हुआ है वह रूप उपादान अन्य रूपको न करके रसका सहकारी कारण बन बैठे क्योंकि अब तो बिजलीमें ऐसा मान लिया ना कि यह बिजली सजातीय कार्यको तो नही करती अर्थात् बिजली से बिजली प्रकाशमान बना रहे ऐसा कार्य तो नही होता, पर योगियोंके ज्ञानको उत्पन्न कर देता है। सजातीय कार्यको न करके विजातीय कार्यको कर देता है। तो ऐसे ही हम यह कहेंगे कि वह रूप उपादान सजातीय रूपको न करके अर्थात् अग्रिम क्षणके रूप कार्यमें न करके वह रसका सहकारी कारण बन जायगा। तो यों इसका रूपक्षण रूपक्षणान्तरको न कर सका और अब ऐसा सिद्ध होनेपर रस हेतु देकर रूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का अनुमान भी नही किया जा सकता है। यदि कहो कि यहाँ तो ऐसा देखा जा रहा है कि उपादान कारण रूप रूपसे सजातीय रूप किया जा रहा है। इस कारण दोष नही है याने रूपसे रूप उत्पन्न होते जा रहे हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि वही बिजली शब्द आदिकमें भी समान है उस बिजलीसे अन्य विद्युत्, शब्दसे अन्य शब्द ये सब उत्पन्न होते रहते हैं। अब उनका रूप व्यक्त रहा संतान तो बराबर चल सकती है। इस कारण निरन्वयके संतानको उच्छित्ति मानना युक्त नही है।

सत्त्वके साथ क्षणिकत्वमें प्रतिबन्धका अभाव— शङ्काकार कहता है कि एक जगह जब सत्त्व और क्षणिकपना एक साथ पाया जाता है तो उससे सभी जगह क्षणिकत्वका अनुमान हो जायगा। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। एक साथ पाये गए तो उससे जहाँ जहाँ सत्व हो वहाँ वहां क्षणिकत्व मान लीजिये। ऐसा मानने पर जब देखा कि शङ्खमें सफेदी है और शङ्ख सत् है, तो जो जो सत् होता है वह सफेद होता है, ऐसा अनुमान करके स्वर्णमें भी सफेदीका अनुमान कर लिया जायगा क्योंकि शंखमें तो सफेदी और सत्व एक साथ पाया गया तो एक जगह सफेदी और सत्व पाये जानेसे सर्वत्र ही हम जहां जहां सत्व है वहां वहां सफेदी मान लेंगे। जैसे कि शंकाकारने माना है कि एक जगह सत्व और क्षणिकपना मिल गया तो जहाँ जहां सत्व हो, सब जगह क्षणिकपना मान लिया जायगा। शंकाकार कहता है कि स्वर्णके आकारको प्रत्यक्ष करने वाले ज्ञानसे स्वर्णमें पीतताका ज्ञान हो रहा है, दिख रहा है इससे सफेदीके अनुमानमें बाधा आती है अर्थात् प्रत्यक्षसे तो दिख रहा कि पीला है, सफेद नहीं है तो उसमें सफेदीके अनुमानमें बाधा आ गई। इस कारण स्वर्णमें सफेदीकी सिद्धि नही की जा सकती। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो घट-आदिकमें, क्षणिकताके अनुमानमें भी बाधा आ रही है क्योंकि घट आदिक पदार्थोंमें यह वही है इस प्रकार एकत्वका प्रतिभास देखा जा रहा है। तो घट आदिकमें क्षणिकत्वके अनुमानमें बाधा आती है, इस कारण प्रतिक्षण पदार्थ विनाशीक हैं। यह सिद्ध नहीं हो सकता शंकाकार कहता है कि एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो असत्य है। उसके एकत्वमें कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि भिन्न-भिन्न हैं नखकेश आदिक जिन को कि एक बार काट दिया और फिरसे वह बढ़ जाता है तो वही नख केश तो नहीं बढ़े, वे नख केश तो कटकर कहीं चले गए। अब तो दूसरे नख, केश बढ़ रहे, लेकिन लोगोंको एकत्वका ज्ञान होता है। हैं नही वही नख, केश पर उनमें एकत्वका भ्रम हो गया है। तो एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो भ्रान्तज्ञान है। प्रमाणभूत नही है। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे तो जब कामला रोग जिसकी आंखमें लगा हुआ है और वह जिस पदार्थको देखता है प्रत्यक्षसे उसे पीला पीला दिखता है। तो जो पदार्थ सफेद है उनमें पीताकारका भ्रम हो गया तो इससे फिर यह कहा जायगा कि जितने भी प्रत्यक्ष होते हैं वे सब भ्रान्त होते हैं। तब फिर हम सफेद वस्तुओंको प्रत्यक्षसे सफेद को देखें तो कह सकेंगे कि यह ज्ञान भी भ्रान्त है क्योंकि जो सफेद नहीं है, एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जगह सफेदका पीला दिख गया तो वह भ्रान्त हुआ ना। सफेदको सफेद देखा तो भी भ्रान्त है क्योंकि प्रत्यक्ष भ्रान्त हुआ करता है। यदि कहो कि भ्रान्त ज्ञानसे भ्रान्त रहित ज्ञानमें विशेषता होती है। भ्रान्त अप्रमाण होता है अभ्रान्त प्रमाण है। तो इसी तरह यह भी मान लेना चाहिए कि कहीं सदृश पदार्थमें एकत्वका ज्ञान हो गया तो वहाँ ही भ्रान्त ज्ञान है, पर एक ही पदार्थमें एकत्वका ज्ञान किया जाय तो वह तो भ्रान्त न कहलायेगा। और, प्रत्यभिज्ञानके विषयमें तो बड़े विस्तारके साथ उस की प्रमाणताका वर्णन पहिले किया गया ही है।

नित्यत्वकी सिद्धिमें बाधक प्रमाणका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि सत्व हेतुसे अथवा विनाश स्वभाव होनेपर अनन्यापेक्ष होनेसे इस हेतुसे यदि क्षणिकत्व सिद्ध नहीं होता तो कमसे कम इस बातसे तो सिद्ध हो ही जाता कि विपक्ष में बाधक प्रमाण है अर्थात् पदार्थोंको नित्यत्व सिद्ध करनेमें जो भी तुम प्रमाण दोगे, युक्ति दोगे वे सब युक्तियां बाधित हैं इस कारणसे सत्व और क्षणिकत्वमें ही अविना-भाव समझा जा रहा है। जब नित्यत्वका सत्वके साथ मेल नहीं दिखता उनसे बाधायें आती हैं, तो अपने आप सिद्ध हो गया कि सत्वका और क्षणिकत्वका अविनाभाव है। उत्तरमें कहते हैं कि नित्यत्वमें जो हेतुका बाधकपना बताया है जसे मान लो सत्व ही हेतु है सो ये सब पदार्थ नित्य हैं सत्व होनेसे, तो इस हेतुका बाधक कौन सा प्रमाण हुआ? प्रत्यक्ष हुआ अथवा अनुमान हुआ? प्रत्यक्षको तो बाधक कह नहीं सकते। प्रत्यक्ष द्वारा क्षणिकत्वका तो प्रतिभास होता ही नहीं। जिससे कि प्रत्यक्ष नित्यत्वमें बाधा देने लगे। जब जिस प्रत्यक्षसे क्षणिकपनेका स्वरूप प्रतिभासमें नहीं आ रहा उस प्रत्यक्षको यह नहीं कह सकते कि वह प्रत्यक्ष क्षणिकत्वके साथ नियत है सो क्षणिकत्वके साथ व्याप्ति है और नित्यत्वके साथ व्याप्ति नहीं है। क्षण-क्षयका स्वरूप प्रत्यक्षमें ही नहीं आ रहा। यदि कहो कि अनुमान प्रमाण तो नित्यत्व से हटाकर सत्वको इस क्षणिकके साथ नियत कर सकेगा तो यह भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अनुमानमें भी जो अविनाभाव तुम लगावोगे वह किस बलपर लगावोगे प्रत्यक्ष तो उस अविनाभावको ग्रहण नहीं करता जिसको अन्य अनुमानसे लगावोगे तो अनवस्था दोष हो जायगा। उसी अनुमानसे लगावोगे तो अन्योन्याश्रय दोष हो जायगा। इस कारण नित्यत्वमें बाधा देने वाला कोई अनुमान प्रमाण भी नहीं है।

कथंचित् नित्यत्वमें अर्थक्रियालक्षण सत्वका अविरोध—शंकाकार कहता है कि जहाँ क्रमसे अथवा एक साथ अर्थक्रियामें विरोध है। वहांपर वह सत् नहीं हो सकता। जैसे आकाशका पुष्प। इसमें न क्रमसे अर्थक्रिया होती है न एक साथ अर्थक्रिया होती है। तो वह सत् भी नहीं है और क्रमसे अथवा एक साथ अर्थक्रियाका विरोध नित्यमें है। इस अनुमानसे तो सत्व उस नित्यत्वसे हट जायगा और अनित्यमें ही लगेगा। जो पदार्थ अनित्य होगा उसमें ही तो अर्थक्रिया हो सकती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। पर नित्यमें अर्थक्रिया नही हो सकती। इस अनुमानसे सत्वकी व्याप्ति नित्यत्वसे न रही और सत्व ी व्याप्ति अनित्यत्वसे होगी। इस तरह सब पदार्थ अनित्य सिद्ध होते हैं क्योंकि सत्व होनेसे। समाधान करते हैं कि यह प्रयोग ठीक नहीं है, क्योंकि सत्वका और नित्यत्वका विरोध असिद्ध है। सत्व और नित्यत्वमें विरोध नही आता, यदि विर ध आता है तो बतलावो वह किस जातिका विरोध है ? विरोध दो प्रकार के होते हैं—एक तो एक साथ न रह सके। दूसरा—एक दूसरेके परिहार पूर्वक रहे। अर्थात् जहां एक आये वहां दूसरा हो जाय। जो इस दूसरेको हटाता रहे, इस तरह से विरोध दो प्रकारके होते हैं—उनमेंसे आदि पक्ष तो कह नही सकते कि उसमें सहानवस्थारूप दोष है क्योंकि सहानवस्थारूप दोष तब होता है जब पदार्थका पहिले तो सद्भाव हो और पीछे अन्य पदार्थ आ जाय, और वह वहांसे हट जाय, न रहे। उसका अभाव भाव हो जाय तो जाना जा सकता है कि दोनों एक साथ नहीं रह सकते। जैसे ठण्ड और गर्मी। जिस कमरेमें ठण्ड है वहां यदि आग रख दी जाती है तो ठण्ड नहीं रहती इससे सिद्ध होता है कि ठण्ड और गर्मीका सहानवस्था रूप विरोध है। इस तरह नित्यत्वका और सत्वका यदि सहानवस्थारूप विरोध मानते हो तो उसका अर्थ यह मानना होगा कि पहिले नित्यता थी उस जगह सत्व आया तो नित्यत्व खतम हो गया। ऐसा यदि होता तब तो सहानवस्था कह सकते थे। अथवा सत्व पहिले था और उस जगह नित्यत्व आ गया तो सत्व हट गया। उसका अभाव हो गया। इस तरहकी बात यदि हुआ करती हो तब तो सहानवस्थारूप विरोध कह सकते थे, पर ऐसा तो है ही नहीं, नित्यत्वकी प्राप्ति हो और फिर सत्व आये ऐसा मान लिया तो एक यह तो मान ही चुके कि पहिले नित्यत्व था। और ऐसा कहनेपर कि सत्वकी प्राप्ति की अब नित्यत्व आया तो सत्व हट जायगा पहिले सत्व हुआ पीछे नित्यत्व आया, तो भी नित्यत्व मान लिया। बात यह है कि नित्यत्व व सत्वका सहानवस्थारूप विरोध ही नही। और, दूसरी जातिका विरोध भी इसमें सम्भव नही हो सकता। अर्थात् एक दूसरेको हटाकर रहे इस तरहका विरोध भी सिद्ध नही किया जा सकता, क्योंकि ऐसा नहीं देखा गया कि नित्यत्वके परिहारसे सत्व रहे। अगर नित्यत्व नही है तो सत्व नही रह सकता, सत्व नहीं है तो नित्यत्व नही रह सकता। इससे परस्पर परिहार विरोध नही देखा गया। सब विरोध इस जगह है कि क्षणिकताको हटाकर नित्यत्व रहता है और नित्यत्वको हटाकर क्षणिकता रहती है यों परस्पर मुकाबलाकी बात हो उनमें तो विरोध परस्पर परिहार स्थितिरूप कोई हो सकता। नित्यपना और क्षणिकपना इन दोनोंके स्वरूपमें विरोध है इसलिए क्षणिकताको हटाकर नित्यत्व रहेगा नित्यत्वको हटाकर क्षणिकता रहेगी।

सत्वकी क्षणिकत्वके साथ व्याप्तिका अभाव— शंकाकार कहता है कि भाई सत्वकी व्याप्ति तो क्षणिकपनेके ही साथ है, क्योंकि सत्व नाम है किसका ? जो अर्थक्रिया करे, जिसमें कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति सम्भव हो उसे कहते हैं अर्थक्रिया। और,

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थक्रिया जिसमें हो उसे ही कहोगे सत्व । तो ऐसा सत्व क्षणिकपनेके साथ व्याप्त है । नित्यत्वके साथ विरोध है । उत्तर देते हैं कि इस तरह तो अन्योन्याश्रय दोष आता है । इस तरहकी अर्थक्रियारूप सत्व तो क्षणिकपनेसे व्याप्त है तो वह जब सिद्ध हो तो नित्यताका विरोध हो । तो अर्थक्रियारूप सत्व नित्यके साथ न रहा तब तो यह बात न बनी कि अर्थक्रियारूप सत्व क्षणिकके साथ रह गया है और नित्यताका विरोध तब बने जब अर्थक्रियारूप सत्वका क्षणिकताके साथ व्याप्ति सिद्ध हो । अर्थक्रिया न तो सर्वथा नित्यमें सम्भव है न सर्वथा अनित्यमें सम्भव है । प्रवृत्ति निवृत्ति जीवोंके तभी हो सकती है जब उनके चित्तमें यह भी बात समाई रहे कि यह पदार्थ स्थायी है । सर्वथा स्थायी जाने गए पदार्थमें किसकी प्रवृत्ति होती है ? अर्थात् जो ऐसा समझते हों कि पदार्थ कूटस्थ अपरिणामी है, पूर्णतया नित्य है सर्वथा नित्य है तो उसमें भी अर्थक्रिया सम्भव नहीं है । यों ही सर्वथा क्षणिककी भी प्रवृत्ति अर्थक्रिया नहीं । प्रवृत्ति होती है तो लोगोंकी नित्यानित्यात्मक पदार्थमें होती है और नित्यधर्म जाना जाता है सामान्यस्वरूप निरखकर, अनित्य धर्म जाना जाता है विशेष प्रवृत्ति निरखकर । तो इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक पदार्थ माना जाय तो अर्थक्रिया उसमें बन सकती है ।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थमें अर्थक्रियाकी संभवता—जैसे तिर्यक् सामान्य और तिर्यक विशेषमें भी अर्थक्रिया सम्भव है । जब जान लियो कि ये गाय गाय सब एक किस्मकी होती हैं, ये दूध दिया करती हैं, इस तरहसे तो एक सामान्य धर्म जाना और फिर उनमें व्यक्तित्व विशेष जाना तभी तो किसी भी एक गायके पास पहुंचकर उससे ही दूध लेनेका यत्न होता है । तो तिर्यक्रूपमें सामान्यविशेषात्मक पदार्थ जब जाना जाता है तब उसमें अर्थक्रिया सम्भव है । यह वही मनुष्य है जिसको कल अमुक वस्तु उधार दी थी । तो जान लिया ना ऊर्ध्वता सामान्य । अब कलकी स्थिति इसको उधार देनेकी थी, आज स्थिति इससे वसूल करनेकी है । आज इसको देना चाहिए ऐसा हो वायदा है । कलका परिणमन इसका अन्य था, आजका परिणमन इसका अन्य होना चाहिए । ऐसी ऊर्ध्वताविशेषकी भी बात जब ध्यानमें है तब ना उसमें लेन-देनकी प्रवृत्ति सम्भव हो रही है । यह तो लोकव्यवहारकी बात कही है । अब मोक्षमार्गकी भी बात देखो ! सामान्य है, ऐसे ही जीव जातिके पदार्थ मुक्त हुआ करते हैं । यह तो एक सामान्यपना जाना और अमुक अमुक व्यक्ति देखो आत्मसाधना करके मुक्त हुए, यह उनका विशेष जाना । इसी तरह ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेष भी परखा जाता । मैं वही जीव हूँ मैं एकरूप हूं, चैतन्यस्वरूप हूँ । यही स्वभाव प्रकट हो गया, उसका नाम मुक्ति है । और, मुझमें यह विशेषता है । आज परिणति संसार अवस्थामें है यह हटकर मुक्त अवस्थाकी परिणति हमारी हो सकती है । ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेषका बोध हो तो मोक्षमार्गमें उद्यम हो सकता है । तो यहाँ ऊर्ध्वता सामान्यका प्रकरण चल रहा है कि द्रव्य कालान्तर स्थायी है । यदि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वथा क्षणिक माना जाय पदार्थको तो मोक्षमार्ग अथवा लोकव्यवहार कुछ भी सिद्ध न हो सकेगा।

नित्य पदार्थमें अर्थक्रियाकी असंभवता होनेके कारण क्षणिकत्वकी सिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन—क्षणिकवादी शंकाकार जो कि भेदको ही मानता है। सामान्य और नित्यत्व नही मानता, वह कहता है कि यदि नित्य पदार्थ होता हो उसमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती है न एक साथ अर्थक्रिया हो सकती है। अर्थक्रियाके मायने परिणमन। कुछ भी बदल, कुछ भी बात करे। तो ऐसी अर्थ क्रिया जो सर्वथा नित्य हो उसमें नही हो सकती। जो चीज सर्वथा नित्य है, कूटस्थ नित्य है, सदा रहने वाली है तो उसमें बदल क्या? अगर बदली तो फिर वही कैसे रही, फिर और कुछ हो गयी। तो जो चीज नित्य है उसमें काम नही हो सकता, परिणमन नही हो सकता। तो नित्य पदार्थमें अर्थक्रिया हो ही नही सकती। अर्थ क्रिया होती है परिणमनमें अर्थात् जैसे अंगुली सीधी है, टेढी हो गयी तो यह उसकी अर्थक्रिया हो गयी। कुछ तो किया उसने। तो जो नित्य हो, सर्वथा हो, उसमें कुछ परिणमन हो नही हो सकता। न क्रमसे हो सका परिणमन और न एक साथ। तो जब अर्थक्रिया न बनी तो फिर वस्तु ही न रही। अगर अर्थक्रिया है तो बतावो नित्य पदार्थमें अर्थक्रिया क्रमसे हुई कि एक साथ उस पदार्थमें परिणाम क्रमसे हुआ या एक साथ हो जाता है। क्रमसे तो हो नही सकता क्योंकि वह नित्य है। नित में क्रम क्या पड़ा है?

नित्यमें क्रमवती अर्थक्रिया संभव न होनेका शंकाकार द्वारा कथन—यदि कहो कि सहकारी कारणमें क्रम पड़ा है इसलिये नित्य पदार्थमें क्रमसे अर्थ क्रिया हो सकती है। शंकाकारका यह मतलब है कि क्या तुम अर्थक्रिया इस तरहसे कह दोगे कि पदार्थ तो नित्य है? अब उसमें जो जो कारण आनेपर उसमें परिणमन होते हैं वे कारण क्रमसे होते है वे कारण क्रमसे होते हैं इसलिये उस नित्य पदार्थमें अर्थक्रिया परिणमन भी क्रमसे हो जाय। सो शंकाकार कह रहा कि यह बात भी तुम ठीक नही कह सकते, क्योंकि अगर सहकारी कारण नित्य पदार्थमें कोई उपकार करदे तो यह बतलावो कि वह उपकार उस नित्य पदार्थसे भिन्न है कि अभिन्न? प्रथम तो यह बात है कि जो नित्य पदार्थ है उसका न कुछ उपकार किया जा सकता और न बिगाड़ किया जा सकता, तो सहकारी कारण मिले तो भी उसमें कुछ उपकार नही बन सकता। दृष्टान्तके लिए मान लो कि आत्मा एक है, नित्य है सदा वहीका वही रहता है। तो उसमें यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब आत्मा एक ही है नित्य अपरिणामी तो उसमें परिणमन कहांसे आ गए, क्रिया कहांसे बन गई? ज्ञान करना, इच्छा करना, कुछ विचार करना ये बातें कहांसे आ गई, क्योंकि जब नित्य है तो नित्य तो एकरूप होता है, वह तो बदला नही करता। इसपर यदि कोई कहे कि आत्मा तो वह एक ही है नित्य एकस्वरूप, किन्तु

Version 1

इन्द्रियाँ जैसे मिले, प्रकाश जैसा मिले, और कारण जैसा मिले उस तरह काम होता है तो यह हुआ सहकारी कारण, तो सहकारी कारणोंसे क्रमसे नित्य पदार्थमें भी क्रम से अर्थक्रिया हो जाती है। तो यह बात शंकाकार कहता कि ठीक नही है, क्योंकि जो नित्य पदार्थ है उसमें सहकारीकी अपेक्षा ही नही हो सकती। नित्य तो नित्य ही है। उसका जो एक स्वभाव पड़ा है उसमें तो वही एक स्वभाव पड़ा है। यदि अर्थ क्रिया करनेका स्वभाव है तो अर्थक्रिया करेगा। कारणकी क्या अपेक्षा रही ? नही स्वभाव है तो न करेगा और यदि स्वभाव है कि वह कुछ काम करेगा तो सारे काम एक साथ क्यों नही हो जाते, क्योंकि उनमें तो स्वभाव पड़ा हुआ है। सो सहकारी कारण मिलकर नित्य पदार्थमें क्रमसे अर्थक्रिया करते हैं, यहाँ नित्य पदार्थका उपकार नही किया जा सकता। और, उपकार जब न हुआ तो नित्यमें फिर हुआ क्या ? अर्थक्रिया ही नही हो सकती। तो नित्य पदार्थमें क्रमसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती।

नित्यमें युगपत् भी अर्थक्रिया न हो सकनेसे क्षणिकत्वका समर्थन—यदि कहो कि एक साथ हो जाय अर्थक्रिया नित्यमें तो यह भी सम्भव नही, क्योंकि पूर्वक्रियामें और उत्तरक्रियामें जब भेद पड़ा है और तुम कह रहे हो कि नित्यमें सारे काम एक साथ हो जायेंगे तो जितनी पर्यायें भविष्यमें होती हैं वे सब एक साथ एक ही समयमें हो जायेंगी फिर दूसरे समयमें उस पदार्थको कुछ करनेको ही नही रहा। तो वह पदार्थ अवस्तु बन गया। तो इस तरह नित्य पदार्थमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती, न एक साथ अर्थक्रिया हो सकती। मानों कुछ भी परिणमन नही हो सकता तब नित्य पदार्थमें सत्व नही हो सकता। जो सत् है वह क्षणिक ही होगा, क्योंकि क्षणिकमें ही नित्य काम बन सकता है। क्षणिक तो क्षणिक ही है, कुछ देर काममें आ गया कुछ देर बाद मिट गया। कुछ काममें आ गया तो क्षणिकमें अर्थ-क्रिया बनती चली गयी, पर नित्य हो वस्तु तो उसमें परिणमन नही बन सकता। इस तरह शङ्काकार शंका करके ही यह सिद्ध करना चाहता कि पदार्थ नित्य नही है, पदार्थ सब क्षणविध्वंसी हैं। अब उक्त शंकाका उत्तर देते हैं कि यह बात सारहीन है, क्योंकि जैसे एकान्त नित्यमें जो सर्वथा नित्य है उसमें क्रमसे अर्थक्रिया बन सकती न एक साथ अर्थक्रिया बन सकती। ऐसे ही सर्वथा अनित्यमें भी न क्रमसे न एक साथ अर्थक्रिया बन सकती है। शंकाकारने सर्वथा नित्य समझकर खण्डन किया है कि नित्य पदार्थमें कुछ भी काम नही बन सकता। न क्रमसे अर्थक्रिया है न एक साथ अर्थ-क्रिया है। जब कोई क्रिया नही हो सकती परिणमन नही हो सकता तो नित्य कोई वस्तु ही नही है। इसपर उत्तर दे रहे हैं कि इस तरह सर्वथा अनित्यमें भी कोई काम नही बन सकता, न क्रमसे न एक साथ। जो कथञ्चित् नित्य हो उसमें ही अर्थक्रिया सम्भव है। पदार्थ कथञ्चित् नित्य है कथञ्चित् अनित्य। द्रव्य दृष्टिसे नित्य है पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। तब ही उसमें काम बन सकता। परिणमन हो, काम हो, कोई काम होनेपर पहिला रूप बदल गया, दूसरा रूप आ गया यह तो है पर्याय धर्म। इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तरह तो हो गया कथञ्चित् अनित्य, किन्तु वह सारा काम उस एक ही सत्‌में हुआ है जो सत् अनादिसे था, उस हीमें पर्याय बदली है। तो द्रव्यदृष्टिसे वह पदार्थ वही है, नित्य है। यों नित्यानित्यात्मक पदार्थ माना जाय तो उसमें अर्थक्रियाकी सिद्धि हो सकती है। सर्वथा नित्यमें कोई परिणमन सम्भव नहीं। सर्वथा क्षणिकमें कोई परिणमन सम्भव नहीं। जब वस्तु एक ही समय मात्र रहता है तो नष्ट हो गई तो अब उसमें काम क्या? परिणमन क्या? तो एकान्त नित्यकी तरह एकान्त अनित्यमें भी न क्रमसे अर्थक्रिया सम्भव है न एक साथ सम्भव है, इस कारण अनित्य भी अवस्तु है। क्योंकि जो सर्वथा क्षणिक हो, एक समयको पदार्थ उत्पन्न हो, दूसरे समय पदार्थ न रहेगा तो सर्वथा क्षणिकमें अर्थक्रिया होनेका स्वभाव ही सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि जो सर्वथा क्षणिक है उसमें यह बात कहा बन सकती है कि पूर्व स्वभावका त्याग करें और नवीन पर्यायको ग्रहण करें। अर्थक्रिया, परिणमन तो उसे ही कहेंगे कि पहिला स्वभाव तो छूट गया और नया स्वभाव आ गया, सो दोनों स्वभाव जिसमें ठहरें ऐसा कोई द्रव्य तुमने माना ही नहीं तो पूर्व स्वभावके त्याग और नवीन स्वभावके त्याग और नवीन स्वभावके ग्रहण करने, इन दोनोंमें जिनका अन्वय हो, पूर्वस्वभावमें भी वही एक पदार्थ हो तब तो उसमें अर्थक्रिया कही जा सकती है सो यह क्षणिकवादमें सम्भव नहीं। एक क्षणको पदार्थ हो, दूसरे क्षण रहे ही नहीं तो उसमें दो स्वभाव हैं ही कहां कि पूर्वस्वभावका त्याग करें और नवीन स्वभावको ग्रहण करें। जब तक पूर्वापर स्वभावका त्याग और ग्रहण न हो तब तक अर्थक्रिया कैसे भी नहीं की जा सकती? किसी भी वस्तुमें काम हो तो उस कामका अर्थ तो यही है कि पहिली अवस्था रही नहीं अब नवीन अवस्था जगी है। तो क्षणिक पदार्थमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती न अक्रमसे। इस कारण क्षणिक अवस्तु है। पदार्थ कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य, ऐसा माने बिना उसमें परिणमन सिद्ध नहीं किया जा सकता। और भी देखिए— जब क्षणिकमें अर्थक्रियाका स्वभाव न बना तो क्षणिकमें अर्थक्रियाका स्वभाव न बना तो क्षणिकमें अनेक शक्तियाँ एक साथ तो नहीं आ सकती। द्रव्यमें तो अनेक शक्तियाँ पड़ी भई हैं। पर क्षणिक पदार्थ है, उसमें तो एक समय एक ही शक्ति है, इस कारण भी क्षणिकमें अर्थक्रिया करनेका स्वभाव नहीं सिद्ध हो सकता। जिस तरह कूटस्थ पदार्थमें ये दो बातें सम्भव नहीं हैं कि पूर्वस्वभावका त्याग करदे और उत्तर स्वभावका ग्रहण करदे इसी तरह क्षणिक पदार्थमें भी यह अन्वय नहीं है कि वह पूर्व स्वभावका त्याग करदे और उत्तर स्वभावका ग्रहण करे। जैसे स्वभावका त्याग करदे और उत्तर स्वभावका ग्रहण करे। जैसे जो सर्वथा नित्य है, परिणमनका बदलनेका स्वभाव नहीं है। कूटस्थ अपरिणामी है तो उसमें पहिला स्वभाव न रहा। अब दूसरा स्वभाव आ गया यह कैसे कह सकते हैं यदि यह कहा जायगा कि पहिला स्वभाव न रहा अब दूसरा स्वभाव आ गया तो इसीके मायने है कि अनित्य हो गया। तो सर्वथा नित्यमें पूर्वस्वभावका त्याग और उत्तर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वभावका ग्रहण होता नही है इसी तरह क्षणिक पदार्थमें भी पूर्व स्वभावका त्याग और उत्तरस्वभावका ग्रहण, यह होता नही है। क्योंकि पूर्वस्वभावका त्याग करने और नवीन स्वभावको ग्रहण करनेमें कोई क्रम बनता है ना, तो वह क्रम काल कृत है या देश कृत ? क्रममें दो दृष्टियाँ हुआ करती हैं—एक तो एक साथ किसी जगहमें, लैनमें अनेक पुस्तकें रख दी तो उन पुस्तकोंका जो क्रम है वह देश क्रम है। जैसे अलमारीमें पुस्तकें लगाते हैं तो एकके बाद एक लगादी, इस तरह जो क्रम पाया जाता है वह देशक्रम कहलाता है। सो ऐसा देशम क्षणिक पदार्थोंक्रमें कहाँ सम्भव है। और एक होता है कालकृत क्रम। जैसे एक मनुष्य पहिले बच्चा था, फिर बालक हुआ, फिर जवान हुआ, फिर वृद्ध हुआ अब मर गया, ऐसी जो उसमें क्रमसे परिणतियाँ चलती हैं वे परिणतियां है। तो य क्रम जैसे कूटस्थ नित्यमें नहीं हो सकता इसी तरह सर्वथा क्षणिकमें भी नही हो सकता। और फिर एक साथ अनेक स्वभाव भी नही हैं जिससे एक साथ सारी परिणतियाँ हो जायें क्योंकि एक साथ सारे परिणमनका हो जाना यह कूटस्थका विरोध करता है और फिर निरन्वय विनाशपनेका व्याघात हो जाता हैं। तो इस तरह क्षणिक पदार्थके साथ तो अर्थ क्रिया नही ठहर सकती, पर जो कथंचित नित्य हो, कथंचित अनित्य हो, उसमें ही अर्थ क्रिया सम्भव हो सकती है।

विनष्ट होते हुए कारणोंमें कार्यका उत्पादन करनेकी अशक्यता— अब शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारा यह कहना है कि क्षणिक पदार्थ नष्ट होता हुआ कार्य उत्पन्न करता है, कोई पदार्थ हुआ, एक समयको ठहरा, दूसरे समय तो न रहा, तो यों इन क्षणिकवादियोंका यह कहना है कि एक साथ रहने वाला पदार्थ दूसरे क्षणमें किसी कार्यको उत्पन्न करता हुआ नष्ट हो जाता है तो इसी सम्बन्धमें पूछ रहे हैं कि क्षणिक वस्तु विनष्ट होती हुई कार्यको उत्पन्न करती है या अविनष्ट होकर कार्यको उत्पन्न करती है ? या नाश अनाश दोनोंरूप होकर कार्यको उत्पन्न करती है या न नाश न अनाश ऐसे अनुभयरूप होकर कार्यको उत्पन्न करती है ? ऐसे ये चार विकल्प किए गए। क्षणिक वस्तुको कार्यका उत्पन्न करने वाला कहा जा रहा है तो यह बताओ कि क्षणिक वस्तु किस प्रकार कर्ता है ? यदि कहो कि नष्ट होते हुए कार्यको उत्पन्न करता है अर्थात् वस्तु तो नष्ट हो रही और वह कार्य करके नष्ट हुई—जैसे अंगुली टेढ़ी है और उस टेढ़ी पर्यायको नष्ट करते हुए सीधी पर्यायको उत्पन्न किया, अथवा अभी तक तो कोई मनुष्य था और अब मरकर वह देव बन गया, तो नष्ट होते हुये मनुष्यने ही तो अब देव पर्यायको उत्पन्न किया है ना ! इससे प्रत्येक वस्तु क्षणिक हैं और वे क्षणिक नष्ट होते हुए कार्यको उत्पन्न कर देते हैं तो यह बात सही नही बैठती। कारण कि जैसे बहुत काल पहिले जो पर्याय नष्ट हो गयी, बहुत काल पहिले जो पदार्थ नष्ट हो गया वह तो अब किसी अन्य पर्यायको पैदा करता नही। इसी तरह इस समय नष्ट हुआ भी पदार्थ किसी अन्य कार्यको नही कर सकता। शंकाकार यह मानता था कि वस्तु एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणको आती है दूसरे क्षण नही रहती। तो पहिले क्षणमें उत्पन्न हुई तुरन्त नष्ट हो गयी और वह नवीन पर्यायको उत्पन्न करके नष्ट हुई ने तो यह कैसे सम्भव है कि स्वयं नष्ट होता हुआ किसी अन्यको उत्पन्न करदे। यदि स्वयं नष्ट करता हुआ कारण कार्यसे उत्पन्न क दे तो आज से १० वर्ष पहिले जो पदार्थ नष्ट हो गया वह पदार्थ आजके कार्यको क्यों नही कर देता ? क्योंकि तुमने अब तो मान लिया कि नष्ट होता हुआ कारण पदार्थ कार्यको उत्पन्न कर देता है तो चूंकि बहुत काल पहिले नष्ट कहलाता है और वह किसी नवीन कार्यको उत्पन्न नही कर सकता इसी प्रकार इस समय भी नष्ट हुआ पदार्थ किसी कार्यको नहीं कर सकता। तो इस प्रकार क्षणिकवादियोंसे यह विकल्प किया गया है कि पदार्थ क्षणिक होकर जो नवीन कार्यको कर देता है तो क्या वह नष्ट हुएको कर देता है या नष्ट होकर करता है ? यदि नष्ट होकर कार्यको करता है तो फिर उन्हें यह बताना चाहिए कि बहुत पहिले नष्ट हुआ पदार्थ क्यों नही आजके कार्यको करता ? इससे सिद्ध है कि नष्ट हुए पदार्थमें किसी भी कार्यको करनेका सामर्थ्य नहीं है। तब यह मानना युक्त नहीं कि पदार्थ क्षणिक है और वह नष्ट होता हुआ उत्तर क्षणको उत्पन्न करके नष्ट होता है।

अविनष्ट रहकर कारणसे कार्यका उत्पाद माननेमें अनेक अनिष्टापत्तियां — यदि कहो कि क्षणिक वस्तु नष्ट न होती हुई कार्यको उत्पन्न करती है तो ऐसा कहनेमें तुम्हारा क्षणभंग सिद्धान्तका विनाश सिद्ध हो गया, क्योंकि तुमने अब कारणको अविनष्ट मान लिया तथा अविनष्ट होकर वस्तु कार्यको करे ऐसा माननेमें सर्वशून्य दोष हो जायगा। क्योंकि अब तो सकल कार्योंका एक समय ही उत्पाद होकर नाश हो जायगा, क्योंकि कारणके अविनष्ट होनेपर फिर तो वह कार्यको उत्पन्न न कर सकेगा। कारण भी रहा आये और कार्य भी रहा आये। एक उपादानमें यह तो सम्भव नही हो सकता। जैसे कि मृतपिण्ड रहा आये अथवा घड़ा भी रहा आये अथवा घड़ा भी रहा आये और खपरियाँ भी रही आयें तो ऐसा नहीं होता है, जब अविनष्ट कारणसे कार्यका उत्पाद रहा तो एक बार कार्य हो गया तो सारे कार्य हो जायेंगे। फिर दूसरे क्षणमें कोई कार्य न रहेगा।

विनष्टाविनष्टोभयरूप व अनुभयरूप कारणकी असिद्धि होनेसे कार्योत्पादकी असिद्धि — यह भी नहीं कह सकते कि क्षणिक वस्तु विनष्ट और अविनष्ट दोनों रूप रहकर कार्यको उत्पन्न करती है क्योंकि पदार्थको क्षणिकवादमें माना है निरंश और एकस्वभाव। तो कोई पदार्थ निरंश हुआ करता है और एकस्वभावरूप हुआ करता है तो प्रथम तो निरंश होनेके कारण और दूसरे स्वभाव एक होनेके कारण उसमें विनष्टरूपता और अविनष्टरूपता रहे, ऐसे दो रूप सम्भव नही हो सकते। तो जब एक वस्तुमें विनष्टरूपता और अविनष्टरूपता सम्भव नही हो सकती तो यह कहना कि अविनष्टरूप उभयरूप रहकर विनष्ट एवं अविनष्ट रूप रह-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर कार्यको उत्पन्न करता है। यह असंगत बात है। ऐसा भी नही कह सकते कि अनुभयरूप रहकर क्षणिक वस्तु कार्यको उत्पन्न करती है क्योंकि अनुभयका अर्थ यह है कि वस्तु न विनष्ट है न अविनष्ट है ऐसा अनुभयरूप रहकर कार्यको उत्पन्न करती है। तो ऐसा कहनेमें अन्योन्यव्यवच्छेदरूप धर्म आ गए अर्थात् ऐसा कहनेपर कि क्षणिक वस्तु विनष्ट नही है तो तुरन्त ही यह बात सिद्ध होती है कि वह अविनष्ट है और जब यह कहोगे कि वह वस्तु अविनष्ट नही है तो तुरन्त ही यह बात आ जाती है कि वह विनष्ट है तो विनष्ट और अविनष्ट ये दोनो अन्योन्यव्यवच्छेद रहेंगे, विनष्ट रहेंगे तो अविनष्ट न रहेंगे, अविनष्ट रहेंगे तो विनष्ट न रहेंगे। यों अन्योन्यव्यवच्छेद रूप हैं दोनों धर्म तो उनमें एक का निषेध किया जायगा तो दूसरेका विधान अनिवार्य हो गया तो ऐसी स्थितिमें अनुभयरूपता आ ही नही सकती। अर्थात् विनष्ट न हुआ यह कहनेपर अविनष्ट हो गया। स्थिर हो गया। यह सिद्ध अनिवार्यरूपसे हो जायगा और जब यह कहा कि अविनष्ट नही है तो विनष्ट है यह बात बन जायगी तो इस तरह एक वस्तुमें अनुभवरूपता बन नही सकती।

निरन्वय नाश माननेपर कारणमें उपादानकारणत्व व सहकारी कारणत्वकी व्यवस्थाका अभाव—अब और भी सुनो। यदि पदार्थको निरन्वय नाशी मान लिया जाता है अर्थात् उस पदार्थका कोई अन्वय नाम निशान कुछ भी नही रहता है, इस तरह निरन्वय विनाशी माननेपर तो कारणमें उपादानपना और सहकारीपना इन दो विभागोंकी व्यवस्था नहीं बन सकती। क्योंकि निरन्वयनाशी होनेसे उसके स्वरूपका परिज्ञान न रहेगा। इसका तात्पर्य यह है कि क्षणिकवाद सिद्धान्तमें एक वस्तुको किसी कार्यका तो माना है उपादान कारण और किसी कार्य का माना है सहकारी कारण जैसे कि मिट्टीसे घड़ा बना तो माना गया है कि घड़ेका तो है उपादान कारण मिट्टी और उस मिट्टीसे ज्ञान भी बना अर्थात् पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानी गई है। तो जो मिट्टीका ज्ञान करते है उनके ज्ञानका वह सहकारी कारण हो गया तो वह मिट्टी रूप पदार्थ जिसका कि निरन्वय विनाश मानते कि उस का लेश मात्र भी कुछ नहीं रहता, तो उस मिट्टीमें यह कैसे सिद्ध कर सकेंगे कि यह घड़ेका तो हुआ उपादान और मिट्टीका ज्ञानका हुआ सहकारीकारण। ऐसे ही और भी दृष्टान्त ले लीजिए। जैसे नील क्षण है। नीलारूप है तो वह रूप उत्तररूपको तो मानता है उपादान कारण और रसका मानता है सहकारी कारण। अब रूप तो क्षणिक हुआ और वह निरन्वय नष्ट हो गया तो निरन्वय नष्ट होनेपर अब जो दो कार्य सामने हैं रूप और रस। तो उनमें यह विभाग कैसे बनाया जायगा कि रूपका तो हुआ वह उपादान कारण और रसका हुआ वह सहकारी कारण। तो निरन्वय नाशी माननेपर उस कारणमें वस्तुमें यह इस कार्यका तो उपादान कारण है और इस कार्यका सहकारी कारण है यह व्यवस्था नही बन सकती, क्योंकि निरन्वय नष्ट हो जानेपर अब उसके स्वरूपका कुछ ज्ञान ही नही किया जा सक रहा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निरन्वयनाशवादके सिद्धान्तके उपादानस्वरूपकी सिद्धिमें चार विकल्पोंकी पृच्छना—अच्छा, उपादानका स्वरूप क्या है ? उपादानके स्वरूपका ज्ञान नहीं किया जा सकता, ऐसी बात सुनकर कुछ कहनेको उद्यत हुए शंकाकारके प्रति स्वयं ही पूछा जा रहा है कि अच्छा, फिर बताओ तो कि उपादान कारणका स्वरूप क्या है क्षणिकवाद सिद्धान्तमें ? क्या उपादान कारणका यह स्वरूप है कि अपनी संतति हटानेपर कार्यको उत्पन्न करदे। अर्थात् कारणभूत पदार्थ अपनी संततिको तो हटादे और एक नवीन बातको उत्पन्न करदे। जैसे कि मिट्टीका पिण्ड स्वयं हटता हुआ घटको उत्पन्न कर देता है याने मृत्पिण्डसे घड़ा बना तो घड़ा बननेपर फिर मृत्पिण्डकी बात तो न रही। तो मृत्पिण्ड स्वयं हटकर घटको उत्पन्न करदे। इस प्रकार अपनी संतति हटाकर, अपना नाम निशान मिटाकर कार्यको उत्पन्न करदे इससे, इसका नाम क्या क्या उपादान कारणका ही है अथवा अनेक कारणका ही है अथवा अनेक कारण समूहसे उत्पन्न होने वाले कार्यमें अपनेमें रहने वाले विशेषको रखदे कार्य क्या यह उपादानका स्वरूप है ? इस द्वितीय पक्षका भाव यह हुआ कि जैसे ज्ञानक्षणरूप कार्य इन्द्रिय, पदार्थ प्रकाश आदिक कारणसे हुआ करता है तो कार्य तो हुआ वह ज्ञान क्षण। वह हुआ अनेक कारणों उन सब कारणोंमें जो कारण अपनेमें रहने वाली विशेषताको रख देवे कार्यमें, तो जो कारण अपनेमें रहने वाली विशेषताको कार्यमें रख सके उसको कहेंगे उपादान कारण। क्या उपादान कारणके स्वरूपका यह भाव है अथवा समनन्तर प्रत्ययपना होना ही उपादान कारणका स्वरूप है। याने उसके अनन्तर जो कार्य होनेको है उस कार्यका कारणपना रहा कहा जा सके जिसको सो उपादान कारणका स्वरूप है। अथवा नियम सहित अन्वय व्यतिरेकका अनुविधान होना उपादानका स्वरूप है। अर्थात् जिस कार्यका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध रहे कि जिसके होनेपर कार्य हो, जिसके न होनेपर कार्य न हो, इस तरहका अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध रहे। क्या इसके मायने उपादान कारणका स्वरूप है ? इस प्रकार उपादान कारणके स्वरूपकी जानकारीके सम्बन्धमें ४ विकल्प उपस्थित किए गए।

स्वसंततिनिवृत्ति होनेपर कार्यजनकत्व होनेरूप उपादान स्वरूपकी असिद्धि—उक्त चार विकल्पोंमेंसे यदि प्रथम विकल्प लोगे, अर्थात् उपादान कारणका स्वरूप यह है कि अपनी संततिके हटनेपर कार्यको उत्पन्न करे अर्थात् अपनी संततिको हटाता हुआ जो कार्यको उत्पन्न करे वह कारण उस कार्यका उपादान कारण कहलाता है, ऐसा पक्ष ग्रहण करनेपर यह पूछा जा रहा है कि वह कारण अपने संतानकी निवृत्ति करता है तो क्या कथंचित् संतान निवृत्ति करती हैं या सर्वथा ? यदि कहो कि वह कारण कथंचित् संतान निवृत्ति करता है तो इसमें स्याद्वादमतका प्रसंग हो गया, स्याद्वाद सिद्धान्तमें यह बताया गया है कि पूर्व पर्याय संयुक्त पदार्थ उत्तर पर्यायका उपादान कारण है सो उत्तर पर्यायरूप कार्यके होनेपर पूर्व पर्याय हट जाती हैं, मगर

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य वहीं रहता है। इस कारणसे जो कुछ हटा है वह कथंचित् हटा है पर्यायरूपसे हटा है द्रव्य रूपसे नही हटा है। तो इस तरह कथंचित् संतान निवृत्ति माननेपर अनेकान्तमतका प्रसंग आ जायगा। यदि कहो कि सर्वथा संतान निवृत्ति करती है वह क्षणिक वस्तु तब तो फिर परलोकका अभाव हो जायगा क्योंकि एक ज्ञानक्षण भी वस्तु है और वह ज्ञानक्षण उत्तरज्ञानको उत्पन्न करेगा तो क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार ज्ञानक्षणकी संतान सर्वथा हट गई नाम निशान न रहा तो फिर परलोक क्या चीज रही? तो सर्वथा संतान निवृत्ति माननेपर परलोकका अभाव हो जायगा इस कारण प्रथम विकल्पको सिद्ध नहीं कर सकते कि उपादान कारणका स्वरूप यह है कि अपनी संततिको हटाता हुआ कार्यको उत्पन्न करदे।

स्वगत विशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूपकी असिद्धि अब यदि द्वितीय पक्षकी बात लेते हो कि अनेक कारणोंसे उत्पन्न ज्ञान नामे कार्यमें जो कारण अपनेमें रहने वाले विशेष धर्मको कार्यमें रखदे। कार्यको सौंप दे, ऐसे कारणको उपादान कारण कहते हैं। तो इस विकल्पको मानने वालेके प्रति पूछा जा रहा है कि वह उपादान कारण जिसमें कि कल्पना की गई है उपादानताकी तो क्या अपनेमें रहने वाले कुछ ही विशेष धर्मोंको कार्यमें रख देता है या अपनेमें रहने वाले समस्त धर्मोंको रख देता है। कारण तो कार्यको उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है तो वह नष्ट हो जाने वाला कारण कार्यमें जो अपना धर्म सौंप गया। रख गया तो क्या वह समस्त धर्मोंका रख गया या कुछ धर्मोंको रखा गया? यदि कहो कि वह अपनेमें रहने वाले कुछ विशेषोंको रखा गया है तब तो देखिए एक सर्वज्ञका ज्ञान कार्य है। सर्वज्ञदेव जो कुछ ज्ञान कर रहे हैं वह तो हुआ कार्य और उसमें कारण हैं जिनका ज्ञान किया जा रहा है वे वे सब पदार्थ तो उनके ज्ञानमें हम लोगोंका ज्ञान भी तो आ गया अर्थात् सर्वज्ञका ज्ञान हम अल्पज्ञोंके ज्ञानको भी तो जानता है। तो देखिए अल्पज्ञोंके ज्ञानका आकार सर्वज्ञके ज्ञानमें आया अर्थात् अल्पज्ञोंके ज्ञान अपना आकार सर्वज्ञके ज्ञानमें रख दिया तब तो हमारा ज्ञान, अल्पज्ञोंका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानके प्रति उपादान कारण बन जायगा। जब उपादान कारणका स्वरूप यह माना है कि जो कारण अपनेमें रहने वाले कुछ विशेषताको जिस कार्यमें रखदे उस कार्यके प्रति वह उपादान कारण कहलाता है तो देखो ना हम अल्पज्ञोंके ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानमें अपना आकार रख दिया क्योंकि क्षणिकवादमें ज्ञेय पदार्थसे ज्ञानक्षणकी उत्पत्ति मानी गई है। तो जब हमारे अल्पज्ञोंके ज्ञानने अपना आकार समर्पित कर दिया सर्वज्ञ ज्ञान कार्य हुआ और हम अल्पज्ञोंका ज्ञान कारण हुआ। उपादान बन गया। तो अब देखिये कि सर्वज्ञके ज्ञानके अब दो उपादान हो गए। सर्वज्ञका स्वयं पूर्वज्ञानक्षण और हम अल्पज्ञोंका ज्ञानक्षण। ऐसा होनेपर अब सर्वज्ञमें दो संतानें चल उठी। संतानें होती है उपादानसे तो अब सर्वज्ञके ज्ञानका वह सर्वज्ञज्ञान भी उपादान रहा और हम अल्पज्ञोंका ज्ञान भी उपादान रहा। तो अब उसमें दो संतानें हो गयी। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यों सर्वज्ञके ज्ञानमें संतान संकर होनेका दोष आता है ।

स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूपकी असिद्धि— क्षणिकवादी शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि निरन्वय नाश माननेपर कारणमें यह व्यवस्था कैसे बन सकेगी कि यह कारण तो अमुक कार्यका उपादान कारण है और यह अमुक कार्यका सहकारी कारण है । जब उसका निरन्वय नाश ही हो गया तब दोनों कार्योंके लिए वह समान है । इसी सिलसिलेमें उपादान कारणका स्वरूप पूछा जा रहा है । क्षणिकवादी उपादान कारणका क्या स्वरूप मानता है । कुछ विकल्पका निराकरण करनेके बाद अब इस विकल्पका निराकरण चल रहा है कि वह यदि उपादानका यह स्वरूप माने कि जिस कार्यमें कारण अपनी कोई विशेषता रख दे वह उसका उपादान कारण हुआ तो इसमें कुछ आपत्तियां बताकर अब यह आपत्ति दिखला रहे हैं कि देखो पदार्थमें जो रूप है, पदार्थोंमें क्या, क्षणिकसिद्धान्तमें तो रूप ही पदार्थ है । पदार्थ अलग कुछ नही है, रूपक्षण, रसक्षण, गंधक्षण, ये सब जुदे-जुदे पदार्थ हैं, तो जब रूप रूपके ज्ञानका कारण बन रहा है क्योंकि ज्ञानकी उत्पत्ति भी क्षणिकवादियोंने पदार्थसे मानी है तो रूप ज्ञानका कारण हुआ रूप सो रूप रूपज्ञान के प्रति उपादान बन जायगा, क्योंकि रूपने अपना आकार तो सौंप दिया ना रूप ज्ञानको । पदार्थ अपना आकार ज्ञानको सौंप देता है तब ज्ञान पदार्थको जानता है ऐसा क्षणिकवादमें बताया है, तो रूपने रूपज्ञानको अपना आकार सौंप दिया ना, इससे रूप रूपज्ञानका उपादान कारण बन बैठेगा, और जब रूपज्ञानका रूप उपादान कारण बन गया तो इसका अर्थ यह है कि ज्ञानोंका उपादान अचेतन भी बन गया तब तो परलोकका अभाव ही हो जायगा, क्योंकि अब अचेतन रूपसे, उपादानसे चेतनकी उत्पत्ति होने लगी है. इसका कारण यह है कि जो अपनेमें रहने वाली विशेषताको धर जाय जिस कार्यमें वह उस कार्यका उपादान कारण होता है. देखो- कहना तो उनका कुछ-कुछ ठीक है-जैसे मिट्टीसे घड़ा बनता है तो घड़ामें मिट्टी रखी ही तो जाती है । घड़ा कही मिट्टीसे अलग तो नही है, किन्तु उनका यह कहना है कि अपना आकार सौंपकर खुद कारण मिट जाया करता है । लेकिन यहाँ उपादान कहाँ मिटा ? वह मिट्टी बनी ही तो रही ।

स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वरूप उपादान स्वरूप माननेपर अनेक धर्मात्मकताकी सिद्धि— अब इस विकल्पके सम्बन्धमें एक अन्तिम दोष दिया जा रहा है कि कुछको रख जानेके कारण कारणको उपादान मान लिया जाय तो देखो कोई पदार्थ ज्ञानको उत्पन्न करनेका कारण बनता है तो वह पदार्थ ज्ञानक्षणमें कुछ तो धर्म रख देता है और कुछ धर्मोंको नही रख पाता । जैसे कि घटसे घटज्ञान उत्पन्न हुआ तो घटज्ञानमें घटने अपना रूप आकार तो दे दिया ज्ञानको पर जड़ता तो नही दी । तो देखो-एक पदार्थने ज्ञानक्षणको कुछ तो धर्म दे दिया और कुछ धर्म नही दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि पदार्थके कुछ धर्म तो आ गए, कुछ नहीं आये तो ज्ञान क्षणमें कारणके कुछ धर्म तो अनुवृत्त हो गए समान हो गए और कुछ धर्म व्यावृत्त हो गए। उस ज्ञानक्षणसे उस कार्यसे कुछ धर्म ललग हट गए तो अनेक विरुद्ध धर्म कार्यमें आ गए ना और अनेक परस्पर विरुद्ध धर्मोंका किसी एक जगह आ जाना इस ही का नाम तो अनेकान्त है। अनेक धर्मोंका एक जगह रहना सो अनेकान्त है। अब देखिये, तुम्हारे ज्ञानक्षणमें पदार्थके कुछ धर्म तो आये, कुछ धर्म न आये। तो अनुवृत्त व्यावृत्त विरुद्ध परस्पर अनेक धर्मोंका एक पदार्थमें, एक ज्ञानमें जमाव हो रहा है तो यह अनेकान्तत्मकताको ही तो सिद्ध करेगा फिर आपकी अभिमत एकान्त स्वरूपता कहाँ रही। इस कारण यह नहीं कह सकते कि उपादान कारण अपने कुछ विशेषोंको कार्यमें रख देता है। इसी कारण जो कारण कार्यमें अपने कुछ विशेष धर्मोंको रख दे, उसको उपादान कारण कहते हैं। यों उपादानका स्वरूप बनाना संगत नहीं बैठ रहा।

स्वगतसमस्तविशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूपकी असिद्धि—अब द्वितीय पक्षका द्वितीय विकल्प मानते हो तो उसका दोष सुनो! द्वितीय विकल्प है कि जो अपने समस्त विशेषोंको कार्यमें धर जाय उसको उपादान कारण कहते हैं। तो समस्त विशेषोंको ग्रहण करा देनेके कारण यदि उपादान कारण माना जाय तो फिर यह बतलावो कि निर्विकल्प ज्ञानसे विकल्पकी उत्पत्ति कैसे होगी? क्षणिकवादमें सर्वप्रथम प्रत्यक्ष ज्ञानसे जीवको निर्विकल्प ज्ञान होता है, उस निर्विकल्प ज्ञानक्षणसे उत्तरमें होने वाले सविकल ज्ञानक्षणकी उत्पत्ति होती है। तो देखिये ना, कि सविकल्प ज्ञानक्षणकी उत्पत्तिका कारण यह निर्विकल्प ज्ञान पड़ा। अब कारण माना है आपने उसे जो अपने समस्त विशेषोंको कार्यमें सौंप जाय। तो निर्विकल्प ज्ञानने सविकल्प ज्ञानको अपने समस्त विशेष कहाँ सौंपे? यदि सौंप दिए होते तो इसका अर्थ है कि जैसी स्थिति निर्विकल्प ज्ञानकी थी वही स्थिति उसके बाद भी रहनी चाहिए। तो विकल्प कहाँ रहा? निर्विकल्प ज्ञानसे फिर विकल्पकी उत्पत्ति नहीं बनती। और भी दूसरा दूषण सुनो! यदि उपादान कारण अपने समस्त धर्मोंको कार्यमें सौंप बैठे तो देखिये! रूपाकारसे जो ज्ञान हुआ है रूपज्ञान, तो रूपाकार ज्ञानसे जो अनन्तरमें रस ज्ञान हुआ है वह रूपज्ञान रसाकारकी उत्पत्तिका कारण कैसे बन सकता है? क्योंकि उपादान कारण माना है तुमने उसे, जो अपने समस्त विशेषोंको कार्यमें रख जाय। तो रूपज्ञान यदि रसज्ञानमें अपने समस्त विशेषोंको रख जाता है तब तो रूपज्ञान ही बनना चाहिए, रसज्ञान कैसे बन जायगा? क्योंकि रूपज्ञानने रसज्ञानमें अपने समस्त विशेष रख दियेका प्रसङ्ग आ गया। किन्तु ऐसा है कहाँ? रूपज्ञानने रसज्ञानमें समस्त विशेष रखे नहीं।

एक पुरुषमें अनेक ज्ञान सन्तान मानकर उपादान प्रतिनियम सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करनेमें विडम्बनाका विवरण—यदि कहो कि हम अनेक संतान मान लेंगे, किसी भी पुरुषमें अनेक संतान चल रही हैं, रूप ज्ञानकी संतान चल रही हैं, रस ज्ञानकी भी संतान चल रही है तो यों अनेक ज्ञानोंकी संतान मान लेनेसे फिर तो अपने–अपने सदृश संतानसे अपनी अपनी सभीकी उत्पत्ति होती जायगी। अर्थात् जब एक पुरुषमें नाना ज्ञान संतानें चल रही है तो जिस जातिका ज्ञान है उससे उस जातिके पदार्थोंका ज्ञान होता रहेगा। फिर उसमें यह अड़चन न आयगी कि रूपज्ञानसे रसज्ञान कैसे बनेगा ? अरे उस पुरुषमें रसज्ञानकी भी संतान चल रही है, रुपज्ञानकी भी संतान चल रही है, रुपज्ञानक्षणसे रुपज्ञानकी भी उत्पत्ति होने लगेगी। और रसज्ञान क्षणसे उत्तर रस-ज्ञान क्षणकी भी उत्पत्ति होने लगेगी। और अन्य ज्ञानक्षणसे उत्तर अन्य ज्ञानक्षणकी भी उत्पत्ति होने लगेगी। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे तो एक ही पुरुषमें अनेक प्रमाण सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् आत्मा ही अनेक सिद्ध हो जायेंगे, क्योंकि ज्ञान संतान अनेक मान ली है ना। तो जितने ज्ञान हैं उतने ही आत्मा हुए और जब एक पुरुषमें अनेक प्रमाता सिद्ध हो गए तो जैसे देवदत्तने जो बात देखी है उसका स्मरण यज्ञदत्त को हो जाय यह तो नही होता ना, क्योंकि देवदत्त भिन्न संतान है अर्थात् भिन्न ज्ञान की परम्परा है। तो जैसे देवदत्त द्वारा देखे गए पदार्थमें यज्ञदत्तका कुछ अनुसंधान नहीं होता, स्मरण परिज्ञान अनुभव कुछ नही होता, इसी तरह एक भी पुरुष यदि गाय और घोड़ेको देखे तो उसको भी यह अनुसंधान न रहना चाहिए यह स्मरण न करना चाहिए कि मैंने पहिले गायको देखा था तो जिस ही मैंने पहिले गायको देखा था तो जिस ही मैंने पहिले गायको देखा था उस ही मैंने अब इस अश्वको देखा है, अथवा एक साथ भी गाय और घोड़े देखे जा रहे तो इन्हें भी मैं ही देख रहा हूं, ऐसा ज्ञान न करना चाहिए, क्योंकि अब तो एक पुरुषमें अनेक प्रमाता मान लिए गए, अनेकज्ञान संतानें मान ली गई हैं, किन्तु अनुसंधान न होता हो ऐसा तो नही है। हम १०–२० वर्ष पहिले जानी हुई बातका भी अनुसंधान कर लेते हैं। तो इस प्रकार यदि उपादानका स्वरूप यह बनाते हैं कि जो अपने समस्त विशेष कार्यमें रख जाय उसको उपादान कारण कहते हैं तो ये सारे दोष उपस्थित होते हैं इस कारण उपादान उसका नाम नही कि लो अपनी सारी विशेषताओंको कार्यमें रख जाय। और खुद तुरन्त नष्ट हो जाय।

स्वगतसमस्तविशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूप माननेपर सहकारी-कारणत्वकी व्यवस्थाका अनवकाश—अब इस ही विकल्पके सम्बन्धमें अर्थात् उपादान कारण उसे कहते हैं जो अपनी समस्त विशेषताओंको कार्यमें रख जावे, इस सम्बन्धमें अन्य एक दोष बताते हैं। स्वगतसकलविशेषाधायकत्वका विकल्प जाननेपर तो सर्वात्मकरुपसे उपादेय क्षणमें ही इस कारणका उपयोग हो गया, अर्थात् वे क्षणिक पदार्थ जो कार्यमें अपना समस्त विशेष रख गया तो सर्वरूपसे उस कार्यमें ही उस कारणका उपयोग लग जायगा। अब कुछ रहा तो नहीं। जब उपादान कारणने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने समस्त तत्त्व, स्वरुप सर्वस्व जब कार्यको दे डाला तो अब उस कारणमें कुछ रहा तो नहीं। तो जब अन्य स्वभावान्तर रहा ही नहीं, तो उसका अन्य कार्यके प्रति सहकारित्वरूपसे उपयोग न होगा तो एक सामग्रीके अन्तर्गत जो काम है उत्तर रस आदि जिस जिसका कि सहकारी कारण माना जा रहा है अब उसका सहकारी कारण तो नहीं रह सकता। यहां यह तात्पर्य समझना कि कोई क्षणिक पदार्थ जब कार्यमें अपना स्वरूप सर्वस्व रख जाता है तो उस कारणने अपना स्वरूप तो उस उपादेयमें रख दिया ना अर्थात् जिसका यह उपादान कारण था उस कार्यमें रख दिया तो अब कोई और स्वभाव तो नहीं बचा। जब समस्त विशेष कारणने उपादेय कार्यमें रख दिया तब कोई बात बची तो नहीं। तब दूसरे कार्यके प्रति वह सहकारी कारण कैसे बन सकता है? जब सहकारिताके लिए कोई स्वभावान्तर ही न रहा, सारा विशेष उपादेय क्षणमें ही सौंप दिया तो अब किसी भी कार्यका सहकारी कारण बनना सिद्ध नहीं हो सकता। फिर तो रसके ज्ञानसे रूप आदिक ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? यहां यह उपदेश दिखाया गया है कि उपादान कारणने उपादेय कार्यको अपना सब कुछ सौंप दिया। अब कुछ रहा तो नहीं बाहर। तो अब किसके आश्रयपर अन्य कार्यका वह सहकारी कारण माना जाय?

उपादेयक्षणमें स्वगतसमस्तविशेषाधान होनेपर भी कारणमें स्वभावान्तर माननेपर अनेक धर्मात्मकताकी सिद्धि—यदि कहो कि उसमें स्वभावान्तर भी है, सब कुछ उपादेय कार्यमें सौंप चुकनेके बाद भी कारणमें कुछ स्वभावान्तर भी है, जिसके कारण अन्य कार्यका यह सहकारी कारण बन जाता है। तो इसका उत्तर सुनो तीन लोकके अन्तर्गत अन्य कारणोंके द्वारा उत्पन्न हुए नाना कार्यान्तर उसकी अपेक्षा है तो उस कारणमें अजनकत्व होनेपर भी स्वभावान्तर बनगया, ऐसा मान लेना चाहिए। अर्थात् जो कुछ भी स्वभावान्तर रह गया है, उपादेय क्षणमें अपना सब कुछ सौंपनेके बाद भी तो वह स्वभावान्तर सब कार्योंका सहकारी कारण बन जायगा, तब तो यह बात बन बैठेगी कि एक ही रुपादिक उपादान किसीका तो सहकारी बनता है, किसीका सहकारी नहीं बनता है। तो देखो ना अब उस एक कारणमें अनेक विरुद्ध धर्म भी आ गए। किसी कार्यका सहकारी कारण बन जाता। किसी कार्यका सहकारी कारण नहीं बनता, यों अनेक विकल्प धर्मसे युक्त हो गए ये सारे उपादान, तब अनेकांतका ही तो आश्रय लिया गया। ये सब धर्म काल्पनिक नहीं मिथ्या नहीं। कारणोंमें किसी कार्यका सहकारित्व शक्ति हैं, किसी कार्यकी सहकारित्व शक्ति नहीं है, इस तरह जो उसमें नानापन है, यों परस्पर धर्म है उससे संयुक्त हुआ ना, और ये धर्म मिथ्या नहीं हैं। यदि कारणके ये सारे धर्म काल्पनिक हो जायें तो उनके जो कार्य हैं वे सब भी काल्पनिक बन बैठेंगे। इक कारणसे उपादान कारणका यह स्वरुप मानना कि जो कारण अपना सर्वस्व, विशेष, धर्म जिस उपादेय कार्यको सौंप जाय उसको उस कार्यका उपादान कारण कहते हैं। यह विकल्प युक्ति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संगत नहीं होता ।

समनन्तरप्रत्ययवस्रूप उपादानरूप माननेमें सम्‌शब्दवाच्य समत्वके भावमें विडम्बना – शंकाकार कहता है कि उपादानका लक्षण समनन्तर प्रत्ययपना बन जायगा अर्थात् समान कालके अनन्तर ही पहिले कारणका होना यह उपादानका लक्षण है । उत्तर देते हैं कि यह बात अयुक्त है । समनन्तर शब्दकी ही पहिले सिद्धि करो । समनन्तरमें दो शब्द हैं –सम् और अनन्तर । सम्‌का अर्थ है समता और अनन्तरका अर्थ है बिना अन्तरके होना । तो कार्यमें जो समानता है वह किसकी है ? कारणकी । समानता बतानेमें दो चीजें कही जाती हैं । तो कार्यमें जो कारणकी समानता है वह सर्वात्मकरूपसे है या एकदेशरूपसे ? यदि कहो कि कार्यकी समानता कारणके सर्वरूपसे है, तब तो जैसे कारण पहिले है, उसी प्रकार कार्य भी पहिले ही होना चाहिए । कारणके बाद एक प्रथक लगी हुई क्षणमें कार्यकी उत्पत्ति मानी है और अब मान रहे हो कि कार्यमें कारणकी पूरी समता है । तो जैसे कारण प्राग्भावी है उसी प्रकार कार्य भी प्राग्भावी होना चाहिए । और जब कार्य व कारणमें समता आ गई तो जैसे दाहना और बांया गायका सींग एक ही समयमें है तो उसमें जैसे कार्य कारणपना नहीं है इसी प्रकार प्रत्येक कार्यमें चूंकि वह कारणके समान कालमें है तो एक ही समयमें रहने वाले दो पदार्थोंमें कार्यकारण भाव कहां बन सकेगा ? एक तो यह दोष आया । दूसरा यह दोष है कि किसी भी कार्यके कारणको आपने मानी जब समानकालता अर्थात् कार्य कारणके कालमें रहता है तो एक तो वह कार्य अपने कारणके समान कालमें माना गया तो उसका कारण भी तो किसीका कार्य है तो वह कार्य अपने कारणके कालमें आया । फिर वह भी कारण किसीका कार्य है । वह भी अपने कारणके कालमें आया । इस तरहसे तो सारा संसार शून्य हो जायगा क्योंकि कार्य और कारण बन ही नहीं सकता । इससे यह नहीं कह सकते कि कार्यमें कारणकी सर्वरूपसे समानता है । कथञ्चित् समानता मानोगे तो ऐसे सर्वज्ञका ज्ञान, योगीका ज्ञान जिसमें कि हम अल्पज्ञोंके ज्ञानका आलम्बन लिया है तो हमारे ज्ञानके आकार हुआ ना योगीका ज्ञान । तो समान बन गया तो उसमें भी एक संतानपनेका प्रसंग आ जायगा ।

समनन्तरप्रत्ययत्वके अनन्तरशब्दके भावमें देशकृत अनन्तरताकी असिद्धि अब अनन्तरपनेकी बात सुनो । शंकाकारका यह कहना है कि कार्यका उपादान कारण वह कहलाता है जो कि कार्यसे निकट ही पहिले कारण बना हो, वह उस कार्यका उपादान कारण है । जैसे घड़ा कार्य हुआ तो घड़ासे निकट ही पहिले जो मृत्पिण्ड था तैयार वह घड़ेका उपादान कारण हुआ । तो यहां अनन्तर शब्दका अर्थ पूछा जा रहा है कि अनन्तरका मतलब ही क्या है ? अनन्तर वह है कि जिसमें अन्तर न आये । जैसे तीसरे समयका कारण पहिले समयका पदार्थ नहीं हो सकता,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि उसमें अन्तर आ गया तीसरे समयकी पर्यायका, किन्तु दूसरे समयकी पर्याय या वस्तु कारण हो सकती है। तो अनन्तरका अर्थ है न लाकर जो निकटमें मिले पहिले तो अनन्तर सामान्य अर्थ है तो यह है। पर अनन्तर शब्दमें विकल्प उठाकर अनन्तरका अर्थ पूछ रहे हैं, क्या वह अनन्तर देशकृत है या कालकृत ? जैसे कोई वस्तु वगैरह अंगुल बड़ी है अब उसमें चौथे अंगुलका अनन्तर कारण क्या कहलाया ? देशकृत तीसरे अंगुलसे प्रदेश ही तो कहलाया इस प्रकार यह तो हुआ देशकृत अनन्तर और कालकृत अनन्तरका अर्थ यह है कि चौथे समयसे जो कार्य है उसके अनन्तर पूर्व कौन हुआ ? तीसरे समयका कार्य। तो अनन्तरता प्रकारसे जानी जाती है—एक तो देशकी अपेक्षा और एक कालकी अपेक्षा। तो क्या यहां देशकृत अनन्तर मानते हो ? देशकृत अनन्तरतासे तो समनन्तरप्रत्यत्व मान नहीं सकते। क्योंकि इस कारण कार्यके प्रसंगमें देशकृत अनन्तरताका कुछ उपयोग नहीं है। कार्य कारण जहां बताया जा रहा है, वहां समयकी ही बात तो समझनी होगी कि क्षेत्रकी बात समझनी होगी ? जैसे यह कमरा १५ फिट लम्बा है तो दूसरे फिटके पहिले पहिला फिट है ऐसा अनन्तरताका काम कार्य कारणमें नहीं बनता। अग्निसे धूम उत्पन्न हुआ तो धुवांसे अग्नि कुछ पहिले तो थी। तो कालकृत अनन्तरतासे तो कारण कार्यकी व्यवस्था बनती है। पर जगहके अनन्तरसे पूर्व उत्तरपना जाननेसे कार्यकारणकी व्यवस्था नहीं रहती। तो देशकृत अनन्तरता तो कार्य कारणकी बात बतानेमें उपयोगी नहीं है। देशकृत अनन्तरता न भी हो तो भी कार्यकारणपना बन जाता है। जैसे एक चित्त अर्थात् चित् (चेतन) अयोध्यामें मरा और हस्तिनापुरमें चित्तक्षणका जन्म हुआ तो हस्तिनापुरमें जन्म होनेका अयोध्यामें मरने वाला उपादान हो गया ना ? या सर्वसाधारण मतकी अपेक्षा यह कह लो कि अयोध्यासे मरकर जीव हस्तिनापुरमें जन्म लेता है तो देखो इतने दूर रहने वाले उस जीवका उपादान कारण बना और बाहर रसका कार्य हुआ तो यह कहना कि कि जो देशके अत्यन्त निकट हो सो ही कारण बन सकता है सो यह अयुक्त हुआ, क्योंकि यहाँ तो उतनी दूर रहने वाला भी कारण बन गया। तो बहुत व्यवहित देशमें रहने वाला कोई चित् (चेतन) है वह भावी जन्मके चित्तका उपादान माना है स्वयं क्षणिकवादियोंने तो देशकृत अनन्तरतामें कारण कार्य ना बने यह बात तो अयुक्त हो गई ना। अब उतनी दूर देशमें रहने वाला भी उपादान कारण बन गया तो देश-कृत अनन्तरता तो कारण न रही।

समनन्तरप्रत्ययत्वके अनन्तर शब्दके भावमें कालकृत अनन्तरताकी असिद्धि – यदि कहो कि कालकृत अनन्तरता उपादान कारण बना देगा तो यह भी बात गलत है। क्षणिकवादमें बहुत कालके बादके कार्यको भी बहुत पहिले समयकी वस्तुका कारण मानते हैं। जैसे एक मनुष्य १ बजे सोया और ६ बजे जगता है तो ६ बजे तो वह जगा, सावधान बना तो उस ६ बजेका जो जागृत चित्त है, सोयी हुई अवस्थामें चेतन न रहा। लोग भी सोये हुएको कहते कि बेहोश हो गया। तो ६ बजे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो प्रबुद्ध हुआ उस समय जो उसका चित्त है उसका कारण १ बजेसे पहिलेका चित्त पड़ गया। तो इस बीच तो ५ घंटेका अन्तर आया। तो विशाल कालके अंतरसे पहिले में चौथे अंगुलका अनन्तर कारण क्या कहलाया ? देशकृत तीसरे अंगुलके प्रदेश। रहने वाला पदार्थ भी देखो उपादान कारण बन गया। तो यह कहना ठीक नही बैठा कि अनन्तर पूर्व कालमें रहने वाले पदार्थको उपादान कारण कहते हैं। यदि कहो कि हम अनन्तरका इतना ही अर्थ करेंगे कि बिना व्यवधानके पहिले हो जाता। पहिले सद्भाव होना इसका कारण अनन्तरता है। जैसे घड़ा कार्य है तो घड़ा कार्यके पहिले उतना पहिले कि जिसके बीचमें कोई व्यवधान न हो। उस समय जो कुछ हो उसे अनन्तर कहेंगे और, यह अनन्तरता सबमें घटालो— चेतन हो अथवा अचेतन हो। उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि क्षणिकएकान्तवादियोंके यहाँ किसी भी विवक्षित क्षणके अनन्तर ही सारे जगह सारे क्षण उत्पन्न हो जायेंगे। क्यों हो जायें ? यों कि आप कह रहे हो कि कार्यसे बिल्कुल निकट पहिले जो वस्तु हो उसे कारण कहते हैं। तो जितने भी चेतन अचेतन कार्य हैं दुनिया में उन सबके लिये कोई भी पदार्थ कारण क्यों नही बन जाये। जैसे घड़ा कार्यसे पहिले वह मृत्पिण्ड है ऐसा मानकर मृत्पिण्डसे केवल घड़ा ही क्यों बने ? मृत्पिण्डसे सारी दुनियाकी चीजें क्यों न बन जायें ? जब कारण क्षणिक है और नष्ट हो गया तो नष्ट हुआ कारण तो सबके लिये बराबर है। कारणका कार्यमें कुछ अन्वय तो मानते नही। तो जब एक वस्तु नही है और कार्य उसमें मानते हो तो वह कारण सब कार्योंका कारण बन जाना चाहिये। जैसे मिट्टी एक पदार्थ है जिनके मतमें तो उनके यहाँ तो उस मिट्टीसे जो बनेंगे उनका कारण मिट्टी है लेकिन क्षणिकवादियोंके यहाँ तो मिट्टी पदार्थ मिट गया, अब घड़ा बननेके लिये मिट्टीको कारण कहत हैं तो मिट गया हुआ मिट्टी कारण केवल घटका ही कारण क्यों कहलाया, दुनियाके समस्त पदार्थोंका कारण क्यों न कहलाया ? तो यों अनन्तरताका भी कुछ अर्थ न बन सका। तो समनन्तर प्रत्यय होना अर्थात् कार्यके अनन्तर पूर्व जो कुछ हो उसे उपादान कारण कहना यह बात युक्त नही बैठती।

मूलप्रकरणकी परम्परासे सम्बद्ध प्रसंगमें तीन विकल्पोंकी आलोचना

मूल प्रकरण यह चल रहा है कि इस दार्शनिक ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धि की जा रही है कि प्रमाण क्या हुआ करता है। किस ज्ञानको प्रमाण कहा करते हैं, प्रमाणके स्वरूपको सिद्ध करना इसलिये आवश्यक है कि किसीके भी विचारका, मंतव्यका यदि यह विपरीत है कुछ खण्डन करना चाहें तो उस खण्डनका हमारे पास आधार क्या हो ? हम किस तरहसे खण्डन करें वे विधियाँ तो जाननी चाहिएँ। तो वे विधियाँ विदित हैं प्रमाण स्वरूपके ज्ञान होनेमें। क्योंकि, प्रमाणसे ही हम सिद्ध करेंगे कि आपका यह मंतव्य ठीक नही, यह मंतव्य ठीक है। तो प्रमाणका बड़ा विस्तार पूर्वक इस ग्रन्थमें वर्णन कर दिया गया है। प्रमाण, स्व और पर पदार्थका प्रकाश करने वाला जो ज्ञान है, वह कहलाता है। उस प्रमाणकेदो भेद हैं

Version 1

प्रत्यक्ष और परोक्ष । प्रत्यक्षके दो भेद हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो इन्द्रियसे जो कुछ साक्षात् जाना समझा वह कहलाता है, यह है वास्तवमें परोक्ष, लेकिन लोकव्यवहारमें चूँकि ऐसा कहा करते हैं लोग कि हमने प्रत्यक्ष देखा तथा इन तरहके प्रत्यक्ष देखनेमें एक देश स्पष्ट पदार्थका ज्ञान भी समझ में आता है इस कारण विरोध होनेपर भी इस ज्ञानको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है। सिद्धान्तमें तो प्रत्यक्ष और परोक्षका लक्षण यह कहा कि जो इन्द्रिय मनकी सहायता से ज्ञान बने सो तो परोक्ष और इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना केवल आत्मीय शक्ति से ज्ञान बने सो प्रत्यक्ष लेकिन दार्शनिकताके क्षेत्रमें प्रत्यक्षका लक्षण यह किया गया कि जो स्पष्ट ज्ञान हो सो तो प्रत्यक्ष और जो अस्पष्ट ज्ञान हो सो परोक्ष। तो चूँकि इन्द्रियजन्य ज्ञान एक देश स्पष्ट रहते हैं इस कारण उनको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्ष हुए अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। परोक्षज्ञान के ५ भेद हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान और आगम। इन सबका बड़े विस्तार से विवेचन करनेके बाद जब यह पूछा गया कि प्रमाणका विषय क्या है, तो उत्तर मिला कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है। पदार्थ न केवल सामान्य रूप होता और न केवल विशेष रूप होता, किन्तु सामान्य विशेषात्मक होता है। इस पर विशेषवादी यह शंका कर रहे हैं कि पदार्थ तो केवल विशेषरूप ही होता है। क्षणिक एक प्रदेशी भिन्न अत्यन्त भेद वाला पदार्थ हुआ करता है। पदार्थका सामान्य स्वरूप नहीं है। तो उस विशेषवादमें पहिले तो यह जिक्र किया था कि एक समयमें रहने वाले अनेक धर्मोंमें सदृशताका धर्म नहीं है, क्योंकि सदृशता माननेसे सामान्य सिद्ध हो जाता है उसका निराकरण करनेपर अब यह विशेषवादी कह रहा है कि कालके भेदसे भी कोई एक चीज अनादि अनन्तर नहीं है किन्तु वस्तु उतनी ही है जितनी कि एक समयमें है. दूसरे समयमें दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। तो यों प्रत्येक वस्तु निरन्वय नष्ट होती है अर्थात् उसका लवलेश भी नहीं रहता और पूरा नष्ट हो जाता है, तो इसपर यह पूछा जा रहा है कि जब वस्तु पूर्णतया तुरन्त नष्ट हो जाती है तो वह दूसरा कार्य भी पदार्थका कारण कैसे बन सकता है ? क्षणिक निरन्वय विनाशीक वस्तु उपादान कारण कैसे बनेगा ? उस उपादान कारणका स्वरूप पूछा जा रहा है। उस प्रसंगमें चार विकल्प किए गए थे जिनमेंसे तीन विकल्पोंका निराकरण कर दिया कि न तो अपनी संतति हटाकर कार्य उत्पन्न करनेको उपादान कहते हैं और न अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए कार्यमें अपना कुछ विशेष धर्म धर देनेको उपादान कहते हैं और न कार्यसे निकट पूर्व रहने वाले कारणको उपादान कहते हैं।

शङ्काकारविकल्पित नियमवदन्वयव्यतिरेकानुविधानस्वरूप उपादानस्वरूपकी आलोचना – अब चौथे विकल्पका खण्डन किया जा रहा है उपादानके स्वरूपके विषयमें चतुर्थ विकल्पकी आलोचना की जा रही है कि नियमसे अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान जहाँ पाया जाय वह उपादानका स्वरूप है ऐसा चतुर्थ विकल्प भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सही है क्योंकि ऐसा लक्षण बनानेपर तो बुद्ध याने सर्वज्ञ और अल्पज्ञके चित्तोंमें उपादान उपादेय भाव हो जायगा अर्थात् सर्वज्ञ और अल्पज्ञ ये दोनों संतानें न्यारी न्यारी हैं लेकिन उपादानका यह स्वरूप कहनेपर कि जहाँ नियमसे अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान हो उसे उपादान कहते हैं। तो देखो ! अल्पज्ञ पुरुषोंका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानमें आया ना, तो सर्वज्ञका ज्ञान अल्पज्ञके ज्ञानके आकार बन गया और वहां अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध भी हो गया। यदि अल्पज्ञ न होते, अल्पज्ञका ज्ञान न होता तो सर्वज्ञ कैसे इसको जान लेता ? यह तो है व्यतिरेक और अल्पज्ञके होनेपर ही अल्पज्ञोंके ज्ञानके होनेपर ही सर्वज्ञका यों ज्ञान बना कि यह है अन्वय तो जब अल्पज्ञोंके ज्ञानका सर्वज्ञके ज्ञानके साथ अन्वयव्यतिरेक बन गया तब अल्पज्ञका ज्ञान उपादेय हो जायगा, क्योंकि इन दोनों ज्ञानोंमें स्पष्ट तौरसे शंकाकारके सिद्धान्तके अनुसार अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध पाया जा रहा अर्थात् अल्पज्ञके ज्ञानके सद्भाव होनेपर सर्वज्ञके (सुगतके) ज्ञान उत्पन्न होता है। हम लोगोंके ज्ञानविषयक ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानमें आते हैं और हम लोगोंके ज्ञानके अभावमें सर्वज्ञमें हमारे ज्ञानविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति नही होती, इससे कार्य कारणपना इन दोनोंमें समानरूपसे पाया गया।

ज्ञानक्षणोंके सम्बन्धमें ही अन्वयव्यतिरेकानुविधानकी आलोचना होनेसे शंकाकारके अनिष्ट प्रसंग परिहारका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि सर्वज्ञका वह निराश्रव चित्त अर्थात् जिस चेतनमें आश्रव नही हो रहा, विकार नही आ रहा ऐसा निराश्रव चित्की उत्पत्तिसे पहिले तो अल्पज्ञके ज्ञानके प्रति अकारणता रही। अल्पज्ञका ज्ञान अब कारण न बन सका, क्योंकि अल्पज्ञोंका ज्ञान तो है आश्रवसहित और सर्वज्ञका ज्ञान है आश्रवरहित तो निराश्रव ज्ञानमें देखो इस अल्पज्ञ का आश्रव तो न आया इस कारणसे अल्पज्ञोंका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानका कारण न रहा। उत्तरमें कहते कि यदि ऐसा कहते हो तो यह यों ठीक नही बैठता कि जितने मात्र कारणको लेकर सर्वज्ञ और अल्पज्ञके ज्ञानमें कार्य कारण भेद बनाया जा रहा है उतने ही मात्र धर्मको लेकर तो कोई अन्वय व्यतिरेकमें कमी नही पायी जा रही। यह आश्रवकी बात तो नही कह रहे यहाँ तो केवलज्ञानकी बात कह रहे हैं कि सुगत सर्वज्ञके ज्ञानमें जो हम लोगोंका ज्ञान भी आ गया तो देखो—हमारा ज्ञान है तब वह ज्ञान बना सर्वज्ञमें, हमारा ज्ञान न हो तो सर्वज्ञमें वह ज्ञान नहीं बनता। तो यों ज्ञान का ज्ञानके साथ अन्वयव्यतिरेककी बात कही जा रही है। यहां आश्रवकी बात नही कही जा रही, क्योंकि यदि आश्रवकी ओरसे कार्य कारणका विचार रखा होता तो फिर सुगतमें सर्वज्ञता ही नही हो सकती थी, क्योंकि सर्वज्ञके ज्ञानमें हम लोगोंका ज्ञान कारण न पड़ा तो सर्वज्ञता ही न रही, क्योंकि विषय अकारण नही होते, विषयोंमें कारणता हुआ करती है। ऐसा क्षणिकवादियोंने स्वयं माना है। यदि अन्वय व्यतिरेकके अनुविधानकी बात कही जाती है तो वह अन्वयव्यतिरेक सर्वज्ञमें और अल्पज्ञमें पाया जा रहा इसलिए अल्पज्ञका ज्ञान तो उपादान कारण बन जायगा और सर्वज्ञका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान उपादेय कार्य बनजायगा इस कारण नियमसे अन्वयव्यतिरेकका जिसमें अनुविधान हो वह उपादान कारण होता है यह बात गलत हो जाती है।

एकद्रव्यतादात्म्यरूप प्रत्यासत्तिविशेषसे ही उपादानोपादेयत्वका प्रतिनियमन—अब शंकाकार कहता है कि यद्यपि सुगत सर्वज्ञके ज्ञानमें और अल्पज्ञों के ज्ञानमें अव्यभिचार रूपसे कार्य कारणपना पाया जा रहा है फिर भी कोई प्रत्यासत्ति विशेष ऐसा हैं कोई धर्म ऐसा है, ऐसी निकटता है कि उसके कारण सर्वज्ञके चेतन को ही परस्परमें उपादान उपादेय भाव बनेगा अर्थात् सर्वज्ञके ज्ञानकी संततिमें ही उपादान उपादेयपना बनेगा, सब कारणोंके प्रति उपादानपना न बनेगा। तो यहाँ उत्तरमें कहते हैं कि वह प्रत्यासत्ति विशेष अन्य है ही क्या, सिवाय इसके कि एक द्रव्यके साथ उसका तादात्म्य सम्बन्ध हो। यहाँ तात्पर्य यह है कि सर्वज्ञके ज्ञान चल रहे हैं। उन ज्ञानोंकी परम्परामें और सर्वज्ञ जानता है सार विश्वको सो उस विश्व ज्ञानके जो कारण हैं उनसे ही तो उस ज्ञानकी उत्पत्ति हुई, और ज्ञानके जो कारण है ये ज्ञेयभूत पदार्थ इनका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध रहा सर्वज्ञके साथ। ये विश्वके पदार्थ न होते तो सर्वज्ञका ज्ञान कैसे बनता ? तो यों सी अब अन्य पदार्थोंकी चर्चा न करके केवल अल्पज्ञके ज्ञानकी चर्चा करली कि अल्पज्ञोंके ज्ञान भी तो सर्वज्ञके ज्ञानमें आये। देखो—अल्पज्ञका ज्ञान न होता तो अल्पज्ञ ज्ञान विषयक ज्ञान सर्वज्ञके कैसे हो जाता ? इसमें अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध पाया गया, उससे उपादान उपादेय भावकी बातका प्रसंग किया जा रहा है। अर्थात् अब ये उपादान दो हो गए सर्वज्ञके ज्ञानके लिए। एक तो सर्वज्ञका खुदका ज्ञान और एक अल्पज्ञोंका ज्ञान। तो इस आपत्तिके निवारणके लिए शंकाकार यह कह रहा है कि यद्यपि अल्पज्ञके ज्ञानका सर्वज्ञके ज्ञान के साथ अन्वयव्यतिरेके है,कार्य कारणपना है लेकिन फिरभी सर्वज्ञके ज्ञानमें कोई ऐसी प्रत्यासत्तिकी विशेषता है कि सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोंमें ही उपादान उपादेय भाव बनेगा। उसके ज्ञानका अल्पज्ञके ज्ञानके साथ उपादान उपादेय भाव न बनेगा। यों इस विषय में बताया जा रहा है कि वह प्रत्यापत्ति ही तो वह है कि तादात्म्य है। जो एक द्रव्य होगा उस एक द्रव्यमें जो पर्यायें चलेंगी उन पर्यायोंका उपादान वही एक द्रव्य हुआ। अन्य और कोई प्रत्यासत्ति साबित नहीं हो सकती।

देशप्रत्यासत्तिसे सर्वज्ञज्ञानक्षणोंमें ही उपादानोपादेयत्वनियमनकी असिद्धि—यदि कहो कि देश प्रत्यापत्तिसे सर्वज्ञके ज्ञानक्षणमें हम उपादान उपादेय भाव मान लेंगे सो इस तरह भी नहीं मान सकते, क्योंकि ऐसा माननेपर अर्थात् जिन दो स्पष्ट चीजोंका एक ही देशमें अनेकपना है उनमें कार्यकारणपना बन बन बैठेगा तथा ऐसा माननेपर तो रूप और रसमें भी कार्यकारणपना बन बैठेगा। जैसे कोई फल है उसमें रूप भी है, रस भी है, और एक ही जगह है तो एक जगह रहनेसे यदि कार्य कारणपना बन जाता होता तो रूप और रसका भी कारण कार्यपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बन बैठेगा । शंकाकारने यह सुझाव दिया था कि सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोंमें निकटता तो सर्वज्ञके ज्ञानकी ही है । उस ही देशमें, उस ही स्थानमें औरका ज्ञान कहां पाया जाता ? सर्वज्ञके ही ज्ञान पाये जा रहे हैं । तो उस ही देश प्रत्यासत्तिके कारण सर्वज्ञ के ज्ञानक्षणोंमें ही उपादान उपादेयभाव बन गया । अन्य ज्ञेयभूत कारणोंके साथ उपादान उपादेय भाव न बनेगा । यह सोचकर शंकाकारने अपनी राय बतायी थी लेकिन वह राय यों ठीक नहीं बैठती कि देश प्रत्यासत्तिसे, एक ही देशमें निकटता होनेसे यदि कार्यकारणभाव बनता होता तो एक ही फलमें रूप, रस आदिक भी पाये जाते हैं तो उनमें भी परस्पर कार्यकारणभाव बन जाय । रूपका कारण रस हो जाय, रसका कारण रूप हो जाय, वह परस्परका उपादान हो जाय पर ऐसा तो नहीं है । और, भी दृष्टान्त ले लीजिए विरोधमें । एक ही जगहमें वायु और गर्मी दोनों पायी जाती हैं पर एक ही जगहमें वायु और गर्मी दोनों पाये जानेसे क्या उनमें कोई कार्य बन गया और दूसरा कोई कारण बन गया ऐसी व्यवस्था है ? नहीं है। यदि देश प्रत्यासत्तिके कारण सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोंमें उपादान उपादेयभावकी बात कहोगे तो रूप, रस आदिकके साथ वहां व्यभिचार हो जायगा ।

कालप्रत्यासत्ति व भावप्रत्यासत्तिसे सर्वज्ञ ज्ञानक्षणोंमें ही उपादानोपादेयत्वनियमनकी असिद्धि—शंकाकार अब अपनी दूसरी सम्मति देता है कि काल प्रत्यासत्तिकी वजहसे सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोंमें उपादान उपादेयभाव बना लीजिए । सो कहते हैं कि कालप्रत्यासत्तिसे भी यदि उपादान उपादेयभावकी कल्पना करोगे तो एक ही समयमें रहने वाले समस्त पदार्थोंके साथ अनेकान्त दोष हो जायगा । देखो न, विश्वके सारे पदार्थोंमें काल, प्रत्यासत्ति भी क्या, वर्तमान तो सब एक कालमें ही हैं । एक ही समयमें विश्वके सारे पदार्थ मौजूद हैं, पर काल प्रत्यासत्तिके कारण क्या उन अनेक पदार्थोंमें उपादान उपादेय भाव बन जाता है ? नहीं । तो काल प्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेय भाव माननेपर एक समयमें रहने वाले समस्त पदार्थोंके साथ अनेकान्त दोष आता है । तो अब शंकाकार तीसरी सम्मति दे रहा है कि चलो देश प्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था न बनी और काल प्रत्यासत्तिसे भी न बनी तो भाव प्रत्यासत्तिसे तो उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था बन जायगी । उत्तरमें कहते हैं कि देखो—अनेक पुरुष किसी एक पदार्थका ज्ञान कर रहे हैं तो उन अनेक पुरुषोंमें उस एक पदार्थका आकार आया ना । उस ही एक पदार्थसे उन अनेक पुरुषोंके अनेक ज्ञानोंकी उत्पत्ति हुई ना, तो सबके ज्ञानोंमें उस समय भाव एक समान है । अर्थात् उन सबके ज्ञानोंमें उस ही पदार्थका आकार है, उस ही पदार्थका ज्ञान है । तो भावकी प्रत्यासत्ति हो गयी ना उन अनेक प्राणियोंके ज्ञानोंमें । अगर क्या इस प्रत्यासत्तिके कारण अनेक पुरुषोंके ज्ञान क्या परस्पर उपादान उपादेय बन जाते हैं ? नहीं बनते हैं । तो भाव प्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेयकी व्यवस्था मानने पर एक पदार्थसे उत्पन्न हुए अनेक पुरुषोंके ज्ञानोंके साथ अनेकान्त दोष आयगा । इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण अल्पज्ञके ज्ञानको जानने वाले सर्वज्ञके ज्ञानमें उपादान उपादेय भाव न बने परस्पर। इसका निवारण करनेके लिये जो प्रत्यासत्तिकी बात शंकाकारने कही थी वह संगत न बैठ सकी।

क्षणिक पदार्थके साथ अन्वयव्यतिरेकानुविधानका अभाव— और, फिर स्पष्ट बात यह भी है कि क्षणिक पदार्थमें अन्वयव्यतिरेकका अनुविमान भी घटित नहीं हो सकता, क्योंकि जहां पदार्थोंको निरन्वय विनष्ट माना है तो जिस कालमें वह कारण है, जिस कालसे अगले क्षणके कार्यकी उत्पत्ति मानते हो तो देखो ना, कारण का सम्बन्ध तो है पहिले और कार्यका सम्बन्ध है बादमें तो जिस समय समर्थ कारण था उस कालमें तो कार्य हो न रहा था। अब जब समर्थ कारण न रहा इसके बाद कार्य पीछे स्वयमेव हो रहा है, तो अब उस कारणका कुछ कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध रहा कहाँ? शंकाकार कहता है कि अपने स्थानकी तरह, अपने कालमें रहने पर, अपने कालमें समर्थ कारणके रहनेपर कार्य उत्पन्न होता है और अपने कालमें समर्थ कारणके न रहनेपर कार्य उत्पन्न नहीं होता। इतने मात्रसे क्षणिक पदार्थमें कारण कार्यका अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध बन जाता है। शंकाकारका यह कहना है कि यद्यपि कारणका समय है पहिला और कार्यका समय है दूसरा कारणके समयमें कार्य न रहा फिर भी यह तो नियम है कि अपने कालमें समर्थ कारणके रहनेपर कार्य उत्पन्न होता अर्थात् पूर्वक्षणमें कारण रहा तभी उत्तरक्षणमें कार्य भी हुआ। पूर्वक्षणमें कारणके न होनेपर उत्तरक्षणमें कार्य भी नहीं होता। इतने मात्रसे क्षणिक पक्षमें अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध बन जायगा तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर इस तरहका सम्बन्ध तो नित्यमें भी बन जायगा। अपने कालमें अर्थात् अनादि अनन्त कालमें उस समर्थ नित्य कारणके होनेपर कार्यकी अपने समयमें ही उत्पत्ति होनेसे और अनादि अनन्त समर्थ कारणके न होनेपर अपने समयमें भी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होनेसे सिद्ध है कि नित्य पदार्थके साथ भी कार्यका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है। इस कारण अपने कालमें कारणका रहना बताकर भी अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध सिद्ध नहीं कर सकते। यदि कहो कि सर्वकाल नित्य समर्थ कारणके होनेपर अपने ही कालमें होने वाले कार्यके साथ कैसे नित्य कारणका कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध कहा जा सकता है। क्योंकि कारण तो है सदा और कार्य होता है कभी याने अपने समयमें सो कादाचित्क कार्यके साथ नित्य कारणका अन्वयव्यतिरेक नहीं बन सकता। इसका उत्तर यह है कि ऐसे ही क्षणिक कारणके साथ भी कार्यका अन्वयव्यतिरेक नहीं बन सकता, क्योंकि कारण क्षणसे पहिले व पश्चात् अनाद्यनन्त काल याने सर्वदा कारण का अभाव है फिर उन कभाव कालोंमेंसे किसी ही अभाव काल में कार्य हो तो कैसे उस कार्यका अविशिष्ट अभाव वाले कारणके साथ अन्वयव्यतिरेक कहा जा सकता है। यों क्षणिक कारणमें कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान बताकर उपादानका स्वरूप सिद्ध करना असंगत बात है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्य पदार्थमें एकत्वके विरोधकी शङ्का और समाधान—क्षणिकवादी शंकाकार कहता है कि यदि पदार्थ नित्य है तो वह प्रतिसमय भिन्न-भिन्न कार्योंको करता हुआ चला जा रहा ना, तो क्रमसे अलग-अलग समयमें उस नित्य पदार्थमें अनेक स्वभाव सिद्ध हो गए। किसी भी कार्यको जिस स्वभावने किया उस स्वभावसे भिन्न-भिन्न कार्यको करनेके लिये दूसरा स्वभाव चाहिये। तो जब नित्य पदार्थमें अनन्त काल तक अनन्त कार्य होते हैं तो इसके मायने यह है कि नित्य पदार्थमें अनेक स्वभाव आ गए और भला जिसमें अनेक स्वभाव पड़े हुए हैं वे एक कैसे हो सकते हैं, और जब एक न रहेंगे तो नित्य कैसे रहेंगे ? नित्य तो वही हो सकेगा जो सदा काल एक होगा। तो यों पदार्थ कोई सिद्ध नहीं होता। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह तो हम क्षणिक कारण माननेमें भी पूछ सकते हैं। जो एक क्षणको पदार्थ रहता है वह आपने माना है एक पदार्थ। मगर उसमें भी तो अनेक स्वभाव पड़े हुए हैं। एक समयके पदार्थमें कारणमें भी तो अनेक प्रकारके स्वभाव पड़े हैं क्योंकि उस ही एक कारणसे उस ही एक समयमें विचित्र नाना कार्य हो बैठते हैं। जैसे कि नाना जगह नाना प्रदेश पड़े हुए हैं तो उनमें हम अनेक स्वभाव मानेंगे कि नहीं ? हाँ, क्योंकि एकसे भिन्न दूसरेका स्वभाव है तो इसी प्रकार एक कारणसे भी जब अनेक कार्य हो रहे हैं तो उसमें अनेक स्वभाव मान लिये जायेंगे। और जब अनेक स्वभाव मान लिए गए तो वह कारण भी एक कैसे रह सकेगा ? क्षणिक कारण भी आपका कोई एक न रह सकेगा। कारण कि जितने कार्य उस कारणसे हो रहे हैं, जैसे कि दीपक जला तो दीपक क्षणिक कारणसे कई कार्य हो बैठे, बत्तीका जलना, तेलका जलना, चीजों का उजेलेमें आना, चोरोंको बुरा लगना, साहूकारों को अच्छा लगना। उस एक दीपकसे कितने काम हो रहे हैं। इतने काम जब होरहे है तो कारणमें अनेक शक्तियां कैसे न हुई। यों आपके क्षणिक कारणमें भी अनेक स्वभाव सिद्ध हो जाते हैं। जैसे कि एक फलके बारेमें हमको नाना ज्ञान हो रहे हैं, इसमें ऐसा रूप है, ऐसा रस है, ऐसा स्पर्श है, ऐसा गंध है। तो जब रूपज्ञान, रसज्ञान आदिक अनेक ज्ञान होरहे हैं एक पदार्थके बारेमें तो उससे सिद्ध है कि उस पदार्थमें उतने स्वभाव पड़े हुए हैं। रूप ज्ञान हो रहा है उस ही एक फलमें तो इसके मायने है कि उसमें रूप स्वभाव है, रूप शक्ति है, रूपगुण है। तब तो रूपज्ञानकी उत्पत्ति हो रही है। रसज्ञान उत्पन्न हुआ उससे सिद्ध है कि इन पदार्थोंमें रसका भी स्वभाव पड़ा है। तो जैसे अनेक ज्ञान एक फलके बारेमें हो रहे हैं तो उससे सिद्ध है कि उस फलमें अनेक स्वभाव पड़े हुए हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श जितने भी ज्ञान होते हैं उनकी शक्तियां और स्वभाव उस फलमें हैं। इसी प्रकार एक क्षण ठहरने वाले एक पदार्थसे जैसा प्रदीपक्षण है उससे अनेक कार्य देखे जा रहे हैं तो वे सब कार्य शक्तियोंके भेदके कारणसे हैं। वे सब कार्य यह सिद्ध करते हैं कि उस प्रदीपमें उतनी प्रकारके स्वभाव पड़े हुए हैं। यदि एक दीपकसे बत्ती दाह, तेलशोख, स्वपरप्रकाश आदिक नाना कार्योंके होनेपर भी दीपकमें यदि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्ति एक ही मानोगे तो किसी फलके बारेमें रूपज्ञान, रसज्ञान आदि नाना कार्य होने पर भी उस फलमें भी एक शक्ति मान लो। फिर तो रूप, रस, गंध, स्पर्श सबका अभाव हो जायगा। इससे नित्य पदार्थोंमें अनेक कार्य करनेके प्रसङ्गमें अनेक स्वभाव बताकर उसकी एकताका खण्डन करना उचित नहीं है। तथ्य तो यह है कि पदार्थ न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है। कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य स्वरूप पदार्थमें कार्यकारिता बनती है।

शक्तिमानसे शक्तियोंको भिन्न या अभिन्न विकल्पित करके शक्तियों का असत्त्व सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकार कहता है कि आप जो अनेक कार्य बता- बताकर पदार्थमें अनेक शक्तियां सिद्ध कर रहे हो तो यह बतलावो कि शक्तिमान पदार्थसे वे शक्तियां भिन्न हैं या अभिन्न हैं। पहिले शक्तियोंको ही तो सिद्ध करलो फिर उसके बारेमें विशेष बात कहना। तो पदार्थ जिसे शक्तिमान कहा गया है उस पदार्थसे वे शक्तियां भिन्न हैं या अभिन्न ? यदि कहोगे कि भिन्न है तो फिर ये शक्तियां इस पदार्थकी हैं, यह सम्बन्ध भी कैसे बन सकता है ? जो चीज अत्यन्त जुदी है उससे अन्यका सम्बन्ध जोड़ना तो ठीक नहीं है। अगर भिन्न चीजोंसे भी सम्बन्ध जोड़ दिया जाय तो हम कहदेंगे कि हिमालयका विंध्याचल है या विंध्याचलका हिमालय है क्योंकि अब तो भिन्न भिन्न चीजोंसे भी तुम सम्बन्ध मान रहे। शक्तिमानसे शक्ति है भिन्न और फिर भी कहते हो कि ये शक्तियां इस शक्तिमान पदार्थकी है तो सम्बन्ध भिन्नमें नहीं बनता। यदि सम्बन्धकी सिद्धिके लिए यह बात कहेंगे कि शक्तिके द्वारा शक्तिमानका उपकार हुआ है। या शक्तिमानके द्वारा शक्तिका उपकार हुआ है इस कारणसे उन दोनोंका सम्बन्ध बना तो उपकारमें भी बताओ कि वह जो उपकार बना है वह इन दोनोंसे भिन्न है या अभिन्न ? तो यों कहीं भी आप टिक न सकेंगे। यदि कहो कि शक्तिमानसे शक्तियां अभिन्न हैं, एक हैं। तो जब अभिन्न हैं। एक रूप हैं तो या तो शक्तिकी सत्ता रहे यों शक्तिमानकी सत्ता रहे। जब वे दोनों एक हैं तो दो की सत्ता कैसे ? इस कारण शक्तियोंका वास्तवमें सत्त्व है ही नहीं। केवल कल्पना करके उनमें शक्तियोंका अंदाजा बनाया करते हो ?

शक्तिमानसे शक्तिकी सर्वथा भिन्नता व अभिन्नताका प्रश्न करके शक्तिको अयथार्थ बतानेपर प्रतीतिसिद्ध पदार्थसे अलग रूपरसादिकोंकी भी अयथार्थताकी सिद्धि—उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह भिन्न-अभिन्न विकल्प उठाकर शक्तिमान पदार्थमें शक्तियोंका असत्त्व सिद्ध करोगे तो हम रूप रस आदिकका भी तुम्हारे क्षणिकवादमें असत्त्व बतादेंगे। वह किस तरह कि आप यह बतलावो कि प्रतीतिसिद्ध पदार्थसे तुम्हारे रूप, रस आदिक भिन्न हैं कि अभिन्न हैं ? जो पदार्थ लोगोंको प्रत्यक्ष हो रहे। जैसे एक आम लिया तो बतलावो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उस आम पदार्थसे रूप, रस आदिक भिन्न हैं या अभिन्न हैं ? यदि कहोगे कि रूप, रस आदिक भिन्न है तो फिर भिन्न रूप रस आदिक भिन्न रूप रसोंका आमके साथ सम्बन्ध कैसे जोड़ा जायगा कि यह रूप आमका है। जब कि वह रूप आमसे अत्यन्त जुदा है तो जैसे वह रूपादिक अनेक पदार्थोंसे जुदा है ऐसे ही आमसे जुदा है वह रूप, फिर यह कहना कि यह रूप आमका है। यह सम्बन्ध कैसे बन सकता है ? यदि कहोगे कि आमने रूपका उपकार किया या रूपने आमका उपकार किया तो इस तरह सम्बन्ध बना देंगे कि यह रूप आमका है तो यह बतलावो कि वह उपकार उस रूप अथवा आमसे भिन्न है या अभिन्न ? इस तरह तो आप कहीं भी न टिक सकेंगे। यदि कहा कि रूप प्रतीतिसिद्ध पदार्थसे अभिन्न है तो या तो रूप ही रहा या पदार्थ ही रहा फिर उसमें रूप क्या रहा ? इस तरह रूप, रस आदिकका वास्तवमें सत्व नहीं है। केवल कल्पना करके उसका अंदाजा बनाया करते हो कि पदार्थमें रूप और रस है। इस तरह रूप, रसका भी अभाव बन बैठेगा। तो यों शक्तिमानसे शक्तियाँ भिन्न है, अभिन्न है। विकल्प उठाकर धोदापट्टी करके शक्तियोंका अभाव सिद्ध करना युक्त नही है।

प्रत्यक्षबुद्धिमें प्रतिभात न होकर अनुमानबुद्धिमें प्रतिभात होनेके कारण शक्तियोंकी अयथार्थता माननेपर क्षणिकत्व, स्वर्गप्रापण शक्ति आदिक की भी अयथार्थताका प्रसंग—अब शंकाकार कहता है कि दिखने वाले पदार्थोंमें, इन फलोंमें प्रत्यक्ष बुद्धिसे ही यह प्रतिभास हो रहा है कि रूप है। रस है, तो यह वास्तविक सत् है। जब हमें इन्द्रियसे प्रत्यक्षसे रूप, रस आदिकका ज्ञान हो रहा है तो यह वास्तविक सत् है। लेकिन पदार्थोंकी शक्तियोंका तो प्रत्यक्षसे ज्ञान नही हो रहा। रूप रस की भाँति शक्तियाँ भी किसीको नजर आ रही हैं क्या ? शक्तियोंका तो अनुमान ज्ञानमें प्रतिभास किया जा रहा है अर्थात् अनुमान प्रमाणसे शक्तियोंका अंदाज किया जाता है। इससे शक्तियाँ तो वास्तवमें है नही और रूप, रस, आदिक पदार्थमें वास्तविक है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि प्रत्यक्ष बुद्धिमें प्रतिभास न होनेके कारण और केवल अनुमानसे ही शक्तियाँ अवगत होनेके कारण यदि शक्तियोंका अभाव मानते हो तो पदार्थमें क्षणिक धर्म अथवा स्वर्गको दिलानेकी ताकत आदिक चीजें भी तो इसकी भी असत्त्व हो जायगा। इस कारण जैसे कि क्षणिक पदार्थमें एक साथ अनेक कार्य कारिता होनेपर भी अर्थात् एक पदार्थ एक ही समयमें जब अनेक कार्य कर डालता है तिसपर भी उसमें एकत्वका विरोध नही मानते, अर्थात् कोई एक क्षणिक कारण अनेक कार्योंको भी वह एक ही है तो इसी प्रकार नित्य पदार्थ भी क्रमसे अनेक कार्यों को करके भी एक ही हैं। इसमें किसी भी प्रकारका विघ्न नही आता। इससे नित्य पदार्थकी बराबर सिद्ध है। उसका खण्डन नही किया जा सकता। और, सर्वथा क्षणिकता किसी पदार्थमें विदित नही होती सो क्षणिक एकान्तका भी समर्थन नही किया जा सकता।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थक्रियालक्षण सत्त्वकी व्याख्याके प्रश्नमें तीन विकल्प—अब शङ्काकारसे यह पूछा जा रहा है कि पदार्थको क्षणिक सिद्ध करनेके लिये जो तुमने अनुमान बनाया था कि सब पदार्थ क्षणिक हैं, सत्त्व होनेसे तो उस सत्त्वका अर्थ क्या है ? ऐसा पूछा जानेपर शंकाकारने कहा था कि सत्त्वका अर्थ है अर्थक्रिया, जिसमें अर्थक्रिया हो। काम हो उसे सत्त्व कहते हैं। चूंकि जब पदार्थ है तो उसका कोई उपयोग भी होता है, कार्य भी होता है। तो अर्थक्रिया सत्त्वका लक्षण है तो इस सम्बंध में अब यह पूछा जाता है कि अर्थक्रियालक्षण सत्त्व है यहाँ उस लक्षणपनेका भाव क्या है ? अर्थक्रिया है जिसका लक्षण उसे सत्त्व कहते हैं। ऐसा कहनेमें लक्षण शब्द का अर्थ क्या है ? क्या यह मतलब है कि अर्थ क्रिया है कारण जिसका ऐसा सत्त्व है अर्थात् सत्त्वका कारण अर्थक्रिया है। अथवा कारणात्मक है वह सत्त्व, क्योंकि लक्षण शब्दका अर्थ कारण भी बनता है। किस तरह ? उसकी व्युत्पत्ति है लक्ष्यते, जन्यते कार्यं अनेन इति लक्षण कारणं इति अर्थः। जिसके द्वारा कार्य उत्पन्न हो उसको लक्षण कहते हैं। तब लक्षण शब्दका अर्थ कारण हो गया ना। तो क्या सत्त्व अर्थ क्रिया लक्षण है. इसका भाव यह है कि सत्त्वका अर्थ क्रिया कारण वाला है अथवा इस लक्षण शब्दसे यह अर्थ लिया कि सत्त्व अर्थ क्रियास्वरूप वाला है। याने सत्त्वका स्वरूप ही अर्थक्रिया है। अथवा यह अर्थ लगाते कि ज्ञापक अर्थ है अर्थात् अर्थक्रिया सत्त्वका ज्ञापक है। जहां अर्थक्रिया पायी जाय वहाँ सत्त्वका ज्ञान होता है। क्या ज्ञापक अर्थ वाला होना इतना ही मात्र अर्थक्रिया लक्षणका अर्थ है ? इस प्रकार अर्थक्रिया लक्षण इस शब्दके अर्थमें तीन विकल्प किए गए क्या कारणात्मक अर्थ है या स्वरूपात्मक अर्थ है या व्यापकरूप अर्थ है ?

अर्थक्रियाकारणक सत्त्वसे क्षणिकत्वकी असिद्धि—उक्त तीन विकल्पोंमें से यदि कहोगे कि कारणार्थक है अर्थात् अर्थक्रिया कारण वाला सत्त्व हुआ करता है। सत्व मायने मौजूदगी। तो वहाँ यह पूछा जा सकता है कि अब दो चीजें हो गयीं—हमारे सामने अर्थक्रिया और सत्व, तो यहाँ आपका मतलब क्या है, क्या अर्थ क्रियासे सत्वकी उत्पत्ति होती है या सत्वसे अर्थक्रियाकी उत्पत्ति होती है ? जब कारणरूप अर्थक्रिया माना तो कारण कार्यकी बात बतायी जायगी ना, तो इन दोनोंमें क्या बात है—क्या उस सत्वसे अर्थक्रिया उत्पन्न होती या अर्थक्रियासे सत्व उत्पन्न होता ? यदि अर्थक्रियासे सत्वकी उत्पत्ति मानते हो तो इसका भाव यह हुआ कि सत्वसे पहिले भी अर्थक्रिया थी। जैसे अग्निसे धूमकी उत्पत्ति होती है तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि धूमसे पहिले भी अग्नि थी। तो अर्थक्रियासे सत्वकी उत्पत्ति माननेपर सत्वसे पहिले अर्थक्रिया माननी पड़ेगी। सो यह बतलावो कि पदार्थका तो सत्व था ही नहीं, और अर्थक्रिया तुम्हारी बन बैठी। पदार्थके सत्वके बिना अर्थक्रिया जब होली तो इसका अर्थ वह होगा कि अर्थक्रिया निराधार है और निर्हेतुक है। क्योंकि अर्थक्रियासे माना सत्वकी उत्पत्ति, जिसका भाव यह हुआ कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सत्त्वसे पहिले अर्थक्रिया थी, तो सत्वके बिना अर्थक्रिया हो गयी तो वह अहेतुक ही तो कहलायी, उसका कारण कुछ नही है। और निराधार कहलायी। पदार्थ तो कुछ है ही नही और अर्थक्रिया चलती रहे, तो भला ऐसा कोई मान भी सकता है क्या ? चीज कुछ नही है और काम चल रहा है ऐसा कोई नहीं मान सकता। यदि कहो कि सत्वको अर्थक्रिया उत्पन्न होती है याने सत्व तो है कारण और अर्थ क्रिया है कार्य. तो सत्वसे अर्थ क्रियाकी उत्पत्ति माननेपर यह अर्थ बन गया ना कि अर्थक्रियासे पहिले भी सत्व था। सत्वसे उत्पन्न हुआ अर्थकार्य, तो इसका भाव यह निकला कि अर्थक्रियाके बिना भी अर्थक्रियासे पहिले सत्व था। तो यह बात निश्चत हो गई कि पदार्थका सत्व अपने आप है। अर्थक्रियाके कारण नही है, क्योंकि क्रियाकारिताके बिना भी पदार्थका सत्व माना जा रहा है। तो इस तरह अर्थक्रियालक्षण सत्व है. इसका अर्थ यह नही कह सकते कि अर्थक्रिया कारणक सत्व होता है। जब सत्वका अर्थक्रिया कारणक रूप न बना तो उस सत्वसे पदार्थोंकी क्षणिकताकी सिद्धि करना भी नही बन सकता है। यों पदार्थ सर्वतः क्षणिक सिद्ध नहीं होता।

स्वरूपार्थक अर्थक्रिया लक्षण सत्त्वकी असिद्धि – क्षणिकवादी पदार्थको क्षणिक सिद्ध करनेके लिए एक अनुमान देते हैं कि समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत्त्व होने से, अर्थात् सब पदार्थ हैं तो है होनेके कारण वे सब क्षणिक हैं। तो यहाँ उनसे पूछा जा रहा है कि सत्त्वका अर्थ क्या है। तो उत्तर दिया था कि अर्थक्रियालक्षण सत्व होता है। तो अर्थक्रियालक्षणका अर्थ पूछा जा रहा है शंकाकारसे कि अर्थक्रियालक्षण का क्या यह अर्थ है कि सत्व अर्थक्रिया कारण है अथवा अर्थक्रिया स्वरूप सत्त्व है या अर्थक्रियाका जताने वाला सत्त्व है ? इनमेंसे पहिले विकल्पका निराकरण किया, अब द्वितीय विकल्पके सम्बन्धमें कह रहे है कि यदि सत्वका यह अर्थ मानोगे कि अर्थक्रिया है स्वरूप जिसका ऐसा सत्त्व होता है याने मौजूदगीका स्वरूप हो यह है कि अर्थक्रिया हो। अर्थक्रिया कहते हैं कुछ न कुछ परिणमन करनेको। कोई काम बने, कोई परिणति बनना पदार्थमें उसको अर्थक्रिया कहते हैं। तो सत्व अर्थक्रिया स्वरूप है ऐसा कहनेपर रूप कार्यका कारण न रहा। क्षणिकवादियोंने यह माना है कि पूर्ववर्ती पदार्थ तो कारण होता है और उत्तरवर्ती पदार्थ कार्य होता है। जैसे जैनी लोग कहते हैं कि पूर्वपर्याय सहित द्रव्य उपादान कारण है और उत्तर पर्याय उपादेय कार्य हैं। जैसे मृत्पिण्डसे घड़ा बनता। तो कारण तो मृत्पिण्ड पर्याय संयुक्त द्रव्य है और कार्य घड़ा है तो इसके बजाय क्षणिकवादी यह कहता है कि मृत्पिण्ड बिल्कुल जुदा पदार्थ है। घड़ा बिल्कुल जुदा पदार्थ है। पर्यायें नही है कि कोई एक द्रव्य हो, फिर उसकी ये पर्यायें हों। यदि पर्यायें मान ली तो नित्य द्रव्य मानना पड़ेगा। सो क्षणिकवादमें पर्यायें नही किन्तु वे पूरे पूरे पदार्थ हैं तो उनमें पूर्व क्षणमें रहने वाले पदार्थ उपादान कारण कहे जाते हैं और उत्तरक्षणवर्ती पदार्थ कार्य कहे

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाते हैं। तो यहां जब सत्वका लक्षण यह मान लिया कि अर्थक्रिया जिसका स्वरूप हो सो सत्व है। तो जिस कालमें पदार्थ मौजूद है उस कालमें तो अर्थक्रिया होती नही। पदार्थ जब उत्पन्न हो ले तब तो उसके बाद उसका कार्य किया जायगा। जैसे घड़ा बन जाय, पक जाय, उसके बाद फिर उससे पानी भरा जायगा तो पानी भरा जाना हैं घड़ेकी अर्थक्रिया। घड़ा किसलिये बना ? कोई काममें तो लाया जाय। तो पानी भरनेमें काम आता है। तो जब घड़ा बने उसके बाद ही तो अर्थ क्रिया होगी, उसका उपयोग होगा। अब तुमने सत्वका स्वरूप माना है अर्थक्रिया तो स्वरूपसे पहिले पदार्थ तो न हो जायगा। स्वरूप पीछे पैदा हो और पदार्थ पहिलेसे हो ऐसा तो नही होता। पदार्थके साथ ही स्वरूप जुड़ा रहता है अब वहां यह अर्थक्रियारूप स्वरूप तो बादमें होगा और वही माना है सत्वका स्वरूप। तो इसके मायने है यह कि अर्थक्रियासे पहिले कारणका अभाव है क्योंकि अर्थक्रियाके समयमें अर्थक्रियाका कारण नही रहता जब पदार्थ क्षणिक है, घड़ा नष्ट हो गया। अब पानी भर रहे हैं तो यह हो रही अर्थक्रिया। तो जब अर्थक्रिया कर रहे तब तब तो घड़ेका नाश मान लिया। सो बात इतनी है कि पदार्थ तो बनेगा, पहिले, काम होगा उसमें बादमें। तो कामके समयमें, पदार्थ नही है और पदार्थके समयमें काम नही हैं। अर्थक्रिया नही है। कहीं अन्यकालमें रहने वाले पदार्थका अन्यकालमें रहने वाले पदार्थका अन्यकालमें रहने वाली अर्थक्रिया स्वरूप बन जाय यह बात तो नही बन सकती ? यदि अन्य समयमें रहने वाले पदार्थका अन्य समयमें रहने वाला कुछ स्वरूप बन जाय तो किसीका कोई भी कारण बन जायगा। क्रिया बन जायगी। इस कारण स्वरूपार्थक अर्थक्रियालक्षण सत्व है यह बात सिद्ध नही होती।

ज्ञापनार्थक अर्थक्रियालक्षण सत्त्वकी असिद्धि—अब शंकाकार तीसरा विकल्प रख रहा है कि स्वरूपार्थक अर्थक्रिया सिद्ध न हो सकी न सही, किन्तु अर्थ-क्रिया लक्षणको हम अर्थ यह मानेंगे कि जो कारणकी जानकारी करादे उसे कहते हैं अर्थक्रिया। जैसे जब पानी भरते हैं तो जान लेते कि यह घड़ा है क्योंकि पानी भरा गया। तो काममें आनेसे कारणका ज्ञान होता है तो अर्थक्रियाका ज्ञापन प्रयोजन है अर्थात् वह वस्तुका ज्ञान करादे कि यह है कारणभूत पदार्थ। उत्तरमें कहते हैं कि यह विकल्प भी अयुक्त है, क्योंकि अर्थक्रियाके समयमें पदार्थका असत्व है। जब पदार्थ हुआ उस समयमें तो पदार्थका काम नही लिया जाता। जब पदार्थ बन चुका उसके बाद वह काम करेगा तो काम करनेका समय दूसरा हुआ और पदार्थके मौजूद रहनेका समय दूसरा हुआ। पहले तो पदार्थ मौजूद रहा बादमें उसका काम रहा तो देखो ! कामके समयमें पदार्थ तो न रहा कुछ। तो जब पदार्थका असत्व है, जिस समय अर्थक्रिया हो रही उस समयमें पदार्थ हैं नही तो उसकी सत्ताको कैसे बनादे अर्थ-क्रिया। जो चीज है नहीं उसकी यदि जानकारी बनने लगी तो आकाशके फूलकी भी जानकारी बन जाय ! गधेके सींग आदिक जो असत् हैं उनकी भी जानकारी बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय। इससे अर्थक्रिया लक्षणका अर्थज्ञापकार्थ भी नहीं कर सकते। क्षणिकवादी बौद्ध शंकाकार कहता है कि अर्थक्रियाके होनेके पहिले कारण था, यह व्यवस्था बनती है अर्थक्रियासे। जैसे कि पानी भरा, नहाया तो यह हुई घड़ेकी अर्थक्रिया। अब अर्थक्रिया करनेसे हमें यह ज्ञान हो गया कि इससे पहिले कारणभूत घट था, क्योंकि घट तो क्षणिक है ना, इस समय घट मान लोगे तो नित्य सिद्ध हो जायगा। तो अर्थ-क्रियासे पहिले कारण था यह व्यवस्था बन जायगी। उत्तर देते हैं कि ऐसी भी व्यवस्था नही बना सकते क्योंकि यदि स्वरूपसे पहिले कारण ज्ञात हो, पदार्थ ज्ञात हो और उसके बाद हो अर्थक्रिया तब तो जाने हुए सम्बन्ध वाले कारणके साथ अर्थ-क्रिया पायी जाय और वह अर्थक्रिया पहिले हेतुकी सत्ताको व्यवस्थित करे, पर अर्थक्रियाके बिना कारणभूत पदार्थ अर्थक्रियाका कारणरूप पदार्थ स्वरूपसे कभी भी उपलब्ध नही होता। यदि कहो कि दूसरी अर्थक्रिया इस अर्थक्रियाके सत्वको बता देगी तो इसमें अनवस्था दोष आता है जिस सत्वका स्वरूप नही जाना गया ऐसी अर्थक्रिया हेतुके सत्वकी व्यवस्था नही कर सकती, क्योंकि यदि अज्ञानस्वरूप वाली कोई बात किसीके सत्वकी व्यवस्था करदे तो घोड़ाके सींग आदिक पदार्थ सत्वकी भी व्यवस्था बनादे। ऐसा भी नही कह सकते कि हेतुसे उत्पन्न होनेके कारण अर्थक्रिया सत् होती है अन्य अर्थक्रियाके उदयसे नही। यह क्यों युक्त नही कि ऐसा कहनेमें इतरेतराश्रय दोष होता है कि हेतुके सत्वसे तो अर्थक्रियाका सत्व बनेगा और अर्थ-क्रियाके सत्वसे हेतुमें सत्व बनेगा, इस कारण अर्थक्रिया लक्षण सत्वका अर्थज्ञापनार्थ भी नही बन सकता।

क्षणिकत्वके अर्थोंकी असिद्धि होनेसे सत्वहेतु द्वारा क्षणिकत्वकी असिद्धि—शंकाकार लोग अब यह अनुमान देते हैं कि सारे पदार्थ क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वे सत् होता है वह क्षणभरमें नष्ट हो जाता है और सत् मायने उसका है कि जिसमें अर्थक्रिया पायी जाय, जिसका परिणाम पाया जाय। तो अर्थक्रिया लक्षणरूप सत्व सिद्ध न हो सका, मगर हम थोड़ी देरको काम लें कि रहो अर्थक्रियारूप सत्त्व हेतु देकर तुम पदार्थमें जो क्षणिकत्व सिद्ध कर रहे तो उस क्षणिकपनेका अर्थ क्या? क्या यह अर्थ है कि एक क्षण रहना। पदार्थ एक क्षण रहता। पदार्थ एक क्षण रहता है। क्या इतना ही मात्र क्षणिकका अर्थ है या क्षणिकका यह अर्थ लगाओगे कि एक क्षणके बाद नहीं रहना? यहाँ क्षणिक शब्द का अर्थ पूछा जा रहा है। जो क्षणिकवादी क्षणिक मानते हैं पदार्थको तो उस क्षणिकका मतलब क्या? क्षणमें रहना। यह अर्थ है या उस क्षणके बाद नहीं रहता यह अर्थ है? यदि कहो कि क्षणमें रहना यह अर्थ है तो उत्तर देते हैं कि इस अर्थ में तो कोई विवाद नहीं। प्रत्येक बात क्षणमें रहती है। अब दूसरा क्षण आया उसमें भी रहेगा नित्य भी अर्थ हो तो वह भी क्षण क्षणमें रहता है। यदि क्षण क्षणमें न रहे तो सदा रहते भी नही बनता। जैसे कोई बालक ८ वर्ष तक रहा तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्येक मिनट रहा ना। अगर प्रत्येक मिनटमें न रहे तो वर्ष भर रह न सकता था। प्रत्येक मिनटमें रहता आया तब तो वह ८ वर्ष रहा, इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ एक एक क्षणमें रहता है, सो ठीक ही है। क्षणान्तरमें रहता है। दूसरे समयमें पदार्थ रहेगा तो उसका कारण है यह कि पहिले क्षणमें रहे। तो क्षणमें रहे सो यह संगत ही बात है। इसमें कोई विरोध नही। हाँ यदि यह अर्थ बने क्षणिकका कि एक क्षण के बाद फिर न रहा। एक क्षणके ऊपर पदार्थका अभाव होना सो क्षणिक है।

एक क्षणान्तर के बाद भी क्षणिकत्वके अर्थकी असिद्धि—यदि यह मानते हो तो यह बात बन नही सकती, क्योंकि अभावके साथ सत्वका सम्बन्ध नही है। कहा है ना कि सब पदार्थ क्षणिक हैं सत् होनेसे तो हेतु तो दिया गया है सत्व और साध्य कह रहे हो तुम कि एक क्षणके बाद नही रहता तो एक क्षणके बाद अभाव होना यह तो है तुम्हारा साध्य। यह तो करना चाहते हो तुम सिद्ध और हेतु दे रहे हो सत्व तो अभावका सत्व हेतुके साथ सम्बन्ध नही हुआ करता। इसलिए क्षणिकत्वका अर्थ यह कहना युक्त नही है कि एक क्षणके बाद नही रहता। एक क्षण के बाद अभाव होनेका नाम क्षणिक कहकर फिर सत्व हेतुसे यदि क्षणिकको सिद्ध करोगे तो उसकी व्याप्ति नहीं बनती, क्योंकि सत्व हेतुकी व्याप्ति क्षणिकत्वके साथ नहीं है और जिसका अविनाभाव, प्रतिबन्ध न जान लिया जाय वह अनुमेय भी नही होता, नही तो गधेके सींग, खरगोशके सींग ये सब भी सिद्ध कर डालो, व्याप्ति बिना अगर किसी भी पदार्थको कुछ भी सिद्ध किया जाय तब तो कुछ भी व्यवस्था नही बनती। इस कारण सत्व हेतु देकर पदार्थमें क्षणिकत्व सिद्ध करना असिद्ध है। सत्व हेतुसे पदार्थोंकी क्षणिकताका ज्ञान नही होता।

क्षणिकवादमें कृतकत्वका स्वरूप सिद्ध न होनेसे कृतकत्व हेतुसे क्षणिकत्वकी असिद्धता—शंकाकार अब अपनी अंतिम बात एक रख रहा है कि सत्व होनेसे ये पदार्थ क्षणिक सिद्ध न हो सके तो न सही, मगर कृतकत्व हेतुसे तो पदार्थकी क्षणिकता सिद्ध कर लेंगे? ये सारे पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि कृतक हैं, किए गए हैं। जो जो चीज की गई हो वह क्षणिक होती है, विनष्ट हो जाती है। समाधान देते हैं—कृतकत्वसे भी क्षणिकता सिद्ध नही होती क्योंकि क्षणिक पदार्थमें कार्य कारण भाव सिद्ध नही होता। अच्छा तुम कहते हो कि पदार्थ क्षणिक है किया जानेसे तो क्षणिक पदार्थमें किये जानेकी बात सिद्ध नही होती, क्योंकि पदार्थ क्षणिक है। जिस समय उत्पन्न हो उस समय वह कुछ भी समर्थ है नही। उस समय तो उसे यह पड़ी है कि मेरा स्वरूप बन जाय पूरा। अब स्वरूप बन चुका। अब इसके बादमें कार्यका नम्बर आनेको था, इतनेमें ही वे जनाब नष्ट हो गए। तो अब कार्य कैसे सिद्ध हो? तो कृतकका स्वरूप सिद्ध न होनेसे कृतकत्व हेतु क्षणिक पदार्थके परिज्ञान करा देनेका कारण नही हो सकता। इस तरह जब पदार्थकी क्षणिकता सिद्ध नही हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकती तब बिल्कुल स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि विश्वास जिसके लिए किए हुए हैं और प्रतीति जिस प्रकारकी हो रही है कि ये सब पदार्थ स्थिर स्थूल और साधारण स्वभाव वाले हैं वह युक्त ही है स्थिरका तात्पर्य हुआ कि अनेक समयतक टिकने वाले, और स्थूलका तात्पर्य हुआ कि परस्परका सम्बन्ध बनाकर पिण्डरूप होने वाला। और साधारण स्वभावका तात्पर्य निकला कि सर्व पदार्थोंमें उस उस प्रकारके सदृश धर्म पाये जाते हैं इससे एक दूसरेके सदृश रहने वाला ऐसा मानना चाहिए। ऐसा माननेमें सामान्य आ गया। सामान्यका खण्डन क्षणिकवादमें किया जा रहा था वह खण्डित नहीं हो सकता। स्थिर स्थूल साधारण स्वभाव भावकी प्रतीति सही है सारे पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं और ऐसा ही पदार्थ ज्ञानके विषयभूत हुआ करता है।

स्थिर स्थूल साधारणस्वभाव भावकी सिद्धिमें सम्बन्धका प्रतिपादन

शंकाकार कहता है कि परमाणुवोंमें परस्पर सम्बन्ध ही नहीं हो सकता। जैसे कि लोहेकी छड़ोंमें परस्पर एकत्व अथवा सम्बन्ध नहीं हो सकता इस कारण जो कुछ लोगोंको इन पदार्थोंमें स्थूल आदिककी प्रतीत हो रही है वह सब भ्रान्त है। जो पदार्थ मोटे जच रहे हैं तो भ्रान्त है क्योंकि परमाणु परमाणु सब न्यारे-न्यारे हैं और वे कभी एक पिण्ड नहीं हो सकते। इसी कारण फिर जो स्थिरताका ज्ञान हो रहा है कि यह स्थिर है, स्थिरता प्रतीति भी भ्रान्त है। जब अणु-अणु न्यारे न्यारे है और पिण्ड बन नहीं सकते तो लोग पिण्डमें ही तो स्थिरताका भ्रम किए हुए हैं। साथ ही तीसरी बात जो कही है कि यह साधारणस्वभाव है और एक दूसरेके समान है, जैसे गाय गाय सब परस्पर समान हैं। जब परमाणुवोंका सम्बन्ध ही नहीं बनता तो सदृशताका ज्ञान भी भ्रान्त है तो सदृश आदिककी प्रतीति भ्रान्त होनेके कारण फिर कैसे सामान्य स्वभाव पदार्थ सिद्ध किया जा सकता है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है, कारण कि सम्बन्धकी सिद्धि तो प्रत्यक्षसे ही हो रही है। जो पदार्थ प्रतिभासमें आ रहे हैं वे बराबर सम्बद्ध आ रहे ना, चूंकि तखत भींट आदिक जो जो कुछ भी दृष्टिगत हो रहे हैं वे सब पिण्डरूपसे सम्बद्ध होते हुए नजर आ रहे हैं। देखो-कपड़े हैं तो तनु सम्बद्ध नजर आ रहे हैं, रूप जच रहा, रस जच रहा, गंध है, स्पर्श है और इन काठ चौकी आदिकमें घनीभूत होकर यह परमाणुवोंका पिण्ड नजर आ रहा है। यदि इनमें सम्बन्ध न होता तो फिर इनका प्रतिभास बिखरा हुआ होना चाहिए था। पर बिखरा हुआ कौन जान रहा है। सब सम्बद्ध ही दिख रहे हैं। कोई अन्य इस पिण्डरूपके प्रतिभास होनेके कारण हो सो और कोई कारण नहीं। ये सम्बद्ध हैं। घने मिले हुए हैं इसीलिए ये ऐसे सम्बद्ध नजर आ रहे हैं। तो प्रत्यक्षसे ही जब सम्बन्धकी प्रतीति हो रही तब यह कहना असिद्ध है साथ ही यह भी तो विचारिये कि परमाणुवोंका परस्पर सम्बन्ध नहीं है, न्यारे न्यारे हैं ये ऐसी प्रतीति तो नहीं हो रही, उसकी तुम कल्पना कर रहे और जिस की प्रतीति हो रही कि ये सब पिण्डरूप हैं, सम्बद्ध हैं, उसे तुम भ्रान्त बता रहे। जो

Version 1

प्रत्यक्षसिद्ध बात है उसका अपलाप करना ठीक नहीं है।

अणुओंका परस्पर सम्बन्ध न माननेपर अर्थक्रियाके अभावका प्रसंग— और, भी देखिये—यदि परमाणु ये मिलकर एक पिण्डमें न होते तो इनमें अर्थक्रिया नहीं हो सकती। घड़ेसे पानी भरते हैं तो यदि उसमें परमाणु बिखड़े हुए हों तो पानी कैसे भरा जायगा? काममें ले रहे हैं और फिर भी कह रहे कि ये सब भ्रान्त हैं ये सब बिखरे हुए हैं। इनका परस्परमें सम्बन्ध नहीं है। प्रत्यक्षसे दृष्टिगत, हो रही है कि इनका सम्बन्ध है परमाणुवोंका अगर परस्परमें सम्बन्ध न हो तो भला कोई घड़ेमें जल रख लेवे। कैसे रखेगा? अथवा कुवेंसे जल खींच लावे, कैसे खिचेगा? अगर सम्बन्ध नहीं मानते तो ये सारे काम नहीं बन सकते। और, भी प्रत्यक्ष देखलो—एक रस्सीका छोड़ पकड़कर खींचा तो रस्सी खिचकर आ जाती है तो सम्बन्ध है तभी तो खिचकर आयी, सम्बन्ध न हो तो कैसे खिचकर आये। बिखरे हुए बहुतसे गेहूंके दाने पड़े हों तो १०-२० दाने उठानेस ढेर तो नहीं सरक आता। तो जहाँ जो बिखरा है वह वहां अत्यन्त सश्लिष्ट है। बांसका डण्डा एक जगह से उठावें तो सारा उठ जाता है। एक जगहसे हिलाया तो सारी जगह हिल जाता है। तो ये काम सब बता रहे हैं कि ये सब मिलकर एक पिण्डरूप हो गए। इससे सिद्ध है कि इनमें अनेक परमाणुवोंका सम्बन्ध न होता तो इनसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती थी। कोई काम नहीं लिया जा सकता था।

अणुओंमें पारतन्त्र्यलक्षण सम्बन्धकी असिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन— शंकाकार कहता है कि तुम इन पदार्थोंमें अणुवोंमें परस्पर सम्बन्ध मान रहे हो तो उस सम्बन्धका अर्थ क्या है? याने परतन्त्रता हो जानेका नाम सम्बन्ध है या एक दूसरेमें प्रवेश कर जानेका नाम संबंध है। यदि कहो कि सम्बन्ध नाम है परतन्त्रताका, एक दूसरेके परतन्त्र हो गए इसका नाम है सम्बन्ध जैसे कि दो रस्सियों को परस्परमें एक दूसरेसे बाँध दिया तो देखिये वे एक दूसरेके परतन्त्र हो गई। क्या ऐसा सम्बन्धका अर्थ है? यदि यह अर्थ मानते हो तो यह बतलावो कि वे दो चीजें जिनमें परतन्त्रता आयी है वे पहिलेसे तैयार अपनी सत्ता रखने वाली है या वे अनिष्पन्न हों पैदा ही न हों इस प्रकारके ऐसे दो पदार्थोंमें, परतन्त्रता रूपकी कल्पना कर रहे हो वे दो पदार्थ अनिष्पन्न तो हैं नहीं। यदि अनिष्पन्नमें परतन्त्रता मानते हो तो जो स्वरूपसे ही असत् हैं, उत्पन्न ही नहीं हुए हैं उन पदार्थोंमें सम्बन्ध माननेपर फिर तो खरगोशके सींग और घोड़ेके सींग इनमें भी सम्बन्ध बना दो, इनमें भी पारतंत्र्य बना लो। तो जो चीज असत् है उनमें सम्बन्ध क्या कहा जा सकता? यहां तुम मानते हो कि प्रत्येक पदार्थ अनिष्पन्न है। तो अनिष्पन्नका अर्थ है, जिसकी सत्ता नहीं, अनिष्पन्नका अर्थ है जो उत्पन्न न हो। तो जो बने नहीं, असत् हैं उसमें सम्बन्ध कैसा? यदि कहो कि हम उन निष्पन्न दोनों

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंमें परतन्त्रतारूप सम्बन्ध मान रहे हैं अर्थात् वे दोनों पदार्थ निष्पन्न हैं, स्वतन्त्र हैं, परिपूर्णरूपसे उत्पन्न हैं तो जो स्वतन्त्र हैं, निष्पन्न हैं उनमें परतन्त्रता हो ही नही सकती। क्या कोई भी सत् किसी दूसरेके आधीन है ? अध्यात्मवादमें तो इसका बहुत बड़े विस्तारसे वर्णन चलता है कि कोई भी सत् किसी दूसरे सत्के आधीन नहो हो सकता। जीव और कर्म इनको घनिष्ठ सम्बन्ध वाला माना है लेकिन प्रत्येक जीवकी परिणति कर्मकी परिणतिमें नही होती। तो जीव कर्मकी परिणतिसे परतन्त्र नही है किन्तु अपने ही विभावसे परतन्त्र हैं। तो जब निष्पन्नोंमें परतन्त्रता नही बन सकती है तो सम्बन्ध भी नही बना। तो सम्बन्धका लक्षण परतन्त्रता तो कह नही सकते, क्योंकि जिसमें सम्बन्ध बना रहे हो यह पदार्थ ही अगर असिद्ध है, असत् है तो सम्बन्ध क्या ? और, वे दोनों पदार्थ निष्पन्न हैं जिनमें कि सम्बन्ध बनाया जा रहा तो फिर परतन्त्रता क्या ? जैसे हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल पर्वत ये दोनों पूरे हैं तो क्या ये किसी दूसरेके आधीन बन गए ? इसी प्रकार वे अणु निष्पन्न हैं तो उनमें परतन्त्रता नही बन सकती। इस कारणसे सभी अणुवोंमें वास्तव में सम्बन्ध नही है।

अणुओंमें रूपश्लेष सम्बन्धके अभावका शंकाकारद्वारा प्रस्ताव— यदि कहो कि रूपश्लेष वा अन्योन्यप्रवेश हो जाय इसका नाम सम्बन्ध है, शंकाकार ही अभी कह रहा है कि जैन आदिक लोग अगर सम्बन्धकी यह व्याख्या करें कि एक दूसरेमें प्रविष्ट हो गया उसका नाम सम्बन्ध है तो भला सोचिये तो सही कि सम्बन्ध होता है दो पदार्थोंमें। एकका सम्बन्ध क्या ? एक तो एक ही है। तो जब वे दो हैं तब एक दूसरेमें प्रवेश क्या कहलाया ? और, अगर वे परस्पर में प्रवेश कर गए तो वे एक ही हो गए। अब उनमें सम्बन्ध क्या ढूंढ़ना ? तो अब सम्बन्ध ही न रहा उनमें, अन्योन्य प्रवेश कर दिया और इस तरह वे एक बन गए तो अब दो तो न रहे। तो जब सम्बन्ध दो पदार्थ न रहे तो सम्बन्ध नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि सम्बन्ध दो पदार्थों में होता। अन्योन्य प्रवेश निरन्त रहता है अथवा निरन्तर बना रहनेका नाम है रूपश्लेष। जैसे यह चौकी यदि एक पिन्डरूप है तो ऐसा सघन निरन्तर बना रहे जिसके बीच अनन्तर न हो। उसीके मायने रूपश्लेष है, वही सम्बन्ध है। तो शंकाकार उत्तर देता है कि देखो–नैरन्तर्यका अर्थ क्या है ? निरन्तर बना रहना, अन्तररहित बना रहना। आप अन्योन्याप्रवेशका रूपश्लेषका अर्थ यह कह रहे हो कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थके ऐसा निकट रहे कि उसके बीचमें न अन्तर न आये। इसीको तो सम्बन्ध कहते हो ना ? ऐसे ही अणुवोंका सम्बन्ध मानते कि वे अणु एक दूसरेसे ऐसा चिपटकर रह गए कि उनके बीचमें कोई एक अणु डालने तककी भी जगह न रहे। ऐसा वह पदार्थ अन्तररहित हो उसका नाम सम्बन्ध बताते हो। जैसे चौकीपर यह चश्मा घर रखा तो यह सम्बन्ध हो गया इन दोनोंका, सम्बन्धके मायने यह है कि इन दोके बीचमें कोई अन्य चीज नहीं लगी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। यदि चौकी पर कपड़ा बिछा है और उसपर चश्माघर रखा तो चश्माघरका और चौकीका सम्बन्ध न कहा जायगा, क्योंकि चौकी और चश्मा ये निरन्तर नहीं हैं। इनके बीचमें अन्तर पड़ा हुआ है। तो यदि कहो कि निरन्तरका नाम रूपश्लेष है याने उन घन पदार्थोंके बीचमें कोई अन्तर नहीं हैं जो ऐसी सघन अवस्था है उसका नाम है रूपश्लेष। शंकाकार उत्तर दे रहा है कि निरन्तरताका तो अर्थ है अतरालका अभाव। अन्तरके न होनेका नाम है रूपश्लेष। सो अन्तरालका अभाव तो अवास्तविक है। अतात्विक है, तुच्छाभावरूप है. अन्तरालका अभाव। अभाव मायने तुच्छाभाव, कुछ नहीं, तो अन्तरालका अभाव जब तुच्छाभाव रूप है तो उस की सम्बन्धरूपता ही नही वन सकती। कहत हो कि सम्बन्ध नाम है इसका कि अंतरालका अभाव होना। तो अन्तरालका अभाव कोई चीज ही नहीं है। अभाव तुच्छाभावरूप है, निषेधरूप है। कोई बात तो नहीं हुई कि अभाव है, तो अभावमें सम्बन्ध क्या होता है? अभावमें सम्बन्धरूपताका संबन्ध नहीं जुड़ सकता। और, यदि निरन्तरता जो कि अभावरूप है। कोई वस्तु नही है, उसको अगर सबन्धरूप मानते हो तो फिर सान्तरताका भी अर्थात् अन्तर सहित रहनेका नाम भी सम्बन्ध कह डालो। निरन्तरताका अर्थ है अन्तरालका अभाव। तो अन्तरालका अभाव तो अवस्तुरूप है। उसमें सम्बन्धरूपता नहीं मान सकते। और, अगर अवस्तुको सम्बन्धरूपता मानलें तो सान्तरतामें भी सम्बन्ध मान लो। कल्पना करो कि यह भी सम्बद्ध है, इसमें रूपश्लेशका सम्बन्ध है। यों अनेक दोष होनेसे यह भी बात ठीक नही बैठती कि रूपश्लेका नाम सम्बन्ध है।

सर्वात्मना व एकदेशेन रूपश्लेषकी असिद्धिका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—अब शंकाकार और भी कह रहा है कि यह जो रूपश्लेष हुआ जिसको चाहे अन्योन्य प्रवेश कहो और चाहे किसी प्रकारका मिलावट कहो। यह बतलावो कि यह रूपश्लेष उन दो पदार्थोंमें सर्व देशोंसे हुई है या एक देशमे हुई है? एक पदार्थमें प्रवेश कर गया इसका नाम कहते हैं रूपश्लेष तो यह बतलावो कि वह कोई अणु सर्व देशसे प्रवेश कर गया या एक देससे प्रवेशकर गया? यदि कहो कि एक परमाणु दूसरे परमाणुमें सर्वात्मक रूपसे प्रवेश कर गया तब तो अनन्त भी अणु हों, जो पिण्ड हैं वे भी अणुमात्र रह गए, क्योंकि प्रत्येक अणु पदार्थमें पूरे रूपसे प्रवेश कर गए। तो उस अणुसे बढ़कर कुछ नही हो सकता। तब वह अणु पिण्ड अणु मात्र ही रह गया। यदि कहो कि उन अणुवोंका परस्पर प्रवेश एक देशसे होता है सर्वदेशसे नहीं होता तो यह बतलावो कि वह एक देश उस परमाणुके आत्मस्वरूप है या उस परमाणुमे कोई भिन्न चीज है एक देश? परमाणुमें एक देश है और उस एक देशसे परमाणुवों का प्रदेश है, तो यह बतलावो कि एकदेशसे वह एक देश उन परमाणुवों रूप है या परमाणुसे कोई भिन्न चीज है? यदि कहो कि वह एकदेश परमाणुरूप है, आत्मभूत है तो यह बात नही बन सकती। क्योंकि परमाणु तो निरंश है, उसका अंश नही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो सबसे आखिरी अंश हो, जिसका दूसरा अंश न हो सके, उसका ही नाम परमाणु है तो फिर उस परमाणुमें एक देश बन गया तो इसके मायने है कि उसमें कोई अंश है। उनमेंसे एक अशकी बात कह रहे, तो जो निरंश परमाणु हैं उनमें एक देश से रूपश्लेष हो ही नही सकता। परमाणु निरंश है और एक देश जो माना, वह भी परमाणुस्वरूप तो क्या रहा, परमाणु ही रहा। अब उसका एक देशसे क्या सम्बन्ध? यदि कहो कि एक देश भिन्न चीज है तो फिर यह बतलावो कि उन एक एक चीजोंका परमाणुमें भी सम्बन्ध कैसे हो? क्या सर्वदेशसे हो या एकदेशसे हो? ऐसे ही प्रश्न उठते रहेंगे। इनका उत्तर कहीं भी न हो पायगा। तो अनवस्था दोष आता है। इसी प्रकार न तो स्थिरस्थूल पदार्थसे परतन्त्रतारूप सम्बन्ध रहा और न रूपश्लेष नामका सम्बन्ध रहा। अतएव जो यह ज्ञान हो रहा यह स्थिर है, यह स्थूल है आदिक तो ये सब भ्रान्त ज्ञान हैं और भ्रान्त होनेसे सामान्य पदार्थकी सिद्धि नही हो सकती।

पदार्थोंमें पारतन्त्र्यलक्षण सम्बन्धका तथा सम्बन्ध विधिका प्रतिपादन—पदार्थोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध करनेके लिए क्षणिकवादीने जो सम्बंध के अभावकी सिद्धि की थी उसमें जो यह विकल्प उठाया था कि सम्बन्ध नाम किसका है? क्या परतन्त्रता हो जानेका नाम सम्बन्ध है या रूपश्लेष हो जानेका नाम सम्बन्ध है। तो पारतन्त्र्यलक्षण संबन्धमें जो दूषण दिया था शंकाकारने वह दूषण उपयुक्त नही है। कारण यह है कि स्कंधरूपसे एकत्व परिणमन होना यही तो पदार्थोंकी परतंत्रता है। और वह प्रतीतिसे बराबर प्रसिद्ध है। यह कहना कि अणु अणु प्रत्येक लोहेकी सलाईकी तरह न्यारे-न्यारे हैं, उनमें परतंत्रता कैसे बन सकती है? तो परतंत्रता देखो बिल्कुल प्रत्यक्षसे सिद्ध है। जैसे चौकीको सरकाते हैं यो उसमें अनन्त परमाणुवोंको उनके पीछे सरकना पड़ता है। तो स्कंध रूपसे परिणमन होनेका नाम परतंत्रता है। भिन्न भिन्न परमाणु जो थे अब वे भिन्न रूपमें न रह सके, स्कंधरूपमें आ गए यही तो परतँत्रता है, अन्यथा इन क्षणिकवादियोंके द्वारा माने गए असंबंधमें भी यही दोष दे सकते हैं और देखिए पदार्थोंका संबन्ध हम न सर्वात्मकरूपसे मानते हैं न, एकदेश रूपसे मानते हैं अर्थात् सम्बन्धके ये कारण नही कहे जिनसे कि यह दोष आ जाय कि सर्वात्मसे सम्बन्ध हुआ अणुवोंका सारा पिण्ड अणुमात्र रह जायगा आदि जो दोष दिये गए वे दोष सम्भव नही हैं, क्योंकि हम न तो सर्वात्मकरूपसे सम्बन्ध माननेका नियम बनाते हैं और न एक देश रूपसे सम्बन्ध होनेका नियम बनाते हैं, किंतु प्रकारान्तरसे ही यह सम्बन्ध माना गया है। अणुवोंमें सर्वरूपसे सम्बन्ध असम्भव है और अणुवोंमें एकदेशका भी सम्बन्ध असम्भव है। सर्वदेशका सम्बन्ध तो यों असम्भव है कि अणु क्या पूरे रूपसे दूसरे अणुमें चला गया सो तो नहीं। ऐसा मानो तो दोष दे सकते कि फिर अणुवोंका पिण्ड अणुमात्र रह गया और अणुवोंमें एकदेशसे इस कारण नही कि अणुवोंमें अंश तो नही होते कि यह अणुवोंका एकदेश है, यह दूसरा देश है, इस तरह अनेक प्रदेश मिलकर अणु नही बने! तो अणुवोंमें न तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वात्मकरूपसे सम्बन्ध सम्भव है और न एकदेशसे, किन्तु वह तो प्रकारान्तरसे संबंध है। प्रकारान्तर क्या है ? सो अभी बतावेंगे। पहिले तो यह समझलें कि इन स्कंधोंमें सम्बन्ध प्रत्यक्षसिद्ध है क्योंकि इनमें सम्बन्धकी बराबर प्रतीति हो रही है तब इसमें सम्बन्ध परखिये किस रूपसे है वह है स्निग्ध रूक्षत्वके निमित्तसे। अणुवोंमें स्निग्ध और रूक्षत्व गुण है जिसके कारणसे इनमें बंध माना गया है।

सम्बन्धसिद्धिके प्रसंगमें दृष्टान्तपूर्वक प्रकारन्तर और कथंचित् एकत्व परिणतिकी सिद्धि—जैसे सत्तू और पानीमें सम्बन्ध हुआ है ना। वह स्निग्ध और रूक्षताके कारण ही तो हुआ है। सत्तू है रूखा और पानी है स्निग्ध। जैसे दोनों का सम्बन्ध बन जाता है ऐसे ही अणुवोंमें कोई अणु होते हैं स्निग्ध और कोई रूक्ष, तो इन कारणोंसे ये सब सम्बन्ध मिल जाते हैं। और, सम्बन्ध होनेपर उन पदार्थोंमें पहिले समयमें रहने वाली स्थितिसे विलक्षण स्थिति हो जाती है। वे परमाणु जब तक कि सम्बन्धको प्राप्त न थे वे विश्लेषरूपमें थे। और जब सम्बन्ध हो गया तो ये संश्लिष्टरूपमें आ गये तो देखिये—उन परमाणुवोंमें विश्लिष्टरूप पनेका त्याग किया और सम्बन्धितरूप पनेका ग्रहण किया। तब देखिए कि किसी प्रकार अन्यरूपसे हुई ना कुछ बात। बस यह एकत्व परिणति है। सम्बन्धसे पहिले वे अणु बिल्कुल स्वतन्त्र न्यारे न्यारे थे। अब सम्बन्ध होनेपर वे ही अणु बिखरपनको त्याग देते हैं और संश्लेषरूपको ग्रहण करते हैं। तो पहिले असम्बंधकी दशामें तो कुछ विलक्षण बात आयी है, सम्बन्ध होनेपर बस यह उसमें एकत्व परिणति है यही सम्बन्ध है पदार्थमें। जैसे क्षणिकवादी मानते हैं कि जब चित्रज्ञान होता है अर्थात् पदार्थ है दुनियामें अनन्त वे सब पदार्थ ज्ञानमें अपना आकार दे देते हैं। जितनी जिसके ज्ञानमें योग्यता है उतना उसमें बराबर प्रदान कर देता है तो जब आकार उन समस्त पदार्थोंका आ गया ज्ञानमें तो अब ज्ञानमें यह भेद तो नही कर पाते कि देखो—यह तो है नीलादिक आकार और यह है ज्ञान। ज्ञानमें आकार आ जानेपर अब वहां यह विभाग नहीं कर सकते कि यह तो है ज्ञानकी बात और यह है नीलाकारकी बात। तो जैसे चित्रज्ञानमें नील आदिक आकारसे सम्बन्ध है और वह कैसे सम्भव है। एकत्व परिणतिरूप, जिसमें यह भी जाहिर हो रहा है कि सम्बन्ध होनेसे पहिले जो अवस्था थीं ज्ञानकी उसको तो त्यागें और नीलादिक आकारोंका सम्बन्ध होनेपर उस ज्ञानक्षणमें एक नवीन परिणति हुई तो अन्यथा रूप परिणाम जाना यह हुई एक परिणति। वही हुआ सम्बन्ध। जैसे चित्रज्ञानमें नीलादिक आकारका सम्बन्ध है इसी प्रकार इन अणुओंमें भीं परस्परमें सम्बन्ध है और इसी कारण वे अणु पहिले तो बिखरेपनमें थे, उसका तो त्याग किया और अब संश्लेषरूपमें आ गए। चित्रज्ञान में भी जात्यंतर रूपका उत्पाद होना, इसके अतिरिक्त और कुछ भिन्न सम्बन्ध तो नही कह सकते, याने चित्रज्ञानमें जो नीलादिक अनेक आकार आये हैं उन नीलादिक आकारोंसे इस ज्ञानको अलग तो नही किया जा सकता। अशक्यविवेचनताका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नाम सम्बन्ध है सो वह इस ही जात्यंतररूपसे बना है । उसमें भी यदि हम पूछने लगे कि उस ज्ञानमें नील आदिक आकारका सम्बन्ध क्या सर्वदेशसे हुआ है या एक देशसे हुआ है ? यदि एक देशसे हुआ है तो नीलादिक आकार जिस प्रकारका अपना लक्षण रखता है उस प्रकारके लक्षणमात्र यह ज्ञान हुआ । और यदि एक देशका सम्बन्ध हो इस नीलादिक आकारका पदार्थोंका ज्ञानके साथ एकदेश सम्बन्ध रहा, फिर कोई ज्ञान सर्वज्ञ ही नही सकता । तो इस कारण जैसे शंकाकारने स्वयं चित्र ज्ञानमें दोलादिक आकारका सम्बन्ध माना है और वह सम्बंध कोई विलक्षण जात्यंतर सम्बन्ध है, तो ऐसे ही अणु अणुमें जो सम्बन्ध होता है वह स्निग्ध रूक्षत्व गुणके कारण एक जात्यंतररूप सम्बन्ध होता है ।

सम्बन्धपद्धतियां सम्बन्ध पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न पद्धतियोंमें पाया जाता है जैसे किन्हीं पदार्थोंमें रूपश्लेष अन्योन्य प्रवेश रूप है अर्थात् एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें प्रवेश कर गया है । जैसे सत्तू और पानी इनका जो सम्बन्ध है वह एक दूसरेमें प्रवेश किए हुए है । किन्हीं पदार्थोंमें तो अन्योन्य प्रवेशरूप सम्बन्ध हो जाता है और किन्हीं में प्रदेश सश्लेष मात्र सम्बन्ध होता है । जैसे दो अंगुलियाँ आपसमें जोड़ दी गई तो यह अन्योन्य प्रवेश सम्बन्ध नही है । अंगुलीमें अंगुली चली नही गई किंतु प्रदेशका सम्पर्क हो गया । एक अगुलीके प्रदेशका दूसरी अंगुलीके प्रदेशमें सम्पर्क हो गया । इस प्रकारका प्रदेश सश्लेषरूप सम्बन्ध है । तब ऐसा दोष देना कि सम्बन्ध माननेपर उनमें अंशपना आ जायगा यह असंगत बात है । जैसे अभी बताया कि अंगुली अंगुलीका जो सम्बन्ध है वह प्रदेश सश्लेष सम्बन्ध है तो प्रदेश संश्लेषमें हुआ क्या ? सर्वप्रदेशोंसे तो सम्बन्ध न हुआ । अंगुलीके प्रदेशके साथ दूसरी अंगुलीके कुछ प्रदेशोंसे सम्बन्ध हुआ तो इतने मात्रसे यह कह बैठना कि फिरसे वस्तु सांश हो गयी यह अनिष्ठापत्ति नही है । देखो ! एक देशका तो सम्बन्ध हुआ और बाकीके देशका सम्बन्ध न हुआ तो यहाँ दोष यों नही आता कि यह तो इष्ट है । जो पदार्थ बहुप्रदेशी हैं उनमें परस्पर यदि प्रदेश संश्लेषरूप सम्बन्ध होता है तो एक देशसे सम्बन्ध होता है और उस वस्तुमें ऐसे अनेक अंश माने गए हैं । और इसी प्रकार इसमें अनवस्था दोष भी नही दे सकते क्योंकि प्रदेशवान पदार्थके उन्हींके प्रदेशोंमें अत्यन्ताभाव नही है, अभिन्न है, एकरूप हैं, केवल संज्ञा संख्या, प्रयोजनके कारण हम उनमें भेद करते हैं । क्योंकि अगर प्रदेशवान पदार्थमें प्रदेशका भेद कर दिया जाय तो प्रदेशका प्रदेशवानके साथ सम्बन्ध कैसे बनेगा सो बताओ ? यदि कहो कि अन्य प्रदेशके द्वारा सम्बन्ध बन जायगा तो इसमें अनवस्था दोष आता है । और यदि उनको कथंचित् भिन्न व कथंचित् अभिन्न मान लेते हैं तो किसी प्रकारका दोष नही होता । अनेकान्तात्मक वस्तुका अथंचित् भेदाभेदरुप वस्तुका अत्यन्त भिन्न और अत्यन्त अभिन्न कहना अतथ्य ही है । अर्थात् प्रदेशसे प्रदेशवान् अभिन्न है यह भी असत्य है । प्रदेशवानसे प्रदेश सर्वथा भिन्न है तो यह भी अतथ्य होगा, किन्तु अथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न है । इस कारण सम्बन्धके विरोधमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो दोष रहे हैं वे कोई दोष नही आ सकते।

परमाणुओंमें अविभागिता व स्वभावभेदका प्रतिपादन—अब शङ्काकार कहता है कि इस तरह तो परमाणुओंमें अंशवानका प्रसग आ जायगा कि परमाणु सांश हो गए, निरंश न रहे। उत्तर देते हैं कि यह भी तुम्हारी बात ठीक नही है, क्योंकि यहांपर अंश शब्दका अर्थ आप क्या कर रहे हैं? क्या अंश स्वभावार्थक हैं या अवयवार्थक है? यदि कहो कि अंश शब्द स्वभावार्थक है, अंश मायने स्वभाव, तो कहते हैं कि अंशका केवल स्वभावार्थ करनेपर कोई दोष नही है क्योंकि भिन्न–भिन्न दिशाओंमें व्यवस्थित रहने वाले अनेक परमाणुवोंके साथ अन्यथा सम्बन्ध नही बन सकता था, याने उसमें किसी प्रकार स्वभावभेद मान लिया जात तो उनमें सम्बन्ध बनता है। सो इतने ही मात्र कारणसे उन अणुवोंमें स्वभाव भेदकी उत्पत्ति होती है। अर्थात् अणु नाना दिशाओंमें पड़े हुए है। जब वे बिखरे हुए भिन्न भिन्न देशोंमें पड़े हुए हैं तब उनमें स्वभाव बिखरेपनका, स्वतन्त्रताका है। और, जब वे सम्बन्धको प्राप्त हो गए तब उनमें वह बिखरापन भिन्न भिन्न दिशाओंमें रहता नही है। यह स्वभाव तो अब न रहा इसलिए कथंचित अणु–अणुमें भी स्वभाव भेद मान कर उनको अंश अंश कह लीजिए। पर वे दो प्रदेशी हों, बहुप्रदेशी हों, इस तरहके अंश वाले पमराणु नहीं हैं। यदि अंश शब्दका अर्थ अवयवार्थक कहते हो, अंश मायने अवयव। तो यह बात बिल्कुल सिद्ध नही है। परमाणुओंमें अवयव नही पाये जाते। स्वभाव भेद तो मिल गया पर अवयव भेद नही है, क्योंकि परमाणु तो अभेद्य है, उनके कोई टुकड़े नही किए जा सकते हैं, अतएव परमाणुमें अवयव सम्भव नही है। तो इतने कथनका तात्पर्य यह है कि परमाणु जितने बिखरे पड़े हैं वे बिखरेपनेके स्वभावको त्यागकर एक स्कधरूपसे परिणत होनेका स्वभाव बना लेंगे, ऐसा होनेपर ही तो सम्बन्ध बन रहा है जो कि प्रत्यक्षसिद्ध है। तो उस सम्बन्धमें अब स्वभाव भेद हो गया। परमाणुमें स्वभाव भेद आ गया। सम्बन्धसे पहिले नाना देशोंमें, दिशाओंमें रहने वाले परमाणुका स्वभाव और तथा सम्बन्ध होनेपर वह अन्य और उनका स्वभाव हुआ, इस संस्कार स्वभावभेद सम्भव होनेपर यह न विरोधको प्राप्त होगा कि वह अविभागी है। अर्थात् शंकाकार यह कहने लगे कि जब परमाणुमें स्वभाव भेद हो गया तो वे परमाणु विभागी हो गए, न्यारे न्यारे हो गए सो बात नही है। परमाणु अविभागी ही है। स्वभावभेद होनेसे कहीं परमाणुवोंमें भेद अथवा खंड नही किया जा सकता। अविभागी होना दूसरी बात है। स्वभावभेद होनेपर भी पदार्थ अविभागी रह सकता है। परमाणुमें इस प्रकारका स्वभावभेद सिद्ध कर लीजिए, किन्तु वे परमाणु स्वभाव भेदके कारण विभागी बन जाय, खंड खंड रूपसे हो जाय, उनमें भेद हो जाय यह बात सम्भव नही है। परमाणु अविभागी हैं बिखरेपनकी हालतमें परमाणुवोंका स्वभाव और हैं तभी तो देखिए कि जब पिण्डरूप स्कंधमें न थे परमाणु तब वहां पानी तो नही भरा जा सकता। अब घटरूप स्कंधमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आये तब उसमें जल भरने आदिक अर्थक्रिया भी होने लगी। इससे सम्बन्ध वास्तविक है और इसी कारण पदार्थ स्थिर स्थूल और साधारण स्वभाव वाले भी हैं।

कथंचित् निष्पन्न पदार्थोंमें सम्बन्धकी सिद्धि—शङ्काकारका जो यह कहना था कि पारतंत्र्यरूप सम्बन्ध क्या निष्पन्न पदार्थोंमें होता है या अनिष्पन्न पदार्थोंमें अनिष्पन्न पदार्थोंमें तो होना अशक्य है, क्योंकि अनिष्पन्न मायने असत् है। निष्पन्न पदार्थोंमें मानोगे तो वे तो निष्पन्न हैं ही, उसमें सम्बन्ध माननेकी जरूरत ही नही। ऐसा कहकर सम्बन्धका निराकरण किया वह ठीक नहीं है क्योंकि हम न सर्वथा निष्पन्नोंका सम्बन्ध मानते न सर्वथा अनिष्पन्नोंका सम्बन्ध मानते, क्योंकि सम्बन्ध्य दोनों पदार्थ कथचित् निष्पन्न है जिसका कि सम्बन्ध माना गया है। जैसें कपड़ा बना है तो तंतुवोंके सम्बन्धसे बना है तो वहाँपर वह कपड़ा तंतुद्रव्यरूपसे तो निष्पन्न ही है, पहिलेसे निष्पन्न है याने तंतुवोंके परस्पर सम्बन्धसे वह कपड़ा बना है तो प्रश्न तो यहां किया जायगा ना कि वह द्रव्य निष्पन्न है या अनिष्पन्न है ? तो सत्के तो पूरे रूपसे निष्पन्न ही है। तंतु द्रव्यरूपसे निष्पन्न ही है। अब अन्वयी द्रव्य हुए तंतु क्योंकि तंतु पटकार्यमें रहता है। कपड़ा बननेपर अन्यवी द्रव्यका पट परिणमन बननेसे पहिले भी सत्त्व है, तो वह तंतु द्रव्यरूपसे तो निष्पन्न ही है और पटरूप से अनिष्पन्न है। कपड़ा तो अभी नही बना. तंतुवोंसे सम्बन्ध होकर कपड़ा बनेगा तो जो भी सम्बंध बन रहा है वह कथंचित् निष्पन्नमें बन रहा है, तो यह उलाहना देना ठीक नही कि सम्बन्ध निष्पन्नमें बनता या अनिष्पन्नमें ? निष्पन्न मायने तैयार, मौजूद, उत्पन्न। उत्तरमें कह रहे हैं कि संबंध कथंचित् निष्पन्नमें बनता है, सर्वथा निष्पन्न नही, किंतु कथंचित् निष्पन्न बनता है। जैसे मिट्टीसे घड़ा बनाया तो मिट्टीके स्कंधोंका सम्बन्ध जुड़ना, पानी वगैरह लाकर उसका एक पिण्ड बना तभी तो घट बनता, तो उसमें जो मिट्टीके अणुवोंका सम्बन्ध बना और घट बन गया तो वहां देखो कि मिट्टीरूपसे तो पदार्थ निष्पन्न है और घटरुपसे पदार्थ अनिष्पन्न है तो निष्पन्न पदार्थोंमें सम्बन्ध बनाकर अनिष्पन्न पदार्थ (कार्य) निष्पन्न होता है। जैसे तंतुयोंका संबंध जोड़कर कपड़ा बना तो वहां जो भी द्रव्य है, वह सूतके रुपसे तो निष्पन्न है, उत्पन्न है, तैयार है, सही शुद्ध है और कपड़ेके रुपसे अभी अनिष्पन्न है सो तंतुरुप तो स्वरुप से निष्पन्न है, पर कपड़ेके परिणमन रुपसे अनिष्पन्न है। तो यों कथंचित् निष्पन्नका सम्बन्ध बनना विरुद्ध नही है। और भी देखिये ! कभी कोई किसीसे हाथ मिलाता है, नमस्कार करते हुए, तो हाथका जो मिलावट है तो वहां सम्बन्ध ही तो हुआ, एक एकके हाथका दूसरेके हाथसे सम्बन्ध हुआ। अब उसमें शंकाकार यों कानून छांटे कि यह बताओ कि वह जो सम्बन्ध हुआ है दो हाथोंमें वह निष्पन्नमें हुआ कि अनिष्पन्न में ? अनिष्पन्नमें तो कह नही सकते। निष्पन्नमें सम्बन्धकी जरुरत क्या ? तो वहां भी यही उत्तर है कि कथंचित् निष्पन्नोंमें सम्बन्ध हुआ। दो पुरुषोंके वे दोनों हाथ अपने-अपने स्वरुपसे तो निष्पन्न हैं और संयोगात्मक रुपसे अनिष्पन्न हैं जो सम्बन्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बन करके एक मिलनात्मक, नमस्कारात्मक एक वातावरणको उत्पन्न कर देता। तो यों कथंचित् निष्पन्नमें पारतन्त्र्य रुप सम्बन्ध बनता है। सम्बन्धका यह पारतन्त्र्य लक्षण असिद्ध नहीं है। सम्बन्धमें पारतन्त्र्य तो मिलता है। अचेतनका सम्बन्ध हो गया परस्पर तो वे परतंत्र हो गए। जैसे छितरे हुए मिट्टीके दाने स्वतंत्र–स्वतंत्र थे। उनका संबंध करके घड़ा बना दिया तो उसे जहाँ उठाया वहां सब उठे, जहां ले जायें वहा सबकी गति हुई। तो परतंत्रता ही तो हुई। जीव और शरीरका सम्बन्ध है। सम्बन्ध नाना किस्मके होते हैं। संबंधके प्रकार तो जान लो कि कोई संयोग संबंध है, कोई कथंचित् तादात्म्य है। तो यह सब समझ लेनेसे सबंधमें विदित होती है परतंत्रता अर्थात् जहाँ एक जाता है वहाँ सब जाते हैं। तो परतंत्ररुप संबंध कथंचित् निष्पन्नमें होता, अनिष्पन्न स्वरुपता तो उसमें थी जो कि सम्बन्धसे बात न थी।

पारतन्त्र्याभाव व संबंधाभावके सम्बन्धकी प्रसिद्धि अथवा असिद्धिके शंकाकारके प्रति विकल्प—अच्छा, अब शंकाकार ही खुद बतादे ! जो यह कह रहा है कि परतत्रताका अभाव है इसलिए संबंधका भी अभाव है। परतंत्रताका अभाव यों कह रहा शंकाकार कि चूँकि सभी पदार्थ अपने स्वरुपसे पूर्ण निष्पन्न हैं, कोई किसीके आधीन नहीं है। अध्यात्मवादमें तो ऐसी बात सभी लोग कहा करते हैं कि सब वस्तु स्वतंत्र हैं, परतंत्र कोई नहीं है। तो जब परतत्र कुछ नहीं तो संबंध क्या हो सकता है ? तो शंकाकारने जो यह कहा कि परतंत्रताका जो अभाव है वह संबंधके अभावको सिद्ध करता है। परतंत्रता न होना संबंध न होनेको सिद्ध करता है। तो उनसे पूछा जा रहा है कि तुम जो यह सिद्ध कर रहे हो कि पदार्थमें परतन्त्रताका अभाव है—सम्बन्धका अभाव होनेसे, तो यह बतलावो कि यहाँ जो दो चीजें हैं सामने परतंत्रताका अभाव और सम्बन्धका अभाव, इन दोनोंमें कुछ सम्बन्ध है या नहीं ? जब साध्य और साधन बोला जाता है यहां अग्नि होनी चाहिए धुवाँ होनेसे तो अग्नि और धुवाँका संबंध तो कुछ माना जाता है। कहीं अनुमानमे कार्यकारण संबंध होता है, किसीमें व्याप्य–व्यापक सबंध होता है। संबंधके बिना अनुमान तो नहीं बनता। तो तुम जो सिद्ध कर रहे हो कि पदार्थोंमें परतंत्रताका अभाव है संबंधका होनेसे, तो इन दोनोंका सम्बन्ध है कि नहो कुछ ? जहाँ जहां सम्बन्धका अभाव हो वहां वहां परतंत्रताका अभाव हो। जहां परतत्रताका अभाव नहीं है वहाँ संबंधका अभाव नहो। किसी रूपसे कोई संबंध उनमें है कि नहीं ? यदि कहो कि संबंध है तो बस सिद्ध हो गया सम्बन्ध ! किसी रुपसे मान तो लिया सम्बन्ध। अब यह तो नहीं कह सकते कि सब जगह सब समय सम्बन्धका अभाव ही है। देखो ! इस अनुमान प्रयोगमें परतन्त्रताके अभावके साथ सम्बन्धके अभावका सम्बन्ध जुड़ गया है। और, यदि कहो कि सम्बन्ध नहीं है तो फिर साधनसे साध्यकी सिद्धि कैसे हो जायगी ? अव्यापकके अभावसे अव्यापक अभावकी सिद्धि नहीं हो सकती अर्थात् जो जिसमें व्यापक नहीं उसके अभावसे दूसरेके अभावकी सिद्धि करना फिर असम्भव हो जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अन्यथा हम जहाँ चाहे कह बैठेंगे कि यहाँ कपड़ा नहीं है। भाई तुमने कैसे जाना कि कपड़ा नहीं है? ....अजी, यहाँ घड़ा नहीं है इससे जान लिया, घड़ेके अभावसे कोई कपड़ेका अभाव कह बैठे क्योंकि सम्बन्ध बिना जब साध्य साधन मानने लगे तो किसी अभाव कहकर किसीका अभाव बता दीजिए! तथा किसीका सद्भाव बताकर किसीका भी सद्भाव कह दीजिये! इससे परतन्ततारुप सम्बन्ध सिद्ध है प्रतीतिमें आता है और सम्बन्ध होनेके कारण पदार्थोंमें स्थिर स्थूल साधारण स्वभावका ज्ञान होता है।

असाधारणस्वरूप बने रहनेपर भी पदार्थोंमें कथंचित् एकत्वापत्तिरूप सम्बन्धकी संभवता—अब शंकाकार कहता है कि देखो—पदार्थोंमें एक सम्बन्ध माना है तुमने रूपश्लेष अर्थात् एक दूसरेमें प्रवेश। तो सम्बन्ध जो कुछ भी होता वह दो पदार्थोंमें होता। और, जब दो पदार्थ हैं कोई तो तुमने माना है कि दो ही हैं और हैं वे दो स्वभावसे वे भिन्न ही हैं। सो वे अपने स्वरूपसे, स्वभावसे जुदे-जुदे नहीं होते। याने दो किसे कहते? जब दो पदार्थ स्वभावसे भिन्न हैं तब उनमें अन्योन्यप्रवेशका सम्बन्ध कभी बन ही नहीं सकता। जब प्रकृतिसे भिन्न हैं दो पत्थर हैं, प्रकृतिसे भिन्न हैं, न्यारे-न्यारे हैं तो क्या वे एक दूसरेमें प्रवेश कर जायेंगे? इसी तरह परमाणु भी सब पूर्ण सत् हैं, प्रकृतिसे भिन्न भिन्न हैं, अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं तो उनमें फिर अन्योन्यप्रवेशरूप सम्बन्ध कैसे बन सकता है? इस कारण वास्तवमें सम्बन्ध कुछ चीज नहीं है। सर्व पदार्थ स्वतन्त्र अपने अपने स्वरूपमें होने वाले बिखड़े पड़े हुए हैं। सम्बन्ध तो इनका भ्रमसे दिखता है। जैसे कि सोते हुएमें स्वप्नमें जो चीजें दिखती हैं वे हैं तो नहीं इसी प्रकार अज्ञान में अर्थात् चूंकि पदार्थोंके स्वरूपका सही ज्ञान लोगोंको नहीं है इसलिये अज्ञानमें ये सब पदार्थ मिले हुए संश्लिष्ट दिखते हैं। अब इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा दूषण देना कि जब पदार्थ प्रकृतिसे भिन्न हैं तो उनमें रुपश्लेष कैसे होगा? यह दूषण एकान्तवादमें तो लग सकता है, पर स्याद्वादके यहाँ यह टिक नहीं सकता, क्योंकि सम्बन्धी दो पदार्थोंमें कथंचित् एकता आ जाना यही रुपश्लेष माना गया है। भले ही कैसे ही दो भिन्न पदार्थ हों फिर भी उनमें कथंचित् एकता आ जानेका नाम सम्बन्ध है। जैसे प्रकृतबातमें ही घटा लीजिए। परमाणु अनेक हैं और पूर्ण स्वतः सिद्ध हैं, निष्पन्न हैं। उन परमाणुओंमें जब ऐसी स्थिति बनती है कि कथंचित् एकता आ जाती है बस वही सम्बंध है। सर्वथा एकता आनेकी बात तो न रही, क्योंकि इन स्कंधोंमें जैसे कि यह चौकी है—इसमें परमाणु एक-एक करके अनन्त हैं। और उन सब परमाणुओंका इस समयमें एक स्कंधरुप परिणमन है ये दोनों बातें सही हैं कि नहीं? तो देखो कथंचित् तो रुपश्लेष हो गया, क्योंकि अब जुदे जुदे परमाणुओंकी विवेचना अथवा विभाग नहीं कर सकते। जैसे सत्तू और पानी मिलाया, सत्तू घुल गया। अब बतलावो सत्तू और पानीमें कथंचित् ऐकत्व आ गया कि नहीं, क्योंकि उस समय सत्तू और पानीमें विभाग नहीं किया जा सकता कि यह सत्तू है और यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पानी। इस कारण कथंचित् एकत्व है और सत्तू व पानी मिलनेके बावजूद भी सत्तूके कण सत्तूमें और पानीके कण पानीमें है, हैं ना, दोनोंके अलग-अलग इस कारण उनमें अश्लेष हैं। तो असाधारणस्वरूप रहनेका नाम है अश्लेष और कथंचित् एकत्व आ जानेका नाम है श्लेष। अर्थात् कथंचित् सम्बन्ध है, सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। और यह सम्बन्ध उन दो पदार्थोंके द्वित्वका याने दो बने रहनेका विरोध नहीं रख ; जैसे अनन्त परमाणुवोंको मिलकर यह स्कंध चौकी बना है, तो सम्बन्ध तो हो गया, पर यह संबंध होनेपर भी वे परमाणु एक एक करके अनन्त हैं। इसका कोई विरोध नहीं आता। क्योंकि सम्बन्धकी दशामें भी वे परमाणु प्रत्येक अपना अपना असाधारणस्वरूप बराबर रख रहे हैं।

अपेक्षिकत्व हेतु देकर भी सम्बन्धके अभावकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि देखिये सम्बन्ध होता है आपेक्षिकत्व और आपेक्षिकत्व जो चीज होती है वह मिथ्या होती है। जैसे यह पदार्थ मोटा है। यह पदार्थ पतला है, यह आपेक्षिक चीज है कि नही ? तो किसी एक पदार्थको कोई आपके सामने रख दे तो क्या आप बता सकेंगे कि यह पतला है ? कोई उससे मोटा पदार्थ उसके सामने होगा तो उसकी अपेक्षा लेकर कहा जा सकेगा कि यह पतला है। तो जैसे सद्भाव आपेक्षिक चीज है इस कारण मिथ्या है इसी प्रकार सम्बन्ध भी आपेक्षिक चीज है। कही एकमें ही तो संबंध नहीं बन बैठता। दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं तो सम्बंध बनता है। तो यों आपेक्षिक होनेके कारण सम्बन्ध स्वभाव मिथ्या है। उत्तर देते हैं कि इस तरह सम्बन्धको मिथ्या कहोगे तो हम कहेंगे कि असम्बन्ध मिथ्या है। जैसे सम्बन्धका होना किसी दूसरेकी अपेक्षा रखता है इसी तरह सम्बन्धका न होना भी दूसरेकी अपेक्षा रखता है। जब कहा जाता कि इसमें सम्बन्ध है तो प्रश्न होता कि किससे सम्बन्ध है ? तो इसी तरह जब कहा जाय कि इसमें सम्बन्ध नही है तो वहाँ प्रश्न हो सकता है कि किससे सम्बन्ध नही है ? तो जैसे सम्बन्ध आपेक्षिक है इसी प्रकार सम्बन्धका अभाव भी आपेक्षिक है। और आपेक्षिकको मानते हो मिथ्या तो सम्बन्धका अभाव भी मिथ्या हो जायगा। इस कारण आपेक्षिक होनेपर भी जैसे सम्बन्धका अभाव मानते हो इसी प्रकारसे सम्बन्ध भी मान लिया जाना चाहिए।

सम्बन्धको आपेक्षिक बताकर अवास्तविक सिद्ध करनेकी शंका व समाधान—शंकाकार कहता है कि असम्बन्ध तो निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञानमें स्पष्ट प्रतिभान होता है, इस कारण अनापेक्षिक ही है। सम्बन्धका निषेध करने वाला क्षणिकवादी कह रहा है कि दो पदार्थोंमें सम्बन्ध नही है। तो जब सम्बन्ध नही है तो असम्बन्धका ज्ञान तो प्रत्यक्ष बुद्धिमें प्रतिभासमान होता है, क्योंकि क्षणिकवादका प्रत्यक्ष है निर्विकल्प और जहां कुछ भी विकल्प नही है वहां सम्बन्ध यों विदित नही होता। तो असम्बन्ध अनापेक्षिक ही है। इसके पश्चात् होने वाले विकल्पके द्वारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चित किया गया यह असम्बन्ध आपेक्षिक कहलाने लगता है। अर्थात् सर्वप्रथम तो जब प्रत्यक्षसे पदार्थोंको देखते हैं तो सभी पदार्थ स्व-स्व लक्षणमात्र नजर आते हैं और उस दृष्टिमें असम्बन्ध अनापेक्षिक है। इसके पश्चात् जब विकल्पसे कुछ निर्णय करते हैं पदार्थोंके बीच तो सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें है। किसीका किसी अन्यमें प्रवेश नहीं होता। ऐसा विकल्प करके यहां निश्चय किया जाता है कि असंबन्ध इनका इन दोनों पदार्थोंमें है या समस्त पदार्थोंमें है। फिर यह आपेक्षिक बन जाता है और अवास्तविक भी बन जाता है अवास्तविक बन जाता है। उत्तर देते हैं कि यह कथन तो संबंधके विषयमें भी किया जा सकता है? प्रथम ही प्रथम जब हम प्रत्यक्षज्ञानसे इन पदार्थोंको निरखते हैं तो इनमें संबन्ध अनापेक्षिक ही विदित होता है। पश्चात् विकल्पोंके द्वारा निश्चय करते हैं तो समस्त आपेक्षिक हो जाते हैं। सम्बन्ध प्रत्यक्षसे न ज्ञात होता हो यह बात तो है नहीं। सम्बन्ध प्रत्यक्षसे अनेक पदार्थोंको देखते ही विदित हो जाता है जैसे चौकी तख्त आदिक दिखते हैं तो ये अनेक अणुवोंके पिण्ड हैं। इनमें परस्पर ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है यह भी प्रत्यक्षसे शीघ्र विदित हो जाता है इस कारण सर्वप्रथम पदार्थोंका निरखना इस सम्बन्धका ज्ञान अनापेक्षिक है। पश्चात् विकल्प द्वारा विमर्श करनेपर सम्बन्ध आपेक्षिक हो जाता है।

सम्बन्धमें सत् असत्के विकल्प करके अवास्तविक सिद्धि करनेकी शंका – अब शंकाकार कहता है कि सभी पदार्थ क्षणिक अपने-अपने लक्षण मात्र हैं, किसीका किसीके साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता क्योंकि सम्बन्धका अर्थ तो परकी अपेक्षा करना है। परकी अपेक्षा ही सम्बन्ध कहलाता है। तब सम्बन्ध दो पदार्थोंमें हुआ एक पदार्थमें सम्बन्ध नहीं बन सकता तो दो पदार्थोंके सम्बन्ध होनेके कारण अब आपसे यह पूछा जायगा कि वह सम्बन्ध क्या स्वयं सत् होता हुआ सम्बन्धियोंकी अपेक्षा करता है या स्वयं असत् होता हुआ सम्बन्धियोंकी अपेक्षा करता है। सम्बन्ध हुआ परकी अपेक्षा करना क्योंकि एक पदार्थमें सम्बन्ध नहीं कहलाता। दो या अनेक पदार्थोंमें सम्बन्ध होता है। तो परकी अपेक्षा हो गयी न सम्बन्धमें। तो यह सम्बन्ध क्या स्वयं सत् होता हुआ परकी अपेक्षा करता है या स्वयं असत् ही रहकर परकी अपेक्षा करता है? असत् ही रहकर परकी अपेक्षा करता है यह बात तो कह नहीं सकते क्योंकि फिर तो अपेक्षा धर्मके आश्रय होनेका विरोध हो जायगा। क्या असत् भी कुछ परकी अपेक्षा करता है? यदि असत् परकी अपेक्षा करने लगे तो यों असत् होता हुआ सम्बन्ध परकी अपेक्षा करता है यह बात अयुक्त है। यदि कहो सम्बन्ध सत् हो कर परकी अपेक्षा करता तो जो स्वयं सत् है अतएव परिपूर्ण है। स्वतंत्र है वह दूसरे की अपेक्षा क्या करेगा। यदि सत् होकर भी परकी अपेक्षा करने लगे तो सत्वका विरोध है। किसी दूसरेका कोई मुह ताकता है पदार्थ तो इसके मायने है कि वह अधूरा है, असहाय है, बना नहीं, पर जो सत् है कोई भी सत् किसी भी परकी अपेक्षा

http://sahjanandvarnishastra.org/

नही करता, क्योंकि जो सत् होता है वह स्वयं अपने आपके सहायपर ही सत् होता है इस कारण परापेक्ष बन न सके तब सम्बन्ध भी न बन सकेगा। सम्बन्ध तो परकी अपेक्षा रखकर ही हुआ करता है। सो यदि सम्बन्ध असत् है तो वह अपेक्षा करे कैसे? यदि सत् है तो वह सर्व निराशंस है अर्थात् समस्त पदार्थोंकी इच्छा आशासे रहित हुआ करता है सत्। जो सत् है वह अपने स्वरूपसे अपने आप सत् है। अपना सत्त्व रखनेके लिए कोई पदार्थ किसी दूसरेकी अपेक्षा नही करता है। यों परापेक्षता ही सिद्ध नही होती फिर सम्बन्ध क्या रहा?

सम्बन्धको अवास्तविक कहनेकी शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि इस तरह तो असम्बन्धमें भी विकल्प उठा सकते हैं। क्षणिक-वादी शंकाकार सम्बन्ध नही मानता, क्योंकि सम्बन्ध मानले यदि क्षणिकवादी तो इसका अर्थ है कि पदार्थ पिण्ड कुछ बड़ा हो जायगा, स्थूल हो जायगा, तब स्थिर भी रहेगा और फिर एक दूसरेके साथ सदृश भी हो जायगा तब क्षणिकवादका सिद्धान्त समाप्त हो जायगा इस कारण क्षणिकवादी पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नही मानते। उनका सिद्धान्त है कि जो पदार्थ ये स्थूल दिख रहे हैं यह सब भ्रम है। वास्तवमें तो एक एक अणु अब भी स्वतंत्र परिपूर्ण सत् है। तो सम्बन्धका वे पूर्ण निषेध करते हैं। तो इस प्रकरणमें सम्बन्धका अभाव सिद्ध करनेके लिए जो भी वचन बोले गए हैं ऐसे ही वचन असम्बन्धकी असिद्धिके लिएभी बोले जा सकते हैं। किस तरह देखो असम्बन्ध होता है परकी अपेक्षा रखकर इसका सम्बन्ध नही है तो यह तो जान जायगा कि किससे सम्बन्ध नही है। एक पदार्थमें असम्बन्ध नही होता। असम्बंध भी अनेक पदार्थों में होता है। लगाव यह अलग है तो कैसे अलग है? दूसरेकी अपेक्षा तो आयी। तो असम्बन्धता द्विष्ठ है अर्थात् दो में रहता है। तो अब यह बतलाओ कि असम्बन्ध भाव स्वयं सत् होता हुआ परकी अपेक्षा करता है या स्वतंत्र सत् होता हुआ परकी अपेक्षा करता है या स्वतंत्र सत् रहकर परकी अपेक्षा करता है? असत् होकर तो अपेक्षा ही क्या होगी? और सत् है असम्बन्ध तो सब ओरसे वह आशंसारहित हो जायगा, फिर दूसरेकी अपेक्षा ही क्या करे? तो ऐसे विकल्प मचाकर तो कुछ भी रोंदा जा सकता है, पर जो बात प्रत्यक्षसे स्पष्ट विदित होती है उसकी तो मना ही कोई नहीं कर सकता। ये पदार्थ पिण्ड रूप हैं. अनन्त अणुवोंका इनमें सम्बन्ध है। यह तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे समझमें आया। अब युक्तिसे, आगमसे, अनुमानसे यह विदित हुआ कि यह जो स्कंध है, इसका हो जाता है अंश, टुकड़े जो अंश करो उसका भी अंश हो जाता है। तो यों अंश होते जायें तो अन्तिम जो अविभाग अंश है वह ही वास्तविक पदार्थ है, उस होका नाम अणु है। तो ऐसा अणु अपने असाधारण स्वरूप को रख रहा है। तो प्रत्यक्षमें यह सम्बन्ध भी विदित होता है और वस्तुके निजी स्व-रूपमें अपने आपमें ही रहना भी विदित होता है।

सम्बन्ध व सम्बन्धियोंमें भिन्न अभिन्न विकल्प उठानेका व्यर्थ प्रयास—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब शंकाकार कहता है कि देखो सम्बन्ध होता है दो सम्बन्धियोमें। कोई दो पदार्थ हों उनमें सम्बन्ध हुआ करता है तो यह बतलावो कि यह सम्बन्ध नामक वस्तु उन दो सम्बन्धियोंसे भिन्न है या अभिन्न ? अब यहां तीन बातें हो गयी। दो तो सम्बन्धी और एक सम्बन्ध और इनको दो पालीमें रखो–एक ओर सम्बन्ध और दूसरी ओर सम्बन्धी ये दो पदार्थ। तो यह बतलावो कि यह सम्बन्ध उन सम्बन्धियोंसे भिन्न है अथवा अभिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है, सम्बंध और सम्बंधी एकमेक है तो इसका अर्थ हुआ कि वह सम्बंध कुछ न रहा, असम्बंध ही रहा। जब सम्बंधी और सम्बंध परस्पर अभिन्न है तब एक चीज मान लो। भिन्नमें तो दो की सत्ता नही होती। यदि कहो कि भिन्न है सम्बंध उन सम्बंधियोंसे तो सम्बंध रहित पदार्थ सम्बद्ध कैसे कहलायेगा ? जब सम्बंध संबंधियोंसे न्यारा है तो उनका नाम संबंधी भी कैसे पड़ा ? शंकाकार कहता जा रहा है। खैर मान लो कि संबंध कोई भिन्न चीज है तो भी उस एक सम्बंधके साथ उन दोनों सम्बंधियोंका कोई सम्बध है क्या ? उस सम्बंधका उन संबंधियोंके साथ क्या संबंध है ? कोई संबंध सिद्ध नही करसकते क्योंकि यह प्रश्न कर दिया जायगा कि यह संबंध भी सबंध व संबंधियोंसे भिन्न है अथवा अभिन्न दोनोंमें उक्त दोष हैं। इस कारण संबंध सिद्ध नही होता। यदि कहो कि उन दो संबंधियोंमें संबधियोंकी संबंध करने वाला कोई दूसरा सबंध है तो उस दूसरे संबंधका संबंध करने वाला कोई और होगा। फिर तीसरेके लिए और होगा। इससे अनवस्था दोष हो जायगा। इस कारण संबंधियोंमें जो सम्बन्धकी बुद्धि की जाती है वह वास्तविक नही है। पदार्थसे अलग कोई संबंध सम्भव ही नही है। बस सभी पदार्थहैं क्षणक्षणवर्ती, उनके अतिरिक्त सबंध नामकी फिर और कोई चीज नही है। उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस प्रकार सम्बन्धके विषयमें बात बढ़ाना यह वस्तुस्वरूपके प्रतिपादकोंका अभिप्राय न जाननेके कारण है। क्योंकि हम लोग संबंधियोंका संबंध उस प्रकारकी परिणतिसे अतिरिक्त और कुछ नही मानते। जो पदार्थ पहिले देखे हुए रूपसे रहा था वह पदार्थ देखे रूपपनेका परित्याग करके संश्लेष सम्बन्धरूपसे हो जाय, उनमें एकरूप परिणति हो जाय, वह एक पिण्डमें आ जाय, इसके अतिरिक्त और सम्बन्ध नामकी कोई चीज नहीं है जिससे कि अनवस्था दोष आये। यही तो सम्बन्ध है। जो पदार्थ पहिले बिखरे हुए थे वे पदार्थ अब संयोगरूपमें हो जायें, बिखरापन उनका मिट जाय, इसीका नाम तो सम्बन्ध है।

स्वस्वरूपावस्थित पदार्थोंको व्यवहारियों द्वारा कल्पनामिश्रणकी शंका

अब शंकाकार कहता है कि देखो–यहां ३ बातें आयी हैं–२ तो संबंधी और उन संबंधी पदार्थोंसे भिन्न कोई सम्बन्ध तो ये तीनों अपने स्वरूपमें है। संबंध सम्बन्धी सम्बन्धमें वेस्वरूपमें हैं। इस कारणसे एक दूसरेसे मिले हुए वे दोनों स्वयंभाव हैं। संबंध भी अलग, पदार्थ भी अलग। लेकिन एक व्यवहार चलानेके लिए कोई उनको कल्पनामें मिश्रित कर देते हैं, उनको जोड़ देते हैं। इसी कारणसे पदार्थोंमें वास्तविक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संबन्ध न होनेपर भी उस कल्पनापर डट जाने वाले व्यवहारी लोगोंको उन पदार्थोंमें जो भेद हो, अन्यापोह है, उसका विश्वास करानेके लिए क्रिया कारक आदि बताने वाले शब्दोंका प्रयोग करते हैं। जैसे कोई पुरुष कहता है कि देवदत्त उस सफेद गायको डण्डेसे भगा दो ! तो यहां देवदत्त अलग है, गाय भी अलग है, डण्डा भी अलग है। ये सारी चीजें अपने अपने स्वरूपमें हैं। और उनका अर्थ क्या है ? अन्यापोह। डण्डा मायने जो डण्डा नहीं हैं उनसे अलग रहना। गाय मायने जो गाय नही हैं उन सबसे अलग रहना। तो ऐसा जो शब्दका सही वाच्य अन्यापोह है उसको प्रकट करनेके लिए व्यवहारीजन वाच्य बोला करते हैं। और वास्तवमें कारकोंका क्रियाके साथ कोई सम्बन्ध ही नही है। क्योंकि पदार्थ तो सारे क्षणिक हैं। जब उनकी क्रिया है उस कालमें कारक नही है। कारकका सम्बन्ध अलग है, क्रियाका सम्बन्ध अलग है। कारकोंमें जब क्रिया जुड़ ही नही सकती। तब जितने भी वचन व्यवहार हैं एक दूसरेको कुछ बताते हैं। जो वाक्य पद्धति है वह सारीकी सारी केवल एक अन्यापोहको बतानेके लिए है। वह प्रयोग वास्तविक नही है। जितने शब्द हैं वे पदार्थोंका अन्यापोह बतानेके लिए, भावका भेद बतानेके लिए यह गौ समस्त गौन्यारी है। इसके प्रतिपादन करनेके लिए समस्त क्रियाकारक भेदका प्रयोग होता है, वास्तवमें न कारकोंका सम्बन्ध है न क्रियाओंका सम्बन्ध है।

कल्पनासे कारक क्रियाओंका मिश्रण करनेके अतिरिक्त सम्बन्ध कुछ नहीं, इस मन्तव्यकी मीमांसा—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं। शंकाकारने जो यह कहा है कि सम्बन्धी पदार्थ और सम्बन्ध ये तीनोंका वृत्तस्वरूप हैं, एक दूसरेसे अलग हैं। वे स्वयं भावरूप हैं, कल्पना प्रयोजनवश उनमें उनका मिश्रण कर देती है। जैसे अक्षर तो १६ स्वर ३३ व्यञ्जन हैं, पर कल्पना जब उन शब्दोंको मिला देती है तो नाम बन जाता है। ऐसे ही बने हुए जो शब्द हैं उन शब्दोंको कल्पना मिलादे तो वाक्य बन गया। यों लोग वाक्य बोलते हैं। अर्थ तो शब्दोंका अन्यापोह है, पर कल्पनायें करके उनका नाम रखना और उनको वाच्य समझना ये सब हुआ करते हैं। इस शंकाके समाधानमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि सम्बन्ध असिद्ध नही है जिससे कि इस में कल्पनासे मिश्रण करनेकी बात मानी जाय और सम्बन्धकी असिद्धि की जाय। क्रियाकारक आदिक जो सम्बन्धी है अर्थात् एक वाक्यमें कोई कर्ता कारकके प्रयोगमें है कोई कर्मकारकके और कोई क्रियाके प्रयोगमें है तो इन सबंधियोंकी प्रतीतिके लिये और इनके संबंधकी प्रतीतिके लिये उन वाक्योंके अभिधायक जो शब्द हैं उनका प्रयोग किया जाता है। कहीं यह नही है कि शब्दोंका अन्यापोह अर्थ है और वह अर्थ नही है स्वयं जिसके लिए शब्द बोले गए। अन्यापोहका निराकरण तो अभी बहुत विस्तार पूर्वक किया ही गया है और ऐसा भी न सोचना चाहिये कि जब पदार्थ बहुतसे हैं और उन पदार्थोंमें संबंध रहता है तो संबंध भी बहुत हो जायगा सो नही। भले ही पदार्थ दो हैं मगर दोके बीच संबंध एक ही है। जैसे स्वयं क्षणिकवादियोंने माना है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चित्र ज्ञान होता है तो वह नाना पदार्थोंका ज्ञान करता है. किन्तु स्वयं है एक चित्र ज्ञान एक स्वरूप है, नानाकारमय। तो जैसे नाना पदार्थोंसे दो पदार्थोंसे सम्बन्ध होने पर भी चित्रज्ञान एक होता है। इसी प्रकारसे दो पदार्थोंका सम्बन्ध होनेपर भी सम्बन्ध दो न होंगे, सम्बन्ध एक ही होगा।

सम्बन्धोंके कुछ प्रकार -अब शंकाकार कहता है कि तब वह सम्बन्ध किस जातिका है ? यदि दो पदार्थोंमें सम्बन्ध एक ही माना है तो सम्बन्ध सामान्य क्या चीज होती है ? कुछ उसकी खासियत बताना चाहिए कि वह सम्बन्ध क्या कहलाता है ? उत्तर यह है कि सम्बन्ध नाना प्रकारके हुआ करते हैं। किन्हीं पदार्थोंमें कार्य कारण सम्बन्ध होता है किन्हीमें व्याप्य व्यापक संबन्ध होता है किन्हीं पदार्थोंमें पूर्वापर संबंध होता है, किन्हींमें संयोगमात्र संबंध होता है, किन्हींका कथंचित् तादात्म्य संबंध होता है। जैसे अग्नि और धूमका क्या संबंध है ? कार्यकारण संबंध है। यह वृक्ष है क्योंकि नीम न होनेसे। तो इसमें नीमपनेका और वृक्षपनेका क्या सबंध ? व्याप्य व्यापक संबंध है। कल बुधवार होगा क्योंकि आज मङ्गलवार होनेसे। तो इसमें क्या संबंध है ? पूर्वापर संबंध है। जीवमें राग नहो है, वह कभी मिट जायगा तो इस जीवसे रागका क्या संबंध ? कथंचित् तादात्म्य संबंध है ? जिस कालमें राग होता है उस कालमें जीवमें तादात्म्यरूपसे बन रहा है। संबंघ अनेक होते हैं।

कार्य कारणभाव; सम्बन्धकी शंकाकार द्वारा आलोचना— शंकाकार कहता है कि उन संबंधोंमें एक कार्य कारण संबधकी ही चर्चाकर लीजिए। कार्य कारण संबंध कुछ हो ही नही सकता, क्योंकि कार्य कारण दोनों एक साथ नही रहते जिस कारणसे कार्य होता है वह कारण पहिले है, उसका कार्य बादमें है। जैसे अग्नि से धुवां होता है तो अग्नि पहले है धुवां उसके बाद उत्पन्न हुआ। तो जो चीज एक साथ नही हैं, क्रमसे हो रही हैं तो क्रमसे होने वाली चीजोंमें संबंध कैसे आ सकता ? क्योंकि जब कार्य हुआ तब कारण न रहा, जब कारण था तब कार्य नही है। संबंध तो दोमें हुआ करता है। दो तो कभी हो ही नहीं सकते, हमेशा एक ही रहेगा। कार्य कारण एक साथ नही होते क्योंकि वे क्षणिक हैं। तो क्षणिक होनेके कारण भी कभी भी एक साथ कार्यकारण हो ही नही सकते। वैसे भी कारण कार्य एक समयमें नही होते और फिर जब प्रत्येक वस्तु क्षणमात्र ही ठहरती है तो कार्य होनेपर तो कारण ठहर ही नही सकता। और, संबंध होता है दोमें तो दोमें रहने वाला संबंध पदार्थोंमें कार्यकारणरूपसे नही रहता। कारणके समय कार्य नहीं, कार्यके समय कारण नही। और एक साथ दोनोंको मान लिया जाय तो उनमें कार्यकारणपना नही बनता। जैसे बछड़ेके शिरपर दो सींगें उगते हैं एक साथ ही ना तो उसमें कौन कार्य है और कौन कारण है ? कोई भी नही। एक साथ रहने वाली चीजोंमें कार्य कारणका विभाग नही बना सकते। इस कारण कार्यकारण भाव एक साथ रहने वाले दो पदार्थोंमें

होता नही। फिर सम्बन्ध कैसे उनमें रह सकता है ? समस्त पदार्थ एक एक हैं। अकेले अकेले हैं, उनमें सम्बन्ध कभी बन ही नहीं सकता।

कार्य कारणमें क्रमसे सम्बन्ध लगनेकी असिद्धिका शंकाकार द्वारा आरेकन—कदाचित् यह कहो कि कार्य और कारणमें क्रमसे सम्बन्ध हो जायगा। सम्बन्ध पहिले कारणमें लग गया और जब उसका काम निपटा चुके तब सम्बन्ध कार्यमें लग जायगा। ऐसा क्रमसे भी सम्बन्ध नहीं लगा करता। क्योंकि क्रमसे भी अगर सम्बन्ध नामक भाव लें तो एक जगह जब सम्बन्ध लग रहा है तो कार्यमें सम्बन्ध नहीं लग रहा। कार्य कायकी अपेक्षा नहीं कर रहा। वह सम्बन्ध कार्यसे निस्पृह हो गया और मान लो कार्यमें सम्बन्ध लग रहा तो उस समयमें वह सम्बन्ध कारणसे निस्पृह हो गया तब सम्बन्ध बन ही नहीं सकता। एकमें सम्बन्ध क्या ? तो कार्यकारणके अभाव होनेपर भी सम्बन्ध तुम मान रहे हो तो इसका अर्थ है कि एक में ही सम्बन्ध हो गया सम्बन्ध एकमें नही रहा करता। यदि कहो कि कार्य और कारणमेंसे एक किसीकी अपेक्षा करके और अन्यमें संबंध क्रमसे रहा आयेगा तो इसमें अपेक्षा भी हो गई। इस कारणसे दोमें रहने वाला भी बन गया। यह भी बात यों युक्त नहो है फिर तो जितनी अपेक्षा की हैं कार्य अथवा कारण जिसकी अपेक्षा कीगई है वह उपकारी होना चाहिए तब तो अपेक्षा की जाय। कोई भी पुरुष किसीकी अपेक्षा करता है तो किसी प्रकार वह उपकारी हो तब तो उसकी अपेक्षा की जाती है। अब यहाँ सम्बन्ध रह तो रहा एकमें और अपेक्षा रख रहे दूसरेकी भी। जैसे सम्बन्ध रह तो रहा कार्यमें और वह कारणकी अपेक्षा रख रहा तो कारण उस संबध का कुछ उपकारी हो तब तो अपेक्षा करना ठीक है अथवा कारणमें संबंध रह रहा, कार्यकी अपेक्षा कर रहा। तो कार्य उस सम्बन्धका कुछ उपकारी हो तब तो अपेक्षा बनेगी। सो वह उपकार बताओ क्या है ? वह भिन्न है अथवा अभिन्न है ? इन विकल्पोंमेंसे भी न टिक सकेंगे। और, फिर जब उपकार कुछ रहा ही नहीं अथवा कारण के समयमें कार्य नही और कार्यके समयमें कारण नही और सम्बन्ध रह रहा एकमें तो जिस दूसरेकी वह अपेक्षा कर रहा है वह तो असत् है। तो जो स्वयं असत् है वह उपकार कैसे करेगा ? असत्‌में सामर्थ्य नहीं है कि वह उपकार कर सके। नही तो गधेके सींग, आकाशके फूल ये भी उपकार करने लगें। ये असत् हैं, असत्‌में क्या काम हो सकता है ? तो जब कारणके समयमें कार्य नही है तो कारणमें रहने वाला संबंध कैसे कार्य द्वारा उपकृत हो जाय ? अथवा कार्यमें रहने वाला सम्बन्ध कैसे कारण द्वारा उपकृत हो जाय ? इससे कार्य कारण नामका सम्बन्ध कुछ भी नही है।

कार्यकारणभावके निर्णयका आधार—अब इस शंकाका उत्तर देते हैं कि कार्य कारणभावके निषेध करनेके लिए जो भी अभी कहा है कि सुननेमें तो बड़ दिलचस्प लग रहा है लेकिन वह सब बिना बिचारे ही कहा गया है। हम लोग कार्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारणभावका साधन एक साथ होना, क्रमसे होना इसे नही मानते, अर्थात् कार्य एक साथ हो तब कार्य कारणपना बने यह भी नही होता। कोई चीज क्रमसे हो तब कार्य कारणपना बने यह भी नही मानते। कार्यकारण सम्बन्धकी निर्भरता, सहभाविता और क्रमभावितापर नही है, किन्तु इस नियमपर है कि जिसके होनेपर नियमसे जिस की उत्पत्ति हो वह उसका कार्य है और दूसरा कारण है। अब उसमें चाहे पदार्थ एक साथ होते हैं अथवा क्रमसे, सबमें एक नियम लगेगा कि जिसके होनेपर जिसकी उत्पत्ति निश्चित् हो वह तो है उसका कार्य और दूसरा है कारण। सो देखो! कोई कारण तो सहभावी भी हो जाता है और कोई कारण कार्यक्रमभावी भी हो जाता है, जैसे घटका कारण क्या? मिट्टी, द्रव्य, दण्ड चक्र आदिक। तो ये सहभावी कारण हो गए। देखो! जिस समय घट बन रहा है उस समय बराबर मिट्टी है कि नही? है। और दण्ड चक्र आदिक भी हैं। तो कोई कारण तो सहभावी होता है पर उनमें यह नियम तो जरूर पाया जायगा कि समर्थ कुम्हार, व्यापार, दण्ड, चक्र, मिट्टी आदि के होनेपर घट बनता ही है तो कार्य कारणभाव बननेका साधन न सहभावित्व है न क्रमभावित्व है, किन्तु यह नियम है कि जिसके होनेपर जो कार्य हो उनमें कार्यकारण-पना बनता है। और देखिये! कोई कारण कार्यभाव क्रमभावी भी होते। जैसे पूर्व पर्याय उत्तरपर्यायका कारण है। जैसे बचपन होना जवानीका कारण है तो बचपन जवानी एक समयमें तो नही हैं, क्रमसे है, मगर कारण कार्यपना सही बैठ रहा कि नही? ९ वर्षकी उम्र हो जानेका कारण ८ वर्षकी उम्र हो जाना है। कोई चीज ८ वर्षकी नही बन पायी तो ९ वर्षकी कैसे बनेगी? तो कोई कार्य कारणभाव क्रमभावी पदार्थोंमें हुआ करता है तो कार्य कारणभावकी निर्भरता सहभावित्व और क्रम-भावित्वपर नही है, अपने अन्वय व्यतिरेकपर है कि जिसके होनेपर कार्य देखा गया और जिसके न होनेपर कार्य न देखा गया, उनमें कार्यकारण सम्बन्ध मान लिया।

कार्यकारण भावका परिज्ञान—प्रश्न—इस बातका परिज्ञान कि यह इसके होनेपर हुआ, इसके न होनेपर न हुआ, इसका परिज्ञान करता कौन है? यह आत्मा ही करता है और वह तर्क नामक ज्ञानकी सहायतासे करता है। इन विचारोंके द्वारा करता है कि प्रत्यक्षसे जहाँ विदित हुआ कि इसमें होनेपर देखो यह हुआ ना या अभाव से विदित हुआ कि इ के न होनेपर यह नही हुआ है तो ऐसे अन्वय व्यतिरेककी सहायता लेकर अन्वयव्यतिरेकसे दृष्टान्तोंकी सहायता लेकर आत्मा ही निर्णय करता है। सो जो नियत विषय है उसको तो एकदम प्रत्यक्षसे ही जान लेता है और जो अनियत विषय है जिसे पहिले पुन: पुन: समझा नही उसमें तर्ककी सहायता लेकर हम परिज्ञान कर लेते हैं। एक ही यह प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष–उपलम्भ शब्दने कहा गया है, अर्थात् जिसके होनेपर होना और न होनेपर न होना, यह बात तो इसकी है मगर इसको हमने प्रत्यक्षसे जान लिया। जैसे इस कमरेमें चौकी रखी है, यह प्रत्यक्षसे जानते हैं और इस कमरेमें दरी नही है यह भी हम प्रत्यक्षसे जान रहे तो एक ही प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अनुपलम्भ शब्दसे कहा गया है और वह क्या प्रत्यक्ष है, कार्य कारण भावके सम्बन्धमें जो विषयभूत हुआ है वही प्रत्यक्ष है, कार्यकारण रूपसे प्रत्यक्ष है। वही प्रत्यक्ष भिन्न जो अन्य वस्तु है जहांपर कार्य कारणभाव नही पाया जाता है उस व्यतिरिक्त वस्तु विषयक जो विषय है वह अनुपलम्भ शब्दसे कहा गया है जैसे अनुमान बनाया कि यहाँ अग्नि होनी चाहिए, धूम होनेसे। जैसे रसोई घर। तो रसोई घर में तो अग्नि और धूम दोनोंका विधिरुप प्रत्यक्ष हो जहाँ अग्नि नही होती वहाँ धुवां भी नही होता। जैसे तालाब। तो यहाँ उसका व्यतिरेक–अनुपलम्भ द्वारा ज्ञान हुआ है। उसमें रूपक वह बनता है कि धुवाँ अग्निजन्य है। यदि अग्नि होनेसे पहिले भी उस जगह धुवां हो जाता या अन्य जगहका धुवा आ जाता तो वह धुवाँ अन्य पदार्थोंके कारणसे हुआ कहलाता पर यह बात तो प्रत्यक्ष विदित है कि धूम अग्निसे ही उत्पन्न होता है इस कारण कार्य कारण प्रत्यक्षसे सिद्ध है।

प्रागसत्त्व, अन्यक्षेत्रसे अनागम व अन्याहेतुक होकर उपलब्धि होनेपर कारण कार्यभावका आगम—शंकाकार कहता है कि कोई चीज पहिले उपलब्ध न हो और किसी चीजके आनेपर या सन्निधानके बाद उपलब्ध हो जाय उसीको तो कहते हो कि यह कार्य है और वह कारण है, कार्य तो पहिले न था और कारणके आनेपर या किसी चीजके आनेपर कार्य उपलब्ध हो गया इससे ही तो तुम कारण कार्यकी व्यवस्था बनाते हो, तो इस तरह मान लो किसी कुम्हारके घरमें गधा तो न था और कुम्हारके सन्निधानके बाद वहां गधा उपलब्ध हो गया तब फिर गधा कुम्हार का कार्य हो जाना चाहिये। उत्तर देते हैं कि ऐसी कुयुक्ति लगाना ठीक नही है। यदि ये तीन बातें वहाँ निश्चित हों तो कुम्हारका कार्य भी गधेको कह दें। वे तीन बातें क्या कि कुम्हारके सन्निधानसे पहिले गधेका न रहना, दूसरी बात–अन्य देशसे न आना, तीसरी बात–दूसरा कुछ भी इसका कारण न होना, ये तीन बातें होती, तो यह भी कह सकते थे कि गधा कुम्हारका कार्य है। इन तीन बातोंमें कदाचित् यह मान लीजिए कि कुम्हारके सन्निधानसे पहिले गधा न था, मगर अन्य जगहसे न आया हो और उसके अन्दर कोई कारण न हो यह बात तो वहाँ सम्भव नही, इस कारण गधा कुम्हारका कार्य नही बनता।

ज्ञानावरणका क्षयोपशम विशेष, साधनोपलब्धि व अभ्यासके बलसे कार्य कारणभावका अवगम – अब शंकाकार कहता है कि भिन्न पदार्थोंको ग्रहण करने वाले दो प्रत्यय हैं जैसे अग्नि और धूमको जाना तो अग्निको भी प्रत्यक्ष कर लेने वाला एक ज्ञान और धूमको भी प्रत्यक्षमें लेने वाला एक ज्ञान। यों दो ज्ञानोंसे भिन्न भिन्न पदार्थोंका ग्रहण होता है तब बतलावो कि एक बारमें तो एकका प्रत्यक्ष हुआ तो दूसरेका ग्रहण तो नही हुआ जैसे मान लो कारणका प्रत्यक्ष हुआ तो कार्यका तो नही ग्रहण हुआ। कार्यका प्रत्यक्ष हुआ तो कारणका ग्रहण नही हुआ क्षणिकवादमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो क्षणिक पदार्थ होनेके कारण एक कालमें कार्य कारण हो ही नहीं सकते। जब कार्य कारण होगा तो कारण नष्ट हो चुका होगा। जब तक कारण है तब तक कार्य की सत्ता ही नही है। तो एक पदार्थका प्रत्यक्ष होनेपर दूसरा तो ग्रहणमें न आया, और जब दूसरा ग्रहणमें न आया तो उसमें कारणता या कार्यताका ज्ञान कैसे हो सकता है ? क्योंकि कार्यत्वका ज्ञान कारणकी अपेक्षा रखता है और कारणताका भी ज्ञान कार्यकी अपेक्षा रखता है। यह कारण है तो किसका ? कुछ तो जवाब देना ही होगा। यह कार्य है तो किसका ? कुछ तो जवाब देना ही होगा। तो कार्य कारण पना सिद्ध नही होता। उत्तर देते हैं कि जिन मनुष्योंके क्षयोपशम विशेष है उस सम्बंध का ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, योग्यता है, तो ऐसे पुरुषोंको जब धूम ज्ञान हुआ तो धूमका उपलब्धि होनेपर अभ्यासकी वजहसे चूँकि पहिले बराबर इसको समझ रखा है कि धूम और अग्निका कार्य कारण सम्बन्ध है। जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि होती है। अग्निके अभावमें धूम नही हो सकता, इन परिज्ञानोंका बहुत अभ्यास उसे रहा, उसकी वजहसे इस विशिष्ट ज्ञान वाले पुरुषका धूम मात्रके उपलम्भ होनेपर भी यह ज्ञान हो जाता है कि यह धूम अग्निजन्य है। यदि ऐसा न होता याने क्षयोपशम भी हो और साधनकी उपलब्धि भी हो और अभ्यास भी हो फिर भी वह कारण कार्यका बोध न कर सके तो कभी अग्निका अनुमान बन ही न सकेगा, क्योंकि भाप आदिक पदार्थोंसे विलक्षण यह धूम है, इसका भी अवधारण न हो सकेगा। जब अग्नि का अनुमान न बन सका तो अग्निका ही क्या, बात तो सभी साध्य साधनकी एक सी है। कुछ भी अनुमान न बन सकेगा। फिर तो सारे व्यवहार खतम हो जायेंगे। इस कारण यह मानना चाहिए कि ऐसा आत्मा जिसने कि पहिले किसी पदार्थको कारण रूपसे समझ रखा था तो कारण रूपसे अभिमत पदार्थको जाननेका परिणाम न छोड़ते हुए आत्माके द्वारा कारण कार्यके स्वरूपकी प्रतिति होती ही है। जैसे कि चित्र ज्ञान में माना है कि नीलादिक आकारोंमें व्यापकर रहने वाला जो एक ज्ञान है, चित्र ज्ञान है उसके स्वरूपकी प्रतीति जैसे मान लेते हैं क्षणिकवादी लोग है तो आकार बहुत का और उन बहुतोंमें भी एकका बोध कर लेते हैं तब कारण और कार्य इन दो पदार्थों के बीच यदि कार्य कारण सम्बन्धका ज्ञान कर लेवें तो इसमें कौन सी आपत्ति है ?

कार्यकारणभावके अवगमका अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग कारण — अब शङ्काकार कहता है कि कोई आदमी जैसे नारिकेल द्वीप आदिकमें बसने वाले हों और वहाँ अकस्मात् धुवां दिख जाय तो वह पुरुष ऐसे द्वीपमें रहता था कि जहां धुवाँ और आग्नके साधन न थे जैसे आजकल भी कई स्थान हैं कि जहां रोटी अन्न, अग्नि धुवां इनका दर्शन ही नही है केवल पानीकी जगह बरफोंपर रहने वाले लोग हैं ऐसे पुरुषोंको धुवाँ दिख जाय अग्नि दिख जाय तिसपर भी कार्य कारणभावका निश्चय तो नही होता, इससे जाना जाता है कि कार्य कारणभाव अवास्तविक है। यदि वास्तविक होता, वस्तुमें रहने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाली बात होती तो वस्तु तो दिख गई और वस्तुका धर्म न दिखे, कार्य कारणभाव न दिखे यह कैसे हो सकता है ? अब इसका समाधान करते हैं कि कार्य कारणभावका निश्चय आ जाय इस निश्चयके लिये पहिले बाह्य कारण क्या है और अन्तरङ्ग कारण क्या है ? इसे तो समझलो ! बाह्य कारण और अन्तरङ्ग कारण क्या है इसे समझ लेनेपर फिर उसका निश्चय कर लेना आसान होगा। कार्य कारणभाव भी समझका अन्तरङ्ग कारण तो है क्षयोपशम विशेष उस कार्यकारणभावावरण कर्मका क्षयोपशम हो। और. बाह्य कारण है कारणके होनेपर कार्यके होनेका बहुत बार अभ्यास। जैसे कि अकार्यकारणभावके जाननेका बाह्य कारण है अतद्भावभवित्व जिसके न होनेपर भी जो हो जाय, यही तो उनका अकार्यकारण भाव है। जैसे घड़ेके न होनेपर भी कपड़ा देखा जाता बुना जाता तो मालूम हुआं कि घड़ेका और कपड़ेका कार्यकारण-भाव नहीं है. और जिसके होनेपर जो बात होती हुई बारबार ज्ञानमें आये उसका अभ्यास बन गया कि हां, इसका यह कार्य है। तो बाह्य कार्य तो है, उसके होनेपर दूसरेका होना, इस बातका अभ्यास बना रहे। जिसे प्रकृत शब्दोंमें कहो — कारणभूत पदार्थोंके होनेपर कार्यभूत पदार्थका होना इसका जिसे अभ्यास हो वह तो है बाह्य कारण और तत्सम्बन्धी ज्ञानावरणका क्षयोपशम विशेष हो यह है अन्तरङ्ग कारण तो अन्त: कारण और बाह्य कारण न होनेसे कहीं भी उनके कार्य कारण भावका अथवा अकार्य कारणभावका निश्चय नहीं हो सकता।

सर्वथा अकार्यत्व व अकारणत्व होनेपर वस्तुके असत्त्वका प्रसङ्ग — अब शंङ्काकार कहता है कि धूमादिक कार्यभूत पदार्थोंका ज्ञान कराने वाली सामग्री मात्रसे उसके कार्यत्वका निश्चय नहीं होता इस कारणसे धूम आदिकका कार्यत्व आदि स्वरूप नहीं है अर्थात् धूम आदिकका ज्ञान हुआ, उसे हम नेत्रोंसे निरखते सो धूम ज्ञान को उत्पन्न करने वाली सामग्री है आँख। तो उस आंखके व्यापारसे धूमका तो ज्ञान हो गया, पर यह धूम अग्निका कार्य है या किसका कार्य है, ऐसा कार्यत्वका ज्ञान तो आँखसे नहीं हुआ ना, तो धूम आदिकका स्वरूप कार्यत्व नहीं है। उत्तर देते हैं कि ऐसी ही बात तो क्षणिकत्व आदिकके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। क्षणिक पदार्थोंका ज्ञान करानेकी जो सामग्री है, जिस व्यापारसे हमने किसी पदार्थका ज्ञान किया तो उस ही सामग्रीसे क्षणिकत्वका ज्ञान नहीं होता। तब तो पदार्थोंका क्षणिकों का क्षणिक स्वरूप न रहेगा। यदि कहो कि वाह ! यदि पदार्थोंका, क्षणिकोंका क्षणिकत्व स्वरूप न रहा सो वह वस्तु ही न रहेगी। तो कहते हैं कि यह बात और जगह भी कही जा सकती है कि अगर कोई पदार्थ सर्वथा अकार्य हो और अकारण हो तो वह वस्तु ही नहीं ठहर सकती। लोकमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो किसी प्रकार बने अथवा न कार्य बने। ऐसा कुछ तो ज्ञानमें भी न आ सकेगा। असत् जो कार्य भी नहीं, कारण भी नहीं वह है ही नहीं। तो इससे धूम आदिक देखे गए उस की सामग्री है भिन्न। नेत्रने जाना और यह धूम कार्य है, अग्नि कारण है, इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिज्ञान करने वाला है मानसिक ज्ञान, तर्क प्रमाण। इससे पदार्थमें कार्यत्वका और प्रमाणत्वका कोई विरोध नही है।

पदार्थोंमें स्वरसतः कारणत्व व कार्यत्वकी शक्ति—यह बात भी नही है कि अनुत्पन्न कार्यका ही कार्यत्व धर्म हो अर्थात् जो न उत्पन्न हो ऐसे ही कार्यमें एकत्व पाया जाय उसका कार्यत्व बनाना भी धर्म है यह बात नही कह सकते, क्योंकि असत् होनेसे। अनुत्पन्नमें कार्यत्व नही बता सकते। अगर अनुत्पन्नमें कार्यत्व बताने लगें तो खरगोशके सींग आदिकमें भी कार्यत्व धर्म कह लीजिए और यह भी नही कह सकते कि उत्पन्न पदार्थका वह भिन्न है कार्यत्व, क्योंकि कार्यत्व तो उस पदार्थका धर्म है। कोई दो सद्भूत पदार्थ नही हैं कि कार्यभूत पदार्थ अपनी सत्ता अलग रखते हों और आर्यत्व नामक धर्म अपनी सत्ता अलग रखता हो, तो कार्यत्वकी पदार्थसे एकता है भिन्नता नही है और इस प्रकार कारणका कारणत्व भी एकान्तरसे भिन्न नहीं है, और वह कार्यत्व और कारणत्व जब पदार्थसे अभिन्न है तो पदार्थका ग्रहण करने वाले प्रत्यक्षके ही द्वारा वह कार्यत्व और कारणत्व भी समझ लिया जाता है। थोड़ा उसमें विचार और रखना पड़ता है। जैसे पदार्थको जानकर व्यक्ति स्वरूप जान लिया जाता है ऐसे ही कार्यत्व और कारणत्व भी जान लिए जाते हैं। तथा ऐसा देखा भी जाता है कि प्याससे व्याकुल जिसका चित्त हो रहा है ऐसा पुरुष अन्य पदार्थोंका व्यवच्छेद करके प्यासकी वेदना मिटानेमें समर्थ जलमें ही प्रत्यक्षसे प्रवृत्त होता है। तो अब देखिये—सब समझ बनी हुई है, प्यासकी वेदना है तो यह वेदना जलसे मिटेगी। जल कारण है इस वेदनाके मिटनेका और तभी अन्य पदार्थोंपर दृष्टि न देकर उनको अलग करके, उपेक्षा करके केवल जलको ही ग्रहण करनेका यत्न करता है। तो इससे क्या निर्णय हुआ उस पुरुषको कि जलमें ऐसी शक्ति है कि प्यासको बुझा सके तो उस कारणकी शक्तिकी प्रधानता उसके ज्ञानमें है ना, तब तो उस कारणको खोज निकालता है, सो उसकी शक्ति है। शक्तिकी प्रधानतामें कार्य देखा गया उससे निश्चय हुआ कि यह कारण है क्योंकि उस जल आदिक कारणके बिना इसकी यह पिपासा मिटने रूप कार्य नही बन सकता। इससे सिद्ध है कि विचार तर्क आदिक ज्ञानोंकी सहायता लेते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान ही जाने हुए पदार्थमें कार्यपने और कारणपनेका निश्चय कर लेता है। यहां कार्य कारण सम्बन्धका नाम क्यों आया कि मूल प्रकरण तो यह था कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है और उसमें सामान्यका खण्डन क्षणिकवादी कर रहा है। सामान्यके वर्णनमें यह आया कि स्थिर स्थूल अथवा सामान्य पदार्थ जाना जाता है तो स्थूलता होती है सम्बन्धसे, अनन्त अणुवोंका सम्बन्ध होनेपर स्थूलता आती है। तो सम्बंधका निराकरण शंकाकारने पहिले करना चाहा, उसी सिलसिलेमें सम्बन्ध बनानेका निराकरण शंकाकार कर रहा है अथवा सम्बन्ध विशेषका यह कार्य कारण भाव नामक सम्बन्धकी चर्चा है। कार्य कारण भाव आबाल गोपाल मनुष्योंके चित्तमें बसा हुआ है सो कार्य कारण सम्बन्ध भी है, अन्योन्य प्रवेश सम्बन्ध भी है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और इसी कारण पदार्थ नित्य माना गया है, स्थूल माना गया है और सदृश माना गया है।

पदार्थोंमें स्वरूपतः कार्यकारणत्व—पदार्थ परस्पर एक दूसरेके कार्य और कारण होते हैं उनमें जो यह कार्य कारण पना है सो स्वरूपसे कार्य कारणपना न हो तो उनमें कार्य कारण भाव कभी सम्भव ही नही हो सकता। पदार्थ है पहिले और बादमें किसी भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंमें कार्यकारणता की जाती हो सो बात नही है। कोई भिन्न सम्बन्ध नही मान रहे हैं कि वह सम्बन्ध जब पदार्थोंमें जुड़े तो पदार्थ कार्य कारण कहलाये। पदार्थका ही स्वरूप इस प्रकारका है। यदि कोई भिन्न सम्बन्ध नामका पदार्थ सम्बन्धी पदार्थोंमें जुटकर कार्य कारण भावको बना देनेकी बात होती तो बतलाओ कि उस भिन्न सम्बन्धके द्वारा क्या अभिन्न कार्य कारणपना किया जाता है या भिन्न किया जाता है? यदि उस भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंकी अभिन्न कार्य कारणताकी जानेकी बात कहो तो इसमें विरोध आ गया परस्पर। अभिन्न है तो भिन्न सम्बन्धके द्वारा कहा जा सकता और भिन्न सम्बन्धके द्वारा यदि कार्य कारणता की जाती है तो वह अभिन्न कैसे रही? तो भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंकी अभिन्न कार्य कारणता नही की जा सकती इसी तरह भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंको भिन्न कार्य कारणता मानोगे तो अर्थ यह हुआ कि वे पदार्थ स्वरूपसे ही कार्य कारण हो गए। तो यहाँ किसीने कार्य कारणपना थोड़े ही रख दिया। उनके स्वरूपमें ही ऐसा है। अग्निका ढंग ही ऐसा है कि उसमें धूम उत्पन्न होता है उस बातको बताया जाता है, कहीं कार्य कारणपना उत्पन्न नही किया जाता। तो जब स्वरूपसे ही पदार्थ कार्य कारण रूप है तो उनमें किसी भिन्न सम्बन्धकी कल्पना इससे क्या प्रयोजन है? पदार्थकी कार्य कारणता स्वतः सिद्ध है। जो जैसा है, जिस प्रकार बर्त रहा है उस ही में कार्य कारणपनेकी बात विदित होती है।

पूर्वापरापेक्ष क्षणिकत्वके ज्ञानकी तरह पूर्वापर पदार्थोंमें कार्यकारण भावका अवगम—अब शंकाकार कहता है कि कार्यके ज्ञान न होनेपर कारणमें कारणताका ज्ञान कैसे हो जायगा? जब यह पता हो कि यह कार्य है तब तो कारणकी कारणताका ज्ञान होगा कि यह कारण है क्योंकि कार्यकी प्रतिपत्ति होनेपर ही कारण की कारणता जानी जाती है। कारणकी कारणताका ज्ञान कार्यके ज्ञानकी अपेक्षा रखता है। उत्तर देते हैं कि इस तरह फिर पूर्व और उत्तर क्षण के ज्ञान न होनेपर मध्य क्षणका ज्ञान कैसे हो जायगा? अर्थात् यह वर्तमान क्षण पूर्व क्षणसे पृथक् है और उत्तर क्षणसे पृथक है ऐसा ही तो क्षणिकवादमें ज्ञान किया जाता है तो उसका ज्ञान कैसे हो जायगा? क्षणिकत्वका ज्ञान भी फिर सम्भव नही हैं क्योंकि क्षणिकत्व में यह समझा जाता है कि यह वर्तमान क्षण पूर्व क्षणसे निराला है और उत्तर क्षण से निराला है। तो देखो वर्तमान क्षणके क्षणिकत्वको जाननेके लिए पूर्व और उत्तर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणके जाननेकी अपेक्षा रही कि नही ? रही। फिर तो ऐसा सिद्धान्त बनाना कि ये योगी देखते हुए क्षणिकको ही दिखते हैं, असंगत रहा। अरे ! क्षणिकत्वको समझने के लिए अब तो पूर्व और उत्तर क्षणोंके ज्ञानकी अपेक्षा हो गई। यदि शंकाकार यह कहे कि पदार्थ मध्यक्षणके स्वभाव वाला हुआ करता है अर्थात् क्षणिक हुआ करता है पूर्व और उत्तर क्षणसे प्रथक हुआ करता है, इस कारणसे पूर्व और उत्तर क्षणसे व्यावृत्त होकर रहने वाले मध्यक्षणका जो ज्ञान ग्रहण करता है उसी ज्ञानसे पूर्व और उत्तर क्षणोंकी भी प्रतिपत्ति हो जाती है। तो उत्तरमें कहते हैं कि यही बात तो प्रकृतमें है कि कार्यकी उपादान शक्ति कारण स्वभाव वाली है, इस कारणसे उस कारणको ग्रहण करने वाले ज्ञानके ही द्वारा कार्यका भी ज्ञान हो जाता है। जैसे कि पूर्व और उत्तर क्षणकी व्यावृत्ति मध्य क्षण स्वभावरूप है सो मध्यक्षणके जान लेनेसे पूर्व और उत्तर समयके क्षण भी जान लिए जाते हैं। यहाँ क्षण शब्द सुनकर इस तरहकी दृष्टि बनाना कि जैसे पर्याय होती है। वर्तमान पर्याय कब जानी जाती है ? जब यह समझमें आये कि यह पूर्व पर्यायसे अलग है और उत्तर पर्यायसे अलग है। ऐसे ही क्षणोंमें दृष्टि लगाकर कहा जा रहा है। और कार्यका ज्ञान तो प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोंकी सहायता लेकर आत्मा जानता ही रहता है इससे कार्यकारणका बराबर ज्ञान भी रहता है और उनमें स्वरूपसे कार्यकारणपना बना हुआ है। ऐसा नही है कि कोई सम्बन्ध अलगसे इन पदार्थोंमें जुटाया जाय जिससे कि यह कार्यकारण कहाये।

शक्ति और कार्यकारणभावका अवगम—दूसरी बात यह है कि यदि शङ्काकार यह कहे कि कार्यका निश्चय न होनेपर शक्तिका भी निश्चय नही होता तो इस तरह कील आदिक पदार्थोंका भी निश्चय न हो सकेगा। क्षणिकवादमें रूपरस-गंध स्पर्शादिक पदार्थ नही माने गए। जो रूप है बस वही पदार्थ है। जो रस है वही पदार्थ है जो गंधादिक हैं वही पदार्थ है। जैसे कि आज कलके कुछ वैज्ञानिक लोग शक्तिको पदार्थ मानते हैं कि बस जो इनर्जी है वही निरपेक्ष वस्तु है और उन शक्तियोंके मेलसे प्रयोग करना माना है। पर यह विदित नही है कि अणु कितने सूक्ष्म होते हैं। शक्तिक निराधार नही होती कि पदार्थ ही न हो और शक्ति कुछ वस्तु हो। वैज्ञानिकों की दृष्टि प्रयोगके कालमें शक्तिपर अधिक रहती है क्योंकि शक्तियोंके हिसाबसे, मेलसे तो वे अपना विज्ञान बनाते हैं, तो चूँकि उनके चित्तमें शक्तिकी प्रधानता रहती है तो वे पदार्थ कुछ नही मानते। पर यह बात सही नही है, इसी तरह क्षणिकवादी लोग भेद प्रिय होनेके कारण रूपको अलग पदार्थ, रस, गंध, स्पर्श आदिकको अलग पदार्थ मानते हैं। कोई एक वस्तु है वह रूपरस गंधादिमय है ऐसा वे स्वीकार नही करते। तो कार्योंका निश्चय न होनेपर शक्तिका भी अनिश्चय करने वाले शंकाकारके यहाँ यह कहा जा सकेगा कि नीलादि ज्ञानका निश्चय न होनेपर नीलादिकका भी निश्चय न होगा, क्योंकि जो ही शक्तिका कार्य है वही नीलादिकका कार्य है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्य कारणभावके परिज्ञानकी यत्नपरीक्षितता—शंकाकारने जो पहिले एक उलहना दी थी। कि देखो—एक ईंधन आदिकसे उत्पन्न होने वाली अग्नि है और एक मणि आदिकसे उत्पन्न होने वाली अग्नि है, पर देखो—एक जगहसे धुवाँ निकल रहा है और दूसरी जगहसे नही निकलता तब इससे कार्य कारणभाव निश्चित तो न रहा। उत्तरमें कहते हैं कि ईंधनसे उत्पन्न हुई अग्निका स्वरूप न्यारा है और मणि आदिकसे उत्पन्न हुई अग्निका स्वरूप न्यारा है। तो वहाँ यह निश्चय होता है कि ईंधन आदिक जन्य अग्नि है क्योंकि धुवाँ होनेसे। अब यह जानकार पुरुषपर निर्भर है कि उसका विचार सही बना ले। बड़े यत्नसे परीक्षित किया हुआ जो कार्य कारण भाव है उसका उल्लंघन नही होता अन्यथा यह बतलावो कि वीतराग और सरागकी व्यवस्था आप कैसे बनाओगे ? क्योंकि बाहरी चेष्टा तो दोनोंके अनेक अंशोंसे मिलती जुलती हैं। कोई सराग पुरुष भी जप तप कर रहा है, कोई वीतराग साधु भी जप तप कर रहा है तो वहाँ आप यह व्यवस्था कैसे बनायेंगे कि यह वीतराग है और यह सराग है अथवा यह मरा है यह जीवित है यह व्यवस्था कैसे बनाओगे ? यदि कहो कि उनका व्यापार व्यवहार आकार विशेष किसीमें तो ऐसा पाया जाता कि वह चेतनका कार्य जचता तो वहां हम समझ लेते हैं कि इस जीवित शरीरमें चेतन है, क्योंकि इस तरहका व्यापार आकार विशेष पाया जा रहा है, परन्तु मृत शरीरमें उस तरहका व्यापार आकार विशेष नही पाया जाता, इससे जान जाते कि यह मृत है। कहते हैं कि यही व्यवस्था तो यहाँ लगा दी जाती है आकार आदिक विशेषसे यह समझ लिया जाता कि यह ईंधन प्रभव अग्नि है और यह मणि आदिक प्रभव अग्नि है।

अकार्यकारणभावमें भी शंकाकार द्वारा विकल्पित सह भावित्व व क्रमभावित्व आदि विकल्पोंकी आपत्ति करके भङ्ग करनेका प्रसंग—अब यह भी देखिये कि जितने भी दोष दिए हैं शंकाकारने वे सब दोष अकार्य कारणभावमें भी लग जाते हैं। हाँ दो प्रसंग हो गए अब सामने एक तो कार्य कारणभावकी मान्यता कोई पदार्थ कार्य है कोई दूसरा पदार्थ कारण है और एक अकार्यकारणभाव याने कारण कार्यपना कुछ नही है ऐसा समझनेका सिद्धान्त। सो जैसे कार्य कारण भाव की सिद्धी मिटानेके लिए विकल्प दिये थे कि बताओ—कार्य कारण भाव सहभावी पदार्थोंमें है या क्रमभावी पदार्थोंमें है, क्योंकि सम्बन्ध तो दोमें रहा करता है ना तो यों ही अकार्य—कारणमें भी पूछा जा सकता है कि अकार्य कारणभाव सम्बन्ध क्या सहभावी पदार्थोंमें है या क्रमभावी पदार्थोंमें है। अर्थात् इसमें कार्य कारणपना नही है ऐसा साबित करना क्या सहभावी पदार्थोंमें होगा या क्रमभावी पदार्थोंमें होगा ? यदि कहो कि सहभावीमें कार्य कारणपनेका निषेध है तो इसके मायने है कि क्रमभाव में कार्य कारणपना हो जायगा। एकमें तो कोई सम्बन्ध नही है । सम्बन्ध बताना और सम्बन्धका निषेध करना ये दोनों बातें एकमें नही हुआ करती। यदि कहो कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पहिले अकार्य कारणपना था उसका सम्बन्ध पहिले समयमें रहने वाले पदार्थोंमें जुट गया, पीछे दूसरे पदार्थमें सम्बन्ध जुटेगा। उत्तर क्षणमें होने वाले पदार्थोंमें अकार्य कारणभाव रखा जायेगा। तो देखिये–जिस समय यह अकार्य कारणभाव पूर्ण क्षण में रहते वाले पदार्थमें लग गया। अब वह दूसरेकी अपेक्षा न रखेगा। तो फिर कैसे अकार्य कारणता विदित हो सकेगी। यदि कहो कि वह अकार्यकारणभाव पना रहता तो है पूर्ववर्ती पदार्थमें, पर उत्तरवर्ती पदार्थकी अपेक्षा भी रखता है तो कहते हैं अपेक्षा तो उसकी ही मानी जाय जो उपकारी हो। तो उसने उपकार क्या किया? कुछ भी उपकार नही किया। तो जब उपकार नहीं है तो अपेक्षा कैसे लगेगी? इस तरह जितने दोष कार्य कारणभावकी सिद्धि मिटानेके लिए शंकाकारने दिये थे उतने ही दोष उन ही शब्दोंमें पदार्थोंमें अकार्य कारणभाव मिटानेके लिए भी दिये जा सकते हैं।

पदार्थोंमें अकार्यकारणभावकी प्रतीतिकी तरह कार्यकारणभावकी भी प्रतीति—यदि यह कहो कि पदार्थोंमें कुछ भी संबंध नही होता, अकार्यकारण संबंध भी नही है, पदार्थमें अकार्यकारणका सम्बन्ध नही है इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें कार्यकारणपना है। एकका निषेध करनेका अर्थ है कि उससे उल्टेकी विधि हो गयी। पदार्थ परस्परमें न कार्यरूप है न कारणरूप है ऐसा अकार्यकारणका सम्बन्ध होता है, इस सम्बन्धको नही मानते तो अर्थ हुआ कि कार्यकारण सम्बन्ध होता है यदि यह कहो कि दोनों ही सम्बन्ध नही होते। न पदार्थोंमें कार्यकारण सम्बन्ध है और न पदार्थोंमें अकार्यकारण सम्बन्ध है। कहते हैं कि यह बात तो अयुक्त है। यह तो विरोधकी बात है। जैसे किसी पदार्थमें कहे कोई, घटमें कहे कोई कि न इसमें घटत्व है न अघटत्व है, किसी भी जीवमें न मनुष्यत्व है, न अमनुष्यत्व है। अरे! दो हीं तो चीजें हैं दुनियामें, दोनोंका विरोध एक साथ कैसे हो सकता है? इससे सम्बन्धका निराकरण नही किया जा सकता। और, जब सम्बन्धका निराकरण न किया जासका तो जैसे जिस किसी प्रमाणसे किन्हीं दो अनमिल पदार्थोंमें अकार्यकारणभावकी प्रतीति होती है। जैसे गायका कारण घोड़ा नही, घोड़ेका कारण गाय नही। तो जैसे अकार्य कारणताकी प्रतीति सही है ऐसे ही किन्ही पदार्थोंमें कार्यकारणताकी भी प्रतीति सही है। अग्नि कारण है, धूम कार्य है। अकार्यकारणताकी प्रतीति तो अतद्भावभावितासे होती है अर्थात् जिसके न होनेपर जो हो जाय वहाँ कार्यकारणभाव नही है। तो इसी प्रकार कार्यकारणताकी प्रतीति तद्भावभावित्वपर है अर्थात् उसके ही होनेपर ही तो उससे समझा जाता है कि इसमें कार्यकारणभावका सम्बन्ध है। तो अणुवोंमें परस्पर श्लेष सम्बन्ध होता है, उस सम्बन्धके कारण ये पदार्थ स्थूल हो जाते हैं जो कि ये नजर आ रहे हैं चौकी, तखत आदिक। तो यह स्थूलताकी प्रतीति गलत नहीं है, भ्रांत नहीं है। यहां अणुवोंकी इस प्रकारकी एक द्रव्य परिणति है तभी तो अणुवोंसे पानी नही भरा जा सकता और अणुवोंका जब पिण्ड होकर एक स्कंध बन गया, घड़ा बन

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया तो अब उसमें पानी भरा जा सकता है। तो यह कार्य-भेद भी यह सिद्ध करता है कि हाँ, कभी असम्बद्ध अणु भी होता है और कभी सम्बद्ध अणु भी होता है, इससे सम्बन्ध मानना युक्त है और सामान्य स्थिर स्थूल सदृश आदिक सब मानने पड़ेंगे। उस हीसे लोकव्यवहार है और उस हीसे फिर सब कल्याणमार्ग व्यवस्था बन सकेगी।

तद्भावभावित्वकी यत्नतः परीक्षामें कार्यकारणभावकी समस्याका समाधान – अब शङ्काकार कहता है कि अभी कार्यकारणत्व सम्बन्धकी बात स्पष्ट नहीं हुई। जिन पदार्थोंमें आप कार्यकारणभाव मानते हो उनमें क्या कार्यकारणता इस कारणसे है कि उनमें एक पदार्थका अभिसम्बन्ध है अर्थात् एक पदार्थमें कार्य हो रहा और कारण भी था, ये दोनों ही बातें एक पदार्थसे सम्बन्ध रखती है, इस कारण से कार्यकारणता है क्या ? जैसे एक मिट्टीमें मृत्पिण्ड भी रहा और घट भी बना तो एक ही पदार्थमें उन दोनोंका सम्बन्ध है इस कारण कार्यकारण है क्या ? यदि इससे कार्यकारण हो तब तो देखो, एक बछड़ेके दो सींग हैं और दोनों सींगोंका एक अर्थसे सम्बन्ध है। बछड़ेके शिरमें वे दोनों सींग उगे हैं। तो उन दोनों सींगोंमें सम्बन्ध भी है। क्या-क्या सम्बन्ध है ? एक तो द्वित्वका सम्बन्ध है। कहते हैं कि सींग दो हैं तो एकको देखकर तो दो नहीं कहा जा सकता। दोको देखकर ही दो कहा जा सकेगा। तो दोनोंसे सम्बन्ध रहा ना द्वित्वका। तो देखो ! एक ही पदार्थमें शिरमें दो सींग हैं और दोनोंमें द्वित्वका सम्बन्ध है—बांया, दांया। इस तरहके व्यवहारका भी संबंध है तब फिर वे दोनों सींग भी परस्पर कार्य कारण हो जाना चाहिए। उनमें एक सींग कार्य हो जाय और एक कारण हो जाय। यदि कहो कि किसी और एक सम्बन्धसे कार्यकारणता मानी जा रही है इससे एक अर्थमें रहने मात्रसे तुम कार्यकारणता नहीं मानते तो शङ्काकार ही कह रहा है कि यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि सम्बन्ध दोमें रहनेवाला होता है याने सम्बन्ध दो पदार्थोंमें रहे, इसके सिवाय और कुछ लक्षण है नहीं सम्बन्धका। तो देखो ! द्वित्व संख्या दोमें रह रही, दांया बांया सींगका व्यवहार दोकी वजहसे है। तब तो उसमें भी कार्यकारण सम्बन्ध हो जाना चाहिए। समाधान इसका यह है कि वस्तुतः वे दोनों सींग दोनों पदार्थ हैं, और यदि एक पदार्थसे सींगों की उत्पत्ति मानते हो तो सींगसे सींगका कार्य कारण न मानो। किन्तु शिरसे दोनों सींगोंका कार्य कारण मानो। और, फिर कार्य कारणका तो लक्षण यह है कि जिसके होनेपर जो हो जिसके न होनेपर जो न हुआ करे ऐसा जिसका नियम हो उसे कार्य कारण कहते हैं सो घटित करके समझो।

कार्यकारणविभागमें तद्भावभावित्वकी आधारता——अब शंकाकार कहता है कि कार्य कारणता क्या इसका नाम होगा कि किसीके होनेपर दूसरेका होना और किसीके अभाव होनेपर दूसरेका अभाव होना ऐसा जो विशेषण जिसके सम्बन्धमें आया उसका नाम कार्य कारणता है सभी प्रकारके सम्बन्धोंका नाम कार्य कारणता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नही है तो उत्तर देते हैं। शंकाकार ही कह रहा है, जो फिर किसीके होनेपर होना न होनेपर न होना यह भाव और अभाव कारण कार्यपना कहलाया। फिर असत् सम्बन्ध की कल्पना करना व्यर्थ है। समाधानमें कहते हैं कि किसीके होनेपर होना न होनेपर न होना यह सम्बन्ध कार्यकारणमें भी घटित होता है और अन्य संबंधमें भी घटित होता है पर इसके साथ इतना और उसके साथ समझ लेनेपर कि वह कार्य उस कारणसे पहिले न था और अब हुआ है तो वहाँ कार्य कारण सम्बन्ध होता है। तो कार्य कारण विभागका तद्भावभावित्व लक्षण ही अविरुद्ध है। कार्य कारण सम्बन्धका निषेध किया जानेपर लोकमें किसी भी प्रकारका व्यवहार नही बन सकता है। कोई क्या काम करेगा किसीको प्यास लगी तो रहा आये प्यासा। जब उसे यह बोध ही नही है कि प्यास बुझानेका कारण है जल तो जलपानके लिए वह यत्न कैसे करेगा? भोजन भी कुछ बनाये खाये तो क्यों? भूख लगी है अब भूखकी वेदना मिटानेका कारण है भोजन कर लेना। कार्य कोई माने नही तो सभी अव्यवस्थायें और सभी बिडम्बनायें वहाँ चलेंगी। इससे कार्य कारण सम्बन्ध भी है अन्य सम्बन्ध भी है।

स्कंधोंमें बन्ध, बन्धका कारण और बन्धस्वरूप—यहाँ प्रकृत बात यह चल रही थी कि भिन्न–भिन्न अनेक अणुवोंमें सम्बन्ध हो जाना इसमें तो स्निग्ध और रूक्षताका कारण है। स्निग्ध रूक्षत्वके कारण उनमें बंध हो जाता है। तो अब वहाँ यह परखलो कि उन दोनों परमाणुवोंमें स्निग्ध रूक्षत्व तो था ही पहिलेसे, किन्तु जब अबंध अवस्थामें, स्वतंत्र स्वतंत्र बिखरे हुए थे और अब उन निष्पन्न परमाणुवोंमें पाये जाने वाले स्निग्ध और रूक्षत्व गुणके कारण बध अवस्था हो गयी तो पूर्ण स्वतंत्र अवस्थाको तजकर वे सब अणु अब परतंत्र अवस्थामें आये यह उनका सम्बन्ध है, यह तो एक स्वभाव दृष्टिसे द्रव्य दृष्टिसे परखनेकी बात है कि प्रत्येक अणु स्वतंत्र हैं, अपने पूरे स्वरूप सत्त्वको लिए हुए हैं। उनमें किसी भी पर पदार्थका प्रवेश नहीं हो सकता। यह सब उनके सहज सत्त्वकी बात है पर स्कंध होना, सम्बन्ध होना यह सब तो पर्याय सम्बन्धी बात है। द्रव्य दृष्टिसे निहारी जाने वाली बातको पर्यायके रूपमें भी थोपी जाय तो यह मिथ्या बात होती है।

कार्य कारणभूत पदार्थोंमें कथंचित् भिन्नत्व और अभिन्नत्व—अब शंकाकार कहता है कि देखो–यह कारणभूत और कार्यभूत जो पदार्थ है यह परस्पर भिन्न है या अभिन्न है? यदि भिन्न है तो भिन्नसे सम्बन्ध कैसे बन सकता है? कारण बिल्कुल जुदा है, कार्य बिल्कुल जुदा है तो भिन्नोंमें सम्बन्ध क्या बनेगा? यदि कहो कि अभिन्नमें भी कार्य कारणपना कुछ नही हो सकता। वह तो एक ही है, अभिन्न ही हैं। उत्तर देते हैं कि कार्य कारणभूत पदार्थ कथंचित भिन्न है कथंचित अभिन्न है, जैसे इस प्रकरणको दो प्रकारोंमें समझना है–एक प्रकार तो है उपादान उपादेय वाला और एक प्रकार है सहकारी कारण और कार्य वाला। जैसे मृतपिण्डसे घट बना तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मृतपिण्ड कारण है, घट कार्य है और इसमें उपादान उपादेय सम्बन्ध है। अब यहाँ परखिये–मृतपिण्ड और घट ये दोनों सर्वथा अभिन्न तो है नहीं, क्योंकि वे पर्यायें जुदी जुदी हैं किन्तु पर्याय स्वरूपसे भिन्न होनेपर भी चूँकि उस ही द्रव्यकी मृत्पिण्ड पर्याय थी और उस ही द्रव्यकी घट पर्याय हुई। तो उस ही एक द्रव्यकी अवस्था होनेके नाते एक द्रव्यत्वका सम्बन्ध रखनेकी दृष्टिसे अभिन्नता भी है। इसी तरह सहकारी कारण और कार्यके बीच निरखिये। घटकी उत्पत्तिमें सहकारी कारण कुम्हार दंड चक्र आदिक जो कार्यमें तन्मय होकर न रहे और जिसके बिना कार्य न हो सके यह सहकारी कारण कहलाता है। जिसका दूसरा नाम है निमित्त कारण। तो निमित्त कारणमें और कार्यमें तद्भाव–भावित्वका सम्बन्ध है। कुम्हारका व्यापार दंड चक्र आदिककी परिणतिके होनेपर घटका होना और इसके न होनेपर घटका न होना इस तरहका सद्भावभावित्व सम्बन्ध है। इस नाते अब उनमें सर्वथा भेद नहीं हुआ, और भिन्न सो प्रकट है ही। कुम्हार दंड चक्र आदिक भिन्न पदार्थ हैं और यह घट भिन्न पदार्थ है। तो इसी प्रकार अनेक पदार्थोंमें अनेक प्रकारके सम्बन्ध हुआ करते हैं। यहां सामान्य स्वरूपकी सिद्धि करनेमें तिर्यक् सामान्यको सिद्ध करने वाला प्रत्यय और ऊर्ध्वता सामान्यको सिद्ध करने वाले उपादान उपादेय सम्बन्धका ज्ञान निर्बाध है। तो प्रमाणसे जो एकदम स्पष्ट हो रहा है ऐसा कार्य कारणका सम्बन्ध भी है और अन्योन्य प्रवेशका सम्बन्ध भी है, कथंचित् तादात्म्यका सम्बन्ध भी है। इतना सब कुछ होनेपर भी स्वरूपतः प्रत्येक पदार्थ अपने अस्तित्वमें ही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com